

वैज्ञानिक भौतिकवाद

राहुल सांकृत्यायन

सोशलिस्ट लिटरेचर पब्लिशिंग कंपनी
गोकुलपुरा. अगरा

प्रथम संस्करण—१९४२

देवद्वार मिश्र द्वारा हिन्दुस्तानी प्रेस, राँचीपुर, पटना में मुद्रित ।

मानवताही परमात्र आया समारके
लाखों कमूनिस्त शहीदोंकी
स्मृतिमें ।

प्राक्कथन

आज हम साइंसके युगमें हैं, किन्तु तब भी शिक्षित लोगोंमें भी बहुतसे साइंस-युगके पहिलेके मृत विचार ही चल रहे हैं। इसमें एक कारण यह भी है, कि जिज्ञासुओंके पास उसके जानने के लिये हिन्दीमें पुस्तके मौजूद नहीं हैं। इस कमीको पूरा करनेका इरादा, दो वर्ष पहिले जब मैं हजारीबाग जेलमें नजरबंद होकर आया, तभी हुआ, और काम भी शुरू कर दिया। सामग्री जमा करते वक्त पता लगा, कि येभी पुस्तक लिखना हिन्दीमें बेकार है, जब तक कि साइंस, समाजशास्त्र और दर्शनकी सामग्री नी पाठकोंके लिये जुटा न दी जाय। जब मैंने हजारीबागमें लिये सौ पृष्ठोंको बेकार समझ देवली (२१ ७ ४१) में वैज्ञानिक भौतिकवाद पर साइंसस लिखाइ शुरू की, उस समय तक यही ख्याल था, कि एक ही पुस्तकमें सब चीजें आजायेंगी, किन्तु पता लगा, कि अलग अलग विषयों-पर डेढ़ पौने दो हजार पृष्ठका एक पोधा लिखनेकी जगह सबको अलग-अलग पुस्तक मान लेना ही अच्छा है; इस प्रकार एक पुस्तककी जगह चार पुस्तकें लिखनी पड़ीं —

- (१) विश्वकी रूपरेखा (साइंस)
- (२) मानव-समाज (समाज शास्त्र)
- (३) दर्शन द्विदर्शन (दर्शन)
- (४) वैज्ञानिक भौतिकवाद

इसमें वैज्ञानिक भौतिकवाद सबसे छोटी पुस्तक है, जिसका कारण एक यह भी है, कि हममें आनेवाले कितने ही विषय दूसरे अर्थोंमें आचुके हैं; वस्तुतः याकी तीनों "वैज्ञानिक भौतिकवाद" के ही परिवार ग्रथ हैं।

पुस्तकके गहन विषयका सार और रस्य करनेको मैंने भरसक कोशिश की है, किन्तु इसमें कितनी सफलता हुई है, इसके प्रमाण पाठक ही हो सकते हैं।

अपने विषयके प्रतिपादनमें मुझे दूसरे विरोधी मतोंकी आलोचना करनी पड़ी है, जिसके लिये मैं मजबूर था, मगमग है किमीको हममें दुश्मन था, जिसके लिये मुझे रोद होगा मैंने तो "बादे-बादे जायने तर बाध" की दृष्टिको सामने रखकर वैया किया है।

जिन ग्रंथोंसे मैंने सहायता ली, उनको सूची मैं अलग द रहा हूँ, लेकिन इतना ही कर देनेमें मैं अपना कर्तव्य पूरा नहीं समझता। मैं समझता हूँ, इस पुस्तकके लिखनेका सारा ध्येय इहाँ प्रयत्नकारोंको मित्रता चाहिये, मैंने तो मधुमक्खीकी भौति मनु-सम्राट् माय किया है, भसली घन तो उर्दीका है।

मुझे एक बार विश्वास होने लगा था, कि तीसरा ग्रंथ (दश दिग्दशन) ही यदि समाप्त हो जाय तो ग्रीकत समाप्तना चाहिये; किन्तु उसके समाप्त करते ही (११-३४२) मैंने तै कर लिया, कि वसंतमान ग्रंथ को लिखना शुरू कर देना होगा, और अपनेको "गृहीत इष केशपु मृत्युना" समझने इसे आज समाप्त कर सका हूँ।

सेंट्रल जेक, हजारीबाग
२४-३४२

}

राहुत साष्ट्यायन

वैज्ञानिक भौतिकवाद

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पहला अध्याय	१	(२) उद्देश्य	०१
नूत और दृढ़वाद	"	(३) साइसवेत्ता और वै०	
ऋ-भूत (भौतिकतत्त्व)	"	भौतिकवाद	३३
१ भूतकी व्याख्या	"	(४) भूतकी प्रधानता	६४
२ विरोधियोंके आक्षेपोंका उत्तर	३	(५) वैज्ञानिक भौतिकवाद	
ख-भौतिकवाद	७	के सामने काम	३७
१ व्याख्या	"	(६) सत्य बनाया नहीं जाता	४०
२ प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका उत्तर	८	(७) फ़ैरेबाग्नुअर ग्यारह सूत्र,	
३ भौतिकवादियोंका आक्षेप	१०	३ परिवर्तनकी घटना शृंखला	४५
ग-दृढ़वाद	१२	(१) विरोधि-समागम	"
१ व्याख्या	१४	(i) व्याख्या	४६
२ द्वाद्वात्मक विधिकी विशेषता	"	(ii) स्वरूप	५२
३ द्वाद्वाद्वाद्के सोलह सूत्र	१५	(iii) सघर्ष, समागम	
४ क्षणिकवाद	१६	साम्यावस्था	५४
(१) परिवर्तन	२०	(२) गुणात्मक परिवर्तन	५६
(सदृश उत्पत्ति)	२४	(i) व्याख्या	"
(२) गति	"	(ii) जीवन और भूत	५८
(३) विश्वविच्छेद-युक्त प्रवाह	२५	(iii) दृष्टान्त	६१
घ-द्वद्वात्मक (वैज्ञानिक भौतिकवाद)	२७	(iv) मन	६४
१ यानिक भौतिकवाद	"	(v) जाति-परिवर्तन	६६
२ वैज्ञानिक भौतिकवाद	२६	(vi) मनुष्य और	
(१) व्याख्या	३०	उसके समाजमें	
		गुणात्मक	
		परिवर्तन	७१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
(१) प्रतिषेधका प्रतिषेध	७३	३ धर्म सार	१३७
द्विधतीय अध्याय	७७	(१) आत्माओं और दिव्य शक्ति की बल्यना	१३७
काय कारण (हंतु) बाद	"	(२) खोखोने और	
क-कार्य-कारण या हस्त	"	राजी समाज	१४०
१ व्याख्या	"	(३) दुनियामें देव-कल्याण	१४३
२ निवृत्तिवाद	७९	(i) बाहुल्य	"
३ वैज्ञानिक नियम	८४	(ii) यूगात्	१४४
४ मनुष्यकी स्वतंत्रता	८६	(iii) प्राचीन स्थाव	
५ तक निर्भर नहीं वस्तुनिर्भर हेतुवाद	९०	(iv) भारत	१४७
स-सत्य असत्यका ज्ञान	९३	(४) पूर्व और पश्चिममें धार्मिक प्रतिस्पर्धा	१४९
१ सत्य	"	(५) जीन अजर-अमर	१५१
२ सत्य-ज्ञान	९४	स-आचार विचार	
३ प्रयोग और सिद्धांतकी एकता	९७	१ आचार विचार परिवर्तनशील	
(१) करनी और कथनी	१०८	२ प्राचीन भारतमें यौन सदाचार	
(२) गांधीवादी प्रयोग	१०९	३ हमारा और पूजावादीयोंके सदान्तर	१६३
(गुहामानवका नाथ)	११०	४ समाज हित ही सदाचारकी	
तृतीय अध्याय	११५	फसौटी	१६५
मूढ़ विश्वास	"	(समाज)	१६६
क-धर्म और धार्मिक तत्त्व	११६	ग-दृष्टिके विकास	१६८
१ धर्म वेकार	"	१ उदयनका इश्वरवाद	१६८
२ धर्मके नये व्याख्याकार	१२२	२ प्रयोजनवाद	१७२
(१) हिंदू धर्मकी "विशेषता"		३ विज्ञानवाद	१
(२) धर्म सर्वोपरि	१३२		

वैज्ञानिक भौतिकवाद

प्रथम अध्याय

भूत और इन्द्रवाद

वैज्ञानिक भौतिकवाद (द्वि-द्रात्मक भौतिकवाद) के चारों ओर कहनेसे पहले यह जानना जरूरी है कि भौतिकवाद क्या है। और भौतिकवाद को समझनेके लिये भूत (भौतिक तत्त्व) को उतारना आवश्यक है।

क. भूत या भौतिक तत्त्व

१ भूतकी व्याख्या

जो कुछ हम अपनी इन्द्रियासे देखते-समझते (इन्द्रिय-गोचर) हैं, जो कुछ इन्द्रिय-गोचर वस्तुआका मूल-स्वरूप है, जो देश (लगाइ, चौड़ाई, मुगइ) में फैला हुआ है, जो कम या बेशी मात्रामें दबावकी रोक धाम करता है, जिसमें इन्द्रियोंसे जाननेलायक गति पाइ जाती है, वह भूत है।

इन्द्रियसे यहाँ मनुष्यकी जन्मजात इन्द्रियांकी ही शक्ति को नहीं लेना चाहिये, बल्कि उस शक्तिसे भी, जोकि सहायक यंत्रों अणुवीक्षण, १ दूरवीक्षण २ शब्दप्रसारक द्वारा कई गुना उड़ी प्राप्त होती है।

दार्शनिक लॉक (१६३२-१७०४ ई०) के मतमें परिमाण (लंबाई, चौड़ाई, मुटाई तथा भार) के रूपमें भूतका जो स्वरूप हमें इन्द्रिय-गोचर होता है, वही वास्तविक है, और गुण (गंध, रस आदि) के रूपमें दिललाइ देनेवाला स्वरूप अ-वास्तविक, काल्पनिक या भ्रान्त है।

1 Microscope

2 Telescope

वैज्ञानिक रूप, रस आदि गुणों द्वारा ही भूतानी वास्तविकता (द्रव्यता) माता है।—पृथिवी वह है, जो गंधवाली होने गुणवाली है। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि गुणकी वास्तविकता मानने के कारण ही वैज्ञानिक विकसित होकर पदार्थ विज्ञान या साइंसके रूपमें परिणत उहाँ हो सका, और विस्तार और भारको भूतका वास्तविक स्वरूप माननेवाली यूरोपिय विचार-परंपरा निरन्तर नए विज्ञानवाले आधुनिक साइंसके रूपमें परिणत हो गयी।

यद्यपि साइंस विस्तार और भारके रूपमें भूतको देखता है, किन्तु उनमें भी वह, जहाँ तक उसकी इन्द्रिय-गोचरताका संबंध है, भारका प्रधानता देता है—

“बाहरी जगत् (भौतिक तत्त्वों) का ज्ञान उन कम्पनां (अतएव द्रव्यां) से हाता है, जिनको लेते वक्त दस लागसे ऊपर ज्ञान-तत्त्वोंके भूतके हमारे मस्तिष्क और रीन्के भीतरके तत्त्व गुच्छाम पहुँचते हैं उन गुणात्मक ‘भूतका’ पर (यह ज्ञान विभर) नहीं है। परिमाण का गुणमें और गुणका परिमाणमें परिवर्तन (जिसके द्वारा कि हम किसी पदार्थका इन्द्रिय-गोचर करते हैं) मस्तिष्कमें होता है, जगत्का जो ज्ञान हमें होता है, यही परिवर्तन उनमें मुख्य साधन है।” १

गुण (गंध, रूप आदि) जैसे परिमाण (भार आदि) में परिवर्तित होते हैं?—प्रकृतिका स्वभाव ही ऐसा है, उसमें गुणात्मक परिवर्तन—स्वरूपमें भौतिक परिवर्तन—होना बरानर देखा जाता है, जिसे कि हम आगे कहनेवाले हैं। वैज्ञानिक भौतिकवाद गुण और परिमाण दोनोंका वास्तविक जगत्का स्वभाव (आसानीके लिये गुण कह लीजिये) मानता है।

भूतकी व्याख्या करते हुए लेनिन्ने कहा है—

“भूतका एकमात्र गुण (स्वरूप) यह है, जो कि वह हमारे पत्यक्षीकरणसे बाहर अपनी सत्ताका (रखता है, और) इन्द्रिय-गोचर वास्तविकताके रूपमें रखता है।” १

“भूत दार्शनिक परिभाषामें उस ‘साकार’ वास्तविकताको कहते हैं, जिसका ज्ञान मनुष्यको उसकी इन्द्रिया-द्वारा मिलता है। वह ऐसी वास्तविकता है, जिसकी नकल की जा सकती है, जिसका फोटो खिंचा जा सकता है, जो हमारी वेदनाग्रा (त्रिपय-इन्द्रिय-मस्तिष्क-सपर्क) द्वारा (मस्तिष्क) में प्रतिबिम्बित की जा सकती है—किन्तु, उसकी सत्ता इन (वेदनाग्रा) पर निर्भर नहीं है।” २

“भूत वह है, जो कि हमारी इन्द्रियापर क्रिया करते हुए वेदना (मस्तिष्क-गति) को उत्पन्न करता है। भूत वह ‘साकार’ वास्तविकता है, जिसका पता हमें वेदनाग्रामें मिलता है।”

यहाँ ‘साकार’ उस ‘निराकार’ से उलटे अर्थमें है, जिसका अस्तित्व बाहरी जगत्में कहीं नहीं मिलता, और जो सिर्फ मस्तिष्ककी कल्पना मात्र है।

२ विरोधियोंके आक्षेपोंका उत्तर

भौतिकवादके विरोधी आज नये नई पैदा हुए हैं, यह दर्शन के इतिहासके आरम्भसे चले आते हैं, और एक तरह दर्शन पैदा ही हुआ, भौतिकवादके वास्तविक जगत्की विचारों द्वारा खनन करनेके लिये। उपनिषद्के दार्शनिकाने ‘नेह नाना’ (यहाँ अनेक नहीं) कहा, अफलातूनने ‘भूटे,’ भौतिक जगत्की जगद् ‘सच्चे’ अर्भौतिक (विज्ञान मय) जगत्की ‘सृष्टि’ की। नागार्जुनने जगत् और उसकी वस्तुओंकी

1 The Materialism and Empirio Criticism p 220

२ वहाँ p 102, † वहाँ p 116

सत्ता, चूँकि सापेक्ष—ग्रन्थो-या-व्रत—है, इसलिये एसी सत्तासे इन्वारी हा सत्र कुछ शू थ (अभाव) का प्रतिपादन किया। असगने अपलातूँ क निगानमय जगत्म गौद्ध दशनक क्षणिकवादकी पुट दे भौतिक जगत्के 'टोसपन' को ध्वस्त किया। शरर और रोशदने पहलेहीके भौतिकवाद विरोधियाका चर्चित चरण किया। लेकिन, क्या इन बड़े-बड़े दिमागके छव्नीम सी वर्षोंके प्रयत्नसे 'टोस' जगत् सतम हो गया ?—नहीं, विल्कुल नहीं। यही नहीं, याज्ञवल्क्य, अपलातूँ, नागाजुन, असग, शकर और रोशदने अपने मतको स्वयं अपने आचरण द्वारा झूठा साबित किया।—वातविस जगत्सी सत्ता यदि वस्तुत नहीं है, तो भूष भी कोई चीज नहीं, और भूख मिटानेके लिये यदि अपलातूँ या शररने थालीकी और अपने पाँच सेरके हाथको उठाया, तो खुद अपने आचरणसे अपने मतका सडन किया।

गैर, इन पुराने भौतिकवाद विरोधी दाशानिकों तथा उनके आधुनिक वशजाँमे छाड़िये, आज ऐसे मोरे तर्कवादोंका कोई महत्त्व नहा है। लेकिन हाँ, भौतिकवादके विरोधी एक दूसरी तरफके नये लोग पैदा हुए हैं। ये लोग स्वयं वैज्ञानिक हैं, और उसी विज्ञानके अनुसंधानम निरत हैं—जो कि निर्भर करता है भूतके अस्तित्व पर। एक बार यदि भूतके अस्तित्वसे इन्कार कर देते हैं, तो किसकी नाप-तोला, किसपर अणुवीक्षण दूरवीक्षण, रश्मियणवीक्षण का प्रयोग ? किन्तु, यह भी काँइ नई बात नहा दशनके इतिहासम हम अक्रमर नागाजुन, गजाली, श्रीहृष जैसे-विद्वानां देखते हैं, जो दर्शनकी सहायतासे दर्शनका महार करना चाहते हैं, जेरे कि हमारे ये आधुनिक कितने ही देह या दिमागके बूढ़े वैज्ञानिक। उनमें ऐसा करनेम भी भारी रहस्य है और उसका साहँसे काइ सपथ नहीं है, किन्तु अभी उसे रहने दीजिये। आइय, देखें भूत (भौतिक) के अस्तित्वको इन्कार करनेके लिये वह युक्ति क्या देते हैं।—

“भूत नहीं है, यह साबित हो गया।”

“कैसे ?”

“साइंस—उच्च भौतिक विज्ञान—ने साबित कर दिया, कि भूत कुछ नहीं है, वह वस्तुतः शक्ति है ?”

‘शक्ति ! भौतिक या अभौतिक—आत्मिक या दिव्य शक्ति ?’

“भौतिक नहीं ।”

“तो अ भौतिक, दिव्य ! और फिर उस अ भौतिक दिव्य शक्तिको सिद्ध नौन कर रहा है !—साइंस ! और फिर भी वह साइंस है ॥”

‘हां, क्योंकि साइंसवेत्ता जो उसे प्रमाणित करते हैं ।’

“मुझे कहना, यदि साइंससे प्रमाणित करना है, तो साइंसवेत्ताओं की नारा चेष्टाएँ साइंस हैं । मर आँलिनर लाजकी भूत प्रेत विद्या—अतएव श्रोभा विद्या—तथा उसके आधुनिक अवतार प्योसापी भी साइंस है । सग चन्द्रशेखरन् वेंकट रमनका वेद-भ्रम और वर्तमान सामाजिक असमानता की रक्षाके पक्षमें भाषण भी साइंस है । मर जेम्स जीन्सका ईश्वर समर्थन भी साइंस है । वस्तुतः, आप उनके उतने ही कथनों को साइंस की मोटिम मान सकते हैं, जिसके ऊपर वेधशाला, प्रयोगशाला और उनके सेकड़ा छोटे बड़े यत्र अपनी मुहर लगा चुके हैं । तो क्या इन वेधशालाग्राने गवाही दी है कि भूत नहीं है ? और फिर भूत नहीं का मतलब ? जब वृक्षका न होना निश्चयपूर्वक घोषित कर दिया गया, तब ‘ग्राम है’ का समाल ही कैसे उठ सकता है ? फिर साइंस किसकी नाप तोल कर रहा है ?

“भौतिक शास्त्रम, आधुनिक खोजमें भूतका कोई पता नहा लगता, यहाँ तो सिर्फ शक्ति ही मिलती है ।”

“वही शक्ति भूत है ।”

‘लेकिन वह ठोस नहीं, वह साकार नहीं है ।’

“तो इससे यही साबित हुआ कि कणाद (१५० इ०) या उससे छ सौ साल पहले (५४० ६८० ई० पू०) ने भूतना जो सूक्ष्मत्व

रूप-परमाणु-माना था, वह गलत धारित हो गया। तालिमीका भूकेंद्रक विश्व गलत होसे 'विश्व है ही नहीं', 'सूय चाँद है ही नहीं' यह नहीं मानित होता है। परमनिद और उनके दूसरे अभिजातिय चापी विश्वकी गति, परिवतन सीततासे परेशान थे, वह अथाह समुद्रमें डूबते हुएकी तरह स्थिर भूमि हूँ उनके लिये परेशान थे, इसलिये उन्होंने विश्वके मूल म ठोस—परमाणु—'दूँड़' निकाले। परमाणु तिरन, अपरितनशील, लामानी (असदृश), धरसे, अभिमान्य, असंग्य सूक्ष्म गोलिर्मा हैं। परमेनिदके भारतीय शिष्याओ पट्कोण तथा कुछ और भेदके साथ परमाणुकी उन स्थायी ईटाँको अपने दशनमें ले लिया। भौतिक विज्ञानने इन गोल या पट्कोण ठास कर्षोंकी सत्ताको गलत साधित कर दिया, यह ठीक है। उसने विश्वक निम्नतम तलमें त्रिद्युत्-सु रनीय कर तरंग-कण भी, तरंग र भी—को मूल तत्त्व पाया। इससे सिध यही सिद्ध होता है कि भूत की जो व्याख्या पहले की जाती थी, वह बहुत स्थूल थी। किन्तु, साइंसते भूतका सिद्ध न होना सिद्ध हुआ, यह कहना तो साइंसका अपमान, अपनी बुद्धिका भी अपमान और दुनियाको भी सरासर बेचकूप बनाना है।”

“लेकिन, साइंसने यह तो सिद्ध किया है कि विश्व बिल्कुल खाली—आकाश—शून्य-सा है।”

“और उसमें शक्ति या त्रिद्युत् चुम्बकीय कण-तरंग भी नही है ?”

“है, किन्तु वह नगण्य-सा है।”

“इसलिये नहीं है। यह तो वही बात हुई, किसीने पृछा यह जाल क्या है ? दूसरेने कहा—कुछ नहीं, धागेसे नरथी किया हुआ भारी शून्य आकाश। धागेकी उपक्षा और आकाशकी महिमा गाना यह है इन नामधारी वैज्ञानिकोंका बैठे ठालेबतना साइंस। मानव-बुद्धि इस भूल भुलैयों को नहीं मान सकती। साइंस जैसे-जैसे आगे जाता है, भौतिक वस्तुओंके

१ देखिये “विश्वकी रूप रेखा”

आन्तरिक ढाँचेके तारमें वह अधिक और अधिक जानकारी प्राप्त करता है। परमाणु—परमेनिद्वका नहीं, उन्नीसवीं मदीके रमान शाब्दियामा भी—टुटा। टामसाने उसके भीतर पहुँचकर एलेक्ट्रन, नाभिकण, प्रोटनका पता लगाया। तीसरी मदीम साधारण नाभिकण तथा हाइड्रोजनने नाभिकण, प्रोटनको भी ताड़ा गया, और हम न्यूटन और मेसोट्रन तक पहुँचे।—भूतका यही भीतरी टाँचा नण और नरग दोनों—प्रिरोधि समागम—के रूपम मिलता है। यह सब सिर्फ इतना ही साधित करता है, कि पहली व्याख्या स्थूल थी, ज्ञानकी गभीरताके साथ हम उसे सूक्ष्म करना पड़ रही है। इस व्याख्या-परिवर्तनसे भूतका अभाव सिद्ध करना या तो भोलापन प्रकट करना है, या इसके पीछे कोढ़ टुटिल रहस्य है।—रहस्य जाननेके लिये अभी ठहरिये।”

भूत है, और उसका होना ठोस सत्य है। आधुनिक साइंस भूतकी आन्तरिक अद्भुत शक्ति और स्वरूपपर प्रकाश डालकर उसके महत्त्वको घटा नहीं गया रहा है।

ख. भौतिकवाद

१ व्याख्या

भूतकी व्याख्या जान लेने तथा उसकी सत्ताके मान लेनेपर अब आइये भौतिकवाद पर। भौतिकवाद क्या है?—यह एक दार्शनिक वाद है, जो कि कल्पना, विचार, ज्ञानको मानव चेतना (मस्तिष्क) पर एक ऐसे वास्तविक भौतिक जगत्का मानस प्रतिबिम्ब—चमक—मानता है, जिसकी सत्ता हमारी चेतना या इच्छासे बिल्कुल स्वतंत्र है।

एन्गेल्सके शब्दोंमें—“जो (चेतना या चेतनको नहीं बल्कि) प्रकृतिको (सारे जड़ चेतन जगत्का) मूल माता है, (ऐसे वादको) भौतिकवाद कहते हैं।”

१ देखिये “विश्वकी रूप-रेखा”

अथवा—

‘वास्तविक जगत्—प्रकृति और (उसके) इतिहास—को उमा तरह ग्रहण करना, यैभी कि वह एसे हर आदमीका मालूम होता है, जो कि विज्ञानवादी (दारानिज) कल्पनाओंकी पूवधारणाओंमें मुक्त है।’^१

२ प्रतिपक्षियोंके आक्षेपका उत्तर

लेकिन जरा ठहरिये, भौतिकवादका आधार या उसके शत्रुओंके मुँहसे मुनिये । भारतके धर्माचार्य कहते हैं—

“जब तब जिये मुग्धते निचे, भ्रष्ट करके धी (शराय ?) रिय ।
देहके मस्मीभूत हो जाने पर फिर आना कहाँ से ?”^२

—अर्थात् भौतिकवादी परम पामर स्वार्थी, लोलुप, मनुष्यरूपमें मृगा हैं ? और यूरोपके धर्माचार्य उसे भौतिकवादी कहते हैं, जो कि—शरायी, इन्द्रियलपट, समाजशत्रु अहंकारी जीव है । साथ ही उनकी समस्त विज्ञानवादी (दारानिज) होते हैं—सयर्मी, जितन्द्रिय, समाज मुहद्द, निरहकारी, स्वार्थत्यागी, महात्मा ।

भारतमें भौतिकवादियाके लिये यह गाली क्या मिली, इसका पता इतिहासमें सुरक्षित नहीं—आगरि हमारे इतिहासको राना-रानीके स्वयं वरामे पुर्यत हो सब न । हौं, यूरोपीय भौतिकवादियोंको जो गालियाँ पिठला मदामें दी गईं, उनके लिगनेके लिये एक प्रत्यक्षदर्शा, तथा दर्शनके इतिहास-लेखकोंमें प्रसिद्ध व्यक्ति—जार्ज हेनरी लेविस् (१८१७ १४ इ०) मौजूद था । देखिये वह क्या लिगता है—और इतिहास अस्मग अपने सामान्य रूपको दुहराया करता है, यदि इस बातपर ध्यान रखें तो हमसे अपने यहाँकी गालीका भी रहस्य खुल सकता है । निम्न समयके वारम

1 Feurbach p 53

२ “याजजीवेत् सुरा जावेद् भ्रष्टं कृत्वा धृतं पिबेत् । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत ?”—सप्तदर्शन-संग्रह (चार्वाकदर्शन)

लेखक लिख रहा है, वह वह नम्र था, जब कि फ्रॉच क्रान्ति (अपने उत्पीड़कों—शापकोंके विरुद्ध कमर जनताके सरास विरोध) का देश मुनरर फ्रान्स और इंग्लैंडके सम्पत्तिशाली शासकोंके दोश उड़े हुए थे और चारों ओर उन्हें अपना पीड़ा करते कबंध दिखनाइ पड़ रहे थे—

“भौतिकवाद एक भद्दा शब्द है, जो कि कुछ गलत सम्मतियों को प्रकट करता है। यह सम्मतियाँ जिन भौतिकवादी-लेखकोंके सिर थोपी जाती हैं, वे ऐसी सम्मति रगते भी रहे, इसमें सन्देह है। वैसे भी यह सम्मतियाँ बेवकूफी और नदमाशासे भरी हैं, और उन्हें गेग निम्मेदार उजड़ु विरोधियाने जान बूझकर उन (भौतिकवादी) लेखकोंके मत्थे थोपा है। भौतिकवादियोंको हमसे कम यह रास सुमीता (अपने मिद्धा तमें) है, कि वह सभी अतिभौतिक (या अलौकिक) पदार्थोंसे विट्ट ह्युडानेकी कोशिश करते हैं, और प्राकृतिक जगत्की व्याख्या प्राकृतिक जगत्के नियमोंसे करना चाहते हैं। यदि भौतिकवादी विचार गलत न, तो (भी) वह जितना गलत है उतनी ही मात्रा में खतरनाक हैं, और बहुतसे (प्रभु-वर्गके) लोग इन विचारोंको इसलिए गलत कहते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि वह (उनके स्वार्थके लिये) खतरनाक हैं।

“अठारहवा सदीके (भौतिकवाद प्रधा) दर्शनके विरुद्ध जा प्रतिप्रिया (देरी जाती) है, वह त्रयोग्य सिद्ध हुए किसी एक सिद्धातके खिलाफ उतना नहा है, जितना कि भयकर दुराचार (प्रभुता-सम्पत्ति उपहरण) के खोत समझें जानेवाले सिद्धान्तके खिलाफ। (यह) प्रातप्रिया जयदस्त थी, क्योंकि वह उस क्रूरतासे प्ररित हुई थी, जो कि फ्रॉच क्रान्तिके अत्याचारों २ (III) के रूपमें यूरोपमें हलचल मचाये

1 History of Philosophy (by G H Lewis) Vol II pp- 743 44

२ फ्रॉच-क्रान्तिमें कमर-जनताने ज्यादा अत्याचार या ग्लून-सराबी की, अथवा सत्ता धारियाने, इसे यहाँ बतलानेकी जरूरत नह।

अथवा—

“वास्तविक जगत्—ग्रहण और (उसके) इतिहास—को उसी तरह ग्रहण करना, वैसी कि वह एस हर आदमीको मालूम होती है, जो कि विज्ञानवादी (दारानिफ) कल्पनाओंकी पूनधारणाआसे मुक्त है।”^१

० प्रतिपक्षियोंके आक्षेपका उत्तर

ललिन नरा ठहराये, भौतिकवादीकी व्याख्या उसके शत्रुओंके मुँहसे सुनिये। भारतके धमाचाय कहते हैं—

“जब तक जिये सुगन्धे जिये, शृणु फरके घी (शराय ?) पिय।
देहके भस्मीभूत हा जाने पर फिर आता कहाँ में ?”^२

—अर्थात् भौतिकवादी परम पामर स्वार्था, लोहप मनुष्यरूपम मृगा है ? और यूरोपके धमाचाय उसे भौतिकवादी कहते हैं, जो कि—शराय, इन्द्रियलपट, समाजशत्रु, शरहकारी जीव है। साथ ही उनकी रायमें विज्ञानवादी (दारानिफ) हाते हैं—संयमा, जितेन्द्रिय, समाज-मुहद्द, निरहकारी, स्वार्थत्यागी, महात्मा।

भारतमें भौतिकवादिनाके लिये यह गाली क्यों मिली, इसका पता इतिहासमें सुनिता नहीं—आखिर हमारे इतिहासको राना-राणीके स्वयं परसे कुर्बत हो तत्र न। हाँ, यूरोपीय भौतिकवादियोंको जा गालियाँ पित्रुली मदीमें दी गई, उनके लिगनेके लिये एक प्रत्यक्षदर्शा, तथा दर्शनके इतिहास लेखकाम प्रसिद्ध व्यक्ति—जार्ज हेनरी लेविस् (१८१७ १४ इ०) मौजूद था। देखिये यह क्या लिखता है—और इतिहास अरुसर अपने मामान्य रूपको दुहराया करता है, यदि इस बातपर ध्यान रखें तो इसमें अपने यहाँकी गालीना भी रहस्य खुल सकता है। जिस समयके बारेम

1 Feurbach p 53

२ “यावज्जीवित् सुगन्धे जीवेद् शृणु कृत्वा धृतं पियेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत” —उपदर्शन-संग्रह (चार्वाकदर्शन)

“इसे समझनेके लिये भारी चातुरीकी आवश्यकता नहीं है, कि भौतिकवादका साम्यवाद और समाजवादके साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। भौतिकवादके सिद्धान्तसे (साधित है)—मनुष्यका मूलतः भला होना, बौद्धिक क्षमतामें समान होना, तज्जा, आदत और शिशुवर्धनकी सव-शक्तिमत्ता, मनुष्यपर बाह्य परिस्थितियोंका प्रभाव, उद्योग धंदेका भारी महत्त्व, (जीवनके) उपभोगोंका औचित्य आदि-आदि। यदि मनुष्य अपने सारे ज्ञान, प्रत्यक्ष आदिको इन्द्रिय जगत्से तैयार करता है, तो इसका अर्थ यह है, कि व्यवहार-जगत्को इस तरह व्यवस्थापित किया जाय, जिसमें कि (मनुष्य) इस (जगत्) में (जो वस्तु) सच्चे अर्थोंमें माननीय है, उसे अनुभव कर सके, तथा मानवके तौरपर स्वयं अनुभव करनेकी उसे आदत पड़ जाय।

“यदि (व्यापक अर्थमें) समझदारियाला स्वार्थ ही सारे आचार (नियमों) का मूल है, तो मनुष्योंके वैयक्तिक स्वार्थोंका माननीय स्वरूपोंसे एक करना होगा। यदि मनुष्य भौतिक अर्थोंमें अस्तित्व है तो अपराधोंके लिये व्यक्तियोंको दंड न दे, समाज विरोधी अपराधोंके प्रसन्न-स्थानोंको नष्ट कर हर स्त्री पुरुषको अपने नीयतको दिललानेके लिये सामाजिक व्यवहार देना चाहिये। यदि मनुष्यका निर्माण परिस्थितियाँ करती हैं, तो परिस्थितियोंको माननीय बनाना होगा। यदि मनुष्य स्वभावतः सामाजिक है, तो वह अपने वास्तविक स्वभावको सिर्फ समाजमें ही विकसित कर सकता है, फिर ता उसके स्वभावकी, शक्तिकी नाप एक अकेले व्यक्ति की शक्तिसे न कर समाजकी शक्तिसे करना चाहिये।

“ये और इसी तरहके विचार, प्रायः शब्दशः, सबसे पुराने फ्रेंच भौतिकवादियोंमें १ पाये जाते हैं।

१ पुराने यूनानी भौतिकवादी दार्शनिकों तथा उनहोंने अठारवीं सदीके यूरोपीय भौतिकवादियों (बेकर, हॉब्स, लॉक—अंग्रेज, रुन्ड-

हुई थी। फ्रैंकलाइन, दीरेरो और क्लॉडियस के दार्शनिक (भौतिकवादी) विचार कन्वेंशन (क्रान्ति परिपक्व) के अपराधीके विन्मया उद्घाटन जाते थे। निम्न निम्न विचारमें भौतिकवादकी गंध पाई जाती थी, उसे धरा, मदानार और सर्कारक नाशके लिये प्रयत्न करनेवाला विचार समझा जाता था। जो वाद विचार अर्थात्वाद (विज्ञानवाद) की दिशाकी ओर जाता मालूम पड़ता था, उसका रङ्ग उल्लाहके साथ स्थायित्व किया जाता था, उसका प्रचार और साधुवाद किया जाता था। (इसमें) हम समझ सकते हैं कि उस पीढ़ीके (धनी लोगारु) विज्ञानम भौतिकवादके साथ क्रान्तिक संधि कितना अटूट (सा जान पड़ता) था।

भौतिकवाद विरायितो मनाभावका व्यक्त करते हुए यह कहता है—

“उनका मुख्य उद्देश्य है (प्रतमान) मनुष्य और (मानव) व्यवस्था का समर्थन करना, जिसका यह उन (भौतिकवादी) दर्शनके कारण अन्तरेमें पड़ा समझन हैं, क्योंकि यह उनपर प्रहार करना चाहते हैं। (उनके भाषणोंमें) लगातार (लागातार पुराने) पक्षधरता और आशक्ति भावोंको बढ़ाया जाता है। (जिससे) श्रोता सभी उच्च भावनाओंके अर्थात्वादकी (विज्ञानवादी) सिद्धांतके साथ जोड़नेकी आदत डालता है, और सभी नीच भावनाओंके भौतिकवादी सिद्धांतके साथ, यहाँ तक कि एक (अर्थात्वादकी) संप्रदायका उनके मस्तिष्कमें पूज्य भावनाओंके साथ अटूट संबंध हो जाता है, और दूसरे (भौतिकवाद) का श्रद्धाकी भावनाओंके साथ।”

३ भौतिकवादियोंका आदर्श

जिन लोगोंका नरकशु रनाकर यह गालियाँ सुनाई जाती थी, उनका सबसे बड़ा अपराध दूसरा ही था, जिसे उस समाजके दो सरताज अपराधियों—मार्क्स और एंगेल्स—के मुँहमें सुनिये—

१ देखा “दश १ दिग्दर्शन” २ नहीं

3 Holy Family (1845 by Marx & Engels)

है, जिसका अर्थ है द्वैतवाद—दो आदमियों का प्रश्नोत्तर । बुद्ध ने बहुतसे सूत्र प्रश्नोत्तरके रूपमें ही मुक्त पिटरुमें मिलते हैं, इसीलिये उन्हें “बुद्ध का डायलॉग” १ भी कहा गया है । उनसे पहले उपनिषद् भी द्वैत-सवादात्मक उपदेश बहुत हैं । यूनानके दार्शनिक सुक्रात (४६६-३६६ इ० पू०) ने भी अपने उपदेशोंके लिये यही ढग स्वीकार किया था, और प्रश्न-उत्तरके प्रश्नका जो उत्तर वह देना चाहता था, उसे प्रश्नोत्तर द्वारा स्वयं उसीके मुँहसे कहलवाता था । यह ढग सुक्रातके बाद इतना पसंद आया कि उसके शिष्य अपलानू (४२७-३४७ इ० पू०) ने इस “परम सत्य” तक पहुँचनेका साधन प्रतलाया । यदि “डायलेक्टिक्स” का प्रयोग सिर्फ द्वैतवादात्मक अर्थमें ही होता, तो हम भी इसी शब्द का इसके लिये इस्तेमाल करते, किन्तु डायलेक्टिक्सका दर्शनमें जिस अर्थमें प्रयोग होता है, वह डायलॉगका मुख्य नहीं, लाक्षणिक अर्थ है, और “वादे-वादे जायते तत्त्वबोध” (वाद-वाद करते हुए तत्त्वबोध होता है)—के अर्थमें ज्यादा आता है । आप एक बात कहते हैं, हम उसका विरोध करते हैं, फिर हमारी और आपकी परस्पर विरोधी बातोंमें एक तीसरी बात तै पाती है—इस तरह जहाँ परस्पर विरोधी बातोंमें तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, उसे डायलेक्टिक्स कहते हैं, जिसे हिन्दीमें हम द्वैतवाद या द्वैतवादात्मकवाद कह सकते हैं, यद्यपि इसमें मूल यूनानी, शब्दका सर्फ पूनार्थ “दियो” (द्व) भर ही आता है । द्वैतवादात्मक प्रक्रियामें जिस क्रमसे हम परिणाम या तत्त्वबोधपर पहुँचते हैं, उसे तीन सीढ़ियोंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) वाद—जीव भूत है ।

(२) प्रतिवाद—जीव भूत नहीं, अलग अलग चेतन तत्त्व है,

(३) सवादात्मक—जीव न भूत है, न अलग तत्त्व है, बल्कि वह भूतके

गुणात्मक परिवर्तनसे उत्पन्न एक नया तत्त्व है ।

भौतिकवादके लिये गत दिन गालियॉ काइ इतिहासमें पढ़नेकी ही बातें नर्स हैं। हमारे सामने ही भौतिकवादी सोपियत देश और उसकी सरकारकी कितनी गालियॉ पिछले २६ वर्षोंमें ही जाती थी, यह हम मर जानते हैं—यद्यपि प्राण सोपियत जनता और लालसेनाने अपनी उचानिया, मृत्यु निमयतामें बतला दिया है, कि भौतिकवादी जिंठीमें भी ज्यादा खीँसी मग्ना जानते हैं। प्राणके समूनिस्त अद्भुत आत्मा मरना पर महान् उदाहरण हर रात्र परा कर रहे हैं। प्राण (मार्च, १९४२ ई०) से चन्द्र ही मरना पहले दिटलरकी गोलीसे उड़ाये गये फ्रेंच समूनिस्त १ साथी गरीब परीने मृत्युमें कुछ ही क्षण पहिल निरता था २ —

“मेरे मित्रों मालूम होना चाहिये कि मैं अपने उस आदर्शके प्रति (अन्ततः) सच्चा रहा हूँ, जिसे कि अपने सारे जीवनमें मैंने (अपनी मामने) मग्ना। मेरे देशवासी जानें कि मैं इसलिए मर रहा हूँ, जिसमें कि प्राण नीता रहे। अन्तिम वार मैं अपने हृदयको टटोल रहा हूँ। मैं नहीं साँ पड़तावा नहा अनुभव करता। यदि मुझे फिर (जीवन) आरंभ करना पड़े, तो फिर उसी पथका अनुसरण करूँगा। चंद्र मिनटामें आनेवाले प्रमासकी उपाके लिये अपनी (जीवतरुपी) भेंट चढाऊँगा। विदा, चिंजीर फ्रास ।”

ग. द्वैवाद

द्वैवाद या द्वैवात्म्यवाद अग्रेजा भाषाक डायलेक्टिक्स शब्दके अर्थमें इस्तेमाल होता है। यह शब्द ही यूनानी दिया-लोग शब्दसे आया लाफ, फवानी, दा'लम्बर, लामेनी, लाप्लास, दो'लरास, दीदेरो, हेल्ने-शिवा, कृप्या, बोती-फ्रेंच) क मरता के बारेमें 'दर्शन दिग्दर्शन' का देखो।

१ समूनिस्त दैनिक La Humanity (मानवता) के विदेश-विभागके संपादक २ रायटर लॉन ८ मार्च १९४२ ई०।

“हमके विरुद्ध द्वंद्ववाद वस्तुओं तथा उनके (मानस) प्रतिचित्रा—
चित्रां—से उनके वास्तविक संबंधों, उनकी गति आरम्भ, और
अन्तके साथ हृदयगम करता है। द्वंद्ववाद जीवन और मृत्युकी
अमर्य क्रियाओं प्रतिचित्राओं, प्रगतिशील तथा प्रगति विरोधी परिवर्तनां
पर प्रसर ध्यान रखता है।”

‘किसी चीज और उसके विरोधी भागका विभाजन द्वंद्ववादका मार
है।’^१ प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वंद्ववादमें भारी अंतर यह है, कि
तर्कशास्त्र उसी वस्तुको अपने चित्राका विषय बना सकता है, जो कि
स्थिर, ठोस, एक ही बार सदाके लिये परीपन्नाइ मिल गई है। किन्तु,
जगत् और उसकी वस्तुयें ऐसी नही हैं—गति और परिवर्तन उनकी
नस-नसमे भरा है। रोजमर्राके साधारण व्यवहारकेलिये प्रचलित तर्कशास्त्र
काम दे सकता है, जैसे साधारण कामके लिये अक्षगणित या बीजगणित,
किन्तु जब हम चल-घड़ा, चल-उपघड़ों, चल-सूय, चल-नवनांकी दुनियाम
पहुँच कर टिसात्र लगाना चाहते हैं, तो स्थिर गणित—अक्ष गणित,
बीजगणित—वहा काम नहीं दे सकता, वहाँ चल-कलनकी जरूरत
पडती है। इसी तरह सौर परिवारके भीतर बूढ़नके गुरुत्वाकर्षणसे
हमारा काम बहुत कुछ चल जाता है, किन्तु सौर परिवारमें भी पारीक
गणित तथा सौर परिवारके बाहरकी समस्याओंके हल करनेमें गुरुत्वा-
कर्षण काम नही दे सकता, वहाँ जरूरत होती है आइन्सटाइनकी
सापेक्षताके अनुसार विश्वकी बनताकी।^२

३ द्वंद्ववादके सोलह सूत्र

सन्नेपमे “विरोधियोंकी एतता (समागम)” के सिद्धान्तको द्वंद्ववाद
रहते हैं। इसपर हम आगे मणिषेप कहनेवाले हैं। द्वंद्ववादके स्वरूपको

1 Materialism (Lenin) p 321

२ देखो “विश्वकी रूपरेखा” (सापेक्षतावाद)

१ ध्याव्या

उपरोक्त कथनपर ध्यान रगते हुए हम द्वन्द्ववादकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं। भाषणम द्वन्द्ववाद वह प्रक्रिया (तरीका) है, जिसमें दो परस्पर विरोधी मताने भर्षणके बाद हम सत्य तक पहुँचते हैं। प्रकृतिमें द्वन्द्ववादका अर्थ है अपने भीतरी विरोधी स्वभावाके द्वन्द्वसे प्रकृतिमा एक तीसरे रूपमें निरूपित होना—हाइड्रोजनके प्राण पीडक तथा आक्सीजनके प्राणदायक तत्त्वसे तीसरे तत्त्व—जलका निमाण। विचार-चेतनम इस प्रक्रियामा अर्थ है, दो विरोधी विचारोंके द्वन्द्वसे तिसरे विचार पर पहुँचना। जैसे—

(१) वाद (यात्रिभ भौतिकवादी)—जगत् भौतिक (परमाणु) तत्त्वमय है, क्योंकि वही इन्द्रियगोचर, तथा इन्द्रियगोचर ज्ञानद्वारा सिद्ध है।

(२) प्रतिवाद (विज्ञानवादी)—जगत् अभौतिक (विज्ञान) तत्त्वमय है क्योंकि भूतसे मिलक्षण चेतनावत्त्व विज्ञानके मानने पर ही सम्य है।

(३) रावाद—जगत् द्वन्द्वात्मक भौतिक तत्त्वमय है, भौतिक होनेसे वादवाली बात आताती है, और द्वन्द्वात्मक होनेसे भूतम नये गुणके उत्पादन करनेकी शक्ति, जिससे गुणात्मक परिवर्तन द्वारा चेतनाका पैदा होना निरुत्तल सम्य है।

, इसीलिय ए गेल्सपा कहना है १—

२ द्वन्द्वात्मक विधिकी विशेषता

“अतिभौतिक (अध्यात्म) शास्त्रिया के लिये वस्तुयें तथा उनकी मानसिक मूलक (प्रतिनिध) —विचार—अलग अलग हैं, उनपर एकके बाद एक तथा एक दूसरेसे अलग करके विचार करना चाहिये, (क्योंकि) उही स्थिर, ठोस एव ही बार सदाके लिये बने (पनाये) शोधके निषय हैं।”

“हमके विरुद्ध द्वंद्ववाद वस्तुओं तथा उनके (मानस) प्रतिनिधियों—विचारा—को उनके वास्तविक संबंधों, उनकी गति-आरम्भ, और अन्तके साथ हृदयगम करता है। द्वंद्ववाद जीवन और मृत्युकी असरय क्रियाओं प्रतिप्रियाओं, प्रगतिशील तथा प्रगति विरोधी परिवर्तनों पर गहर ध्यान रखता है।”

“फ़िसे चीन और उसके विरोधी भागका विभाजन द्वंद्ववादका सार है।”^१ प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वंद्ववादम भारी अंतर यह है, कि तर्कशास्त्र उसी वस्तुको अपने विचारका विषय बना सकता है, जो कि स्थिर, ठोस, एक ही तार सदाके लिये पकौपनाइ मिल गई है। किंतु, जगत् और उसकी वस्तुएँ ऐसी नहा हैं—गति और परिवर्तन उनकी नस नसमे भरा है। रोजमराके साधारण व्यवहारकेलिये प्रचलित तर्कशास्त्र काम दे सकता है, जैसे साधारण कामके लिये अकगणित या रीजगणित, किंतु जब हम चल-ग्रहों, चल-उपग्रहों, चल-सूय, चल-नक्षत्रोंकी दुनियाम पहुँच कर दिशाएँ लगाना चाहते हैं, तो स्थिर गणित—अक-गणित, रीजगणित—यहाँ काम नहीं दे सकता, वहाँ चल-कलनकी जरूरत पडती है। इसी तरह सौर परिवारके भीतर न्यूटनके गुफ्तानर्पणसे हमारा काम बहुत कुछ चल जाता है, किंतु सौर परिवारम भी तारीक गणित तथा सौर परिवारके बाहरकी समस्याओंके हल करनेमें गुफ्तानर्पण काम नहा दे सकता, वहाँ जरूरत होती है आइन्सटाइनकी सापेक्षताके अनुसार विश्वकी वक्रताकी।^२

३ द्वंद्ववादके सोलह सूत्र

सत्तेपमें “विरोधियोंकी एरता (समागम)” के सिद्धांतको द्वंद्ववाद कहते हैं। इसपर हम आगे नविशेष कहनेवाले हैं। द्वंद्ववादके स्वरूपको

1 Materialism (Lenin) p 331

२ देखो “विश्वकी रूपरेखा” (सापेक्षतावाद)

समझानेके लिये लेनिन्ने १६ सूत्र रचे हैं, डेरिड गेस्टकी छोटी व्याख्याके साथ हम उह यहाँ देते हैं । १ --

हम आमतौर पर विचार कर रहे हैं, इस विचारके लिये 'साकार (भौतिक)' आमतौर पर चाहिये यह कहनेकी आवश्यकता नहै, किन्तु आमतौर पर स्वरूप आकार विशेषतायें रखता है, जिन विशेषताओंके साथ कि उह 'भौतिक' विश्वका अंग बना हुआ है । आमतौर पर विचार करते वक्त हम उसकी सारी विशेषताओंका एक साथ विचारका विषय नहीं बना सकते । आमतौर पर गोनाइ-मुटार्ड, नरमपा-कड़ापा, पीला-गुला, मिठास-खटास, मीठी-सुगंध, तीव्र-सुगंध, कच्चापन-पकापन सदापा और इनके सैकड़ों प्रभेद पाये जाते हैं । निश्चय ही हम मानते-वक्त आमतौर पर इन सारी विशेषताओंपर एक ही समय नहीं विचार सकते, इसलिये हम एक समय आमतौर पर किसी एक विशेषता—रंग, स्वाद या गंध—को प्राचीन विशेषताओंसे पृथक् कर उसे विचारका विषय बनाते हैं । यह सिर्फ सुभीतेके रयालसे किया जाता है । किन्तु, यहाँ हमें पर ध्यान रखना है कि कोई भी विचार या चिन्तन असम्भव है, जब तक कि उसका विषय—वस्तु—न हो, और वस्तु अपनी हजारों विशेषताओंके साथ विश्वका अभिन्न अंग है, इसलिये द्रववादी तरीकेसे मानते वक्त हमें वस्तुओंका उसी रूपमें देखना चाहिये, जिसमें कि उह वस्तु है । इसीलिये लेनिन्का पहिला सूत्र—

१ प्रत्यवेक्षण (के विषय) को 'साकार' (वस्तुसत्, खुद वही वस्तु) होना चाहिये, (न कि उदाहरण या प्रतिनिधि हानेके लिये प्रयोग्य आकार) ।

विचारकी पहिली अवस्थामें हम वस्तुको अपने दिमागमें विश्व—द्रवतापूर्ण 'सनीव' विश्व—से अलग कर लेते हैं, जो कि वास्तविकता नहीं है । वास्तविकता जानकर लिये उम पृथक्कृत वस्तुको फिर उसके

‘धर’में रचना होगा, जिसमें कि वह फिर ‘सजीर’ विश्वका अग रन जाये—जोया इस प्रकार हम पहिली अवस्था(पृथक्करण)का प्रतिषेध करते हैं, ऐसा न्ये विना हम अध्यात्मवाद, विज्ञानवादकी मानसिक भूल भुलैयासे उच नहा सकते । इसीलिये, लेनिन्का दूसरा सूत्र—

० हमें प्रत्येक वस्तुके दूसरी वस्तुओंके साथ अनेक प्रकारके जो सम्बन्ध हैं, उनके सारे योगफलपर विचार करना चाहिये ।

प्रत्येक वस्तु यही नहीं कि विश्वव्यापी घटनाका एक अंश है, बल्कि वह स्वयं भी वस्तुतः एक घटना - प्रवृत्तम भागमें भी किसी तरहके स्थिर सारसे शून्य नित्य परिवर्तनशील प्रवाह—है, इसलिये उसके “स्वभाव”का उसकी प्रकृतिम समाये रूपमें समझा जा सकता है, न कि उसे परिवर्तनक रूपसे अलग करके । अतएव, हमारे लिये विचारणीय है—

३ वस्तु या प्रतीयमान विश्वका^१ विकास, उसकी अपनी गति, उसका अपना ‘जीवन’ ।

किन्तु, यह विचार ऐसा नहीं है, जो कि हेतुके विना ‘दैवी चमत्कार’ की तरह अपने आप जारी हो गया हो, यह विचार सदा आन्तरिक द्वन्द्व (विरोध) तथा गहरी सम्बन्ध—जिनमें सुदृढ़ भी शामिल है—का परिणाम है । हम विकासकी व्याख्या उतनी ही कर सकते हैं, और बुद्धिसम्मत तरीकेसे उसे उतना ही समझ सकते हैं, जितने परिमाणमें कि हमने वस्तुके आन्तरिक द्वन्द्वकी रोज की है । अतएव—

४ हम वस्तुमें (उसकी) आन्तरिक विरोधी प्रवृत्तियों (तथा पहलुओं)की तलाश करनी चाहिये, उन्हें देखना चाहिये ।

५ वस्तु (या आकार आदि)को विरोधोंके योग या एकताके तौर पर भी देखना चाहिये ।

^१ Phenomena

समझाने लिये हमारे १६ सूत्र ग्ये हैं, डेविड गेम्बल छोटी व्याख्यान साथ हम उन्हें यहाँ देते हैं । १ --

हम आमर विचार कर रहे हैं, इस विचारके लिये 'साकार' (भौतिक) आम चान्दिये यह कहोकी अनशयता यहाँ , किन्तु आमका स्वरूप हजारो विशेषताय रखता है, बिना विशेषताअधिक साथ कि यह 'गणीय' विशयका अंग बना हुआ है । आमपर विचार करने पर हम उसकी सारी विशेषताअंको एक साथ विचारका विषय बना सकते । आममें गन्नाह-भुण्ड, नरमपान-कण्डा, पीला रंग, मिटास-नटास, मोटा सुगंध, ताया सुगंध, कच्चापान-परापन अङ्गान और इनके संकड़ा प्रभेद पाये जाते हैं । निश्चय ही हम साचने-वा आमकी इन सारी विशेषताअंकोपर एक ही समय नहीं विचार सकते इसलिए हम एक समय आमकी किमी एक विशेषता—रंग, स्वाद या गंध—को सारी विशेषताअंकोनि पृथक् कर उमें विचारका विषय बनाते हैं । यह विषय सुभीतेने ग्यालमे लिया जाता है । किन्तु, यहाँ हमें यह ध्यान रखना है कि नई भी विचार या चिन्तन असम्भव है, जब तक कि उसका विषय—वस्तु—न हो और वस्तु अपनी हजारो विशेषताअंके साथ विशयका अभिन्न अंश है , इसलिये द्व द्वारो तरीकेने गचने पर हम वस्तुअंको उसी रूपमें देखना चाहिये, जिनमें कि वह उत्पन्न है । इसीलिये लनिन्का पहिला सूत्र—

१ प्रत्यवेक्षण (के विषय) को 'साकार' (वस्तुमन्, खुद वही वस्तु) होना चाहिये, (न कि उदाहरण या प्रतिनिधि होनेके लिये अयोग्य आकार) ।

विचारकी पहिली शरथामें हम वस्तुका अपने दिमागमें स्थित—द्व द्वतापूर्ण 'सचीव' विशय—से अलग कर लेते हैं, ता कि वास्तविकता नहीं है । वास्तविकता लानेके लिये उन पृथक्कृत वस्तुका फिर उमके

‘धर’में रगना होगा, जिसमें कि वह फिर ‘सजीव’ विश्वका अग्न मन चाये—गोया इस प्रकार हम पहिली व्यवस्था (पृथक्करण) का प्रतिषेध करते हैं, ऐसा किये बिना हम ग्रन्थात्मवाद, विज्ञानवादकी मानसिक भूल भुलैयोंसे बच नहा सकते । इसीलिये, लंनिङ्गा दूसरा सूत्र—

० हमें प्रत्येक वस्तुके दूसरी वस्तुओंके साथ अनेक प्रकारके जो सम्बन्ध हैं, उनके सारे योगफलपर विचार करना चाहिये ।

प्रत्येक वस्तु यही नहा कि विश्वव्यापी घटनाका एक अंश है, बल्कि वह स्वयं भी वस्तुतः एक घटना - अतस्तम भागम भी किसी तरहके स्थिर भाससे शून्य निरन्तर परिवर्तनशील प्रमाह—है, इसलिये उसके “स्वभाव”को उसकी प्रकृतिम समाये रूपमें समझा जा सकता है, न कि उमे परिवर्तनके रूपसे अलग करके । अतएव, हमारे लिये विचारणीय हैं—

३ वस्तु या प्रतीयमान विश्वका^१ विकास, उसकी अपनी गति, उसका अपना ‘जीवन’ ।

किन्तु, यह विकास ऐसा नहीं है, जो कि हेतुके बिना ‘दैवी चमत्कार’ की तरह अपने आप जारी हो गना हो, यह विकास सदा आन्तरिक द्वन्द्व (विरोध) तथा गहरी संघर्ष—जिनम सुद्वन्द्व भी शामिल है—का परिणाम है । हम विकासकी व्याख्या उतनी ही कर सकते हैं, और बुद्धिसम्पन्न तरीकेसे उसे उतना ही समझ सकते हैं, जितने परिमाणमें कि हमने वस्तुके आन्तरिक द्वन्द्वकी रीति की है । अतएव—

४ हमें वस्तुमें (उसकी) आन्तरिक विरोधी प्रवृत्तियों (तथा पहलुओं)की तलाश करनी चाहिये, उन्हें देखना चाहिये ।

५ वस्तु (या आकार आदि)को विरोधोंके योग या एकताके तौर पर भी देखना चाहिये ।

^१ Phenomena

६ हमें इन विरोधोंके मध्य या प्राक्त्व तथा जा इन मध्य आदिके साथ टकराता है, उसका परीक्षण करना चाहिये ।

हर एक वस्तु अपने स्वरूपमें अतिमिश्रित पचीरगितास भरी है । उभय वातोवाले शर पदार्थों और विशेषताओंकी गिनती नहीं की जा सकती । यह विशाली दूसरी वस्तुओंमें प्रत्येकके साथ मिला मिल प्रवाह संचय रहती है । उसका परिणाम हमें तभी हो सकता है, जब कि हम उसे इन भागोंमें विभक्त— (विश्लेषण)—करके देखें और इन भागोंमें उनके वास्तविक मध्यके साथ संघट्ट (संश्लेषण) करके विचार करें । अतएव, वस्तुके अथवा शक्तके निये रहती है—

७ विश्लेषण और संश्लेषणकी एकता, भिन्न भिन्न भागोंमें तथा पूर्ण योगमें विभाजन—इन भागोंको एक साथ जमा करना

८ प्रत्येक वस्तु (या आकार आदि) में मध्य—विभक्त ही नहीं, बल्कि साधारण, सामान्य (सत्रय भी) । प्रत्येक वस्तु (आकार, घटना आदि) सभी दूसरी वस्तुओंमें संघट्ट है ।

९ सिर्फ विरोधोंकी एकता [समागम] ही नहीं, बल्कि सभी दूसरी स्व विरोधी (वस्तुओं) का प्रत्येक निश्चय, प्रत्येक गुण, प्रत्येक विशेषता, प्रत्येक पहलू, प्रत्येक स्वभावका भी ।

१० नये पहलुओं, मध्यों आदिके प्रकट होनेकी अपरिमित प्रक्रिया ।

११ मनुष्यों द्वारा वस्तुओं, आकारों, घटनाओं आदिके ज्ञानके गभीर होने—बाहरी रूपसे सार रूप तथा कम गहराईसे अधिक गहराई तक पहुँचने—की अनगिनत प्रक्रियाएँ ।

१२ सह भावसे कार्यकारण-संघट्ट (हेतुता) और जोंड (सन्धि) तथा एक-दूसरेकी निर्भरताके एक रूपसे दूसरे अधिक गहरे तथा अधिक बहुव्यापी (साधारण) रूपमें पहुँचनेकी अनगिनत प्रक्रियाएँ ।

विरोधाके गीच होता यह सघर्ष विकासका कारण बनता है, तथा एक सीमा पर पहुँचकर पूरे स्थिति-प्रवाहसे एक बिल्कुल मान्तिमारी निच्छेद उपस्थित करता है, और पुरानेकी जगह एक नई वस्तु (या गुण) प्रकट होती है। इस प्रकट होनेकी विशेषता है, एक स्थितिसे बिल्कुल भिन्न स्थितिमें वृद्धना—शान्त प्रवाहका प्रवाहित होना नहा, बल्कि पिछले प्रवाहका निच्छेद कर एक नये प्रवाहका उपस्थित होना। इस कुदानके स्वरूपको लेनिन्ने अपने शेष चार सूत्रोंमें बतलाया है—

१३ (वस्तुकी) निम्न अवस्थामें पाई जानेवाली कुछ विशेषताओं, गुणों आदिकी उच्च अवस्थामें आवृत्ति होना।

१४ पुरानी(अवस्था)की ओर दिखलावटी लौटना (प्रतिपेधका प्रतिपेध) ,

१५ (बाहरी) आकारका (भीतर रहनेवाले) सारके साथ सघर्ष तथा सारका आकारके साथ सघर्ष।

१६ परिमाणका गुण तथा गुणका परिमाणके रूपमें परिणत होना।

१५ वें और १६ वें सूत्र ६ वें सूत्रकी व्याख्या हैं। यदि रचना चाहिये कि द्वंद्ववाद मार्क्सवादके ज्ञानका सिद्धांत है—इसके द्वारा ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। सूत्रमें उक्त बातोंकी व्याख्या अपेक्षित है, जिसे हम आगे कहनेवाले हैं, इसलिये यहाँ रहनेकी जरूरत नहा।

४ क्षणिकवाद

द्वंद्ववादके रूपका जो दिग्दर्शन ऊपर हुआ है, उससे स्पष्ट है, कि वह विश्व और उसकी वस्तुआ—वस्तु नहा घटना—को परिवर्तनशील गतिशील प्रवाह मानता है। इसके समझनेके लिये आइये इन बातों पर अलग अलग विचार करें।

(१) परिवर्तन—जिस वस्तु मनुष्य भाषाका विकास कर रहा था—और उसमें काफी आगे तक पहुँच चुका था, उस वस्तु का दृढ़ता से पकड़ नशा हुआ था, जिसके कारण कुछ अपरिहार्य दोष हमारी भाषाओं में रह गये हैं। हम विश्वकी घटनाओंका प्रवाह न समझ, उसे वस्तुओंका समूह मानते हैं, उसीके अनुसार हम भाषामें गति-परिधिता शैलीका प्रयोग पद “होता है” (भवति) न कहकर, “है” (अस्ति) कहते हैं। हमारी बहुत-सी दिक्कतें, गलतफहमियाँ दूर हो जायँ, यदि हम ‘अस्ति’का वायनाट कर हर जगह ‘भवति’का प्रयोग कर। हर ‘जीव’ ‘है’क अवस्थाम नहीं, बल्कि ‘होने’की अवस्थाम है। ब्रह्मवादका ‘है’ के कोई संबंध नहीं, चाहे भाषाकी अनिनायतासे हमें उसका प्रयोग भले ही करना ही—वह सिर्फ ‘होना’से संबंध रखता है।

परिवर्तनशीलता (क्षणिक)वादकी अस्ति विरहित कर उसे एकमात्रका रूप देनेका भारी श्रेय मार्क्सवादको बहुत दृढ़ तक जरूर है किन्तु यह सिद्धांत बहुत पुगना है। बुद्ध (५६३ ४८८ ई०) और उनके समकालीन यूनानोंका दार्शनिक हेराक्लितु (५३५ ४७५ ई०) दोनों ही क्षणिकवाद (अनित्यवाद) के महान् समर्थक थे। सौदाका तो इतने समय यह नारा रहा कि “जो है वह क्षणिक है”^१ जा क्षणिक नहीं है वह ही नही। हेराक्लितु कहना था, “(जगत्की) सृष्टि उसका नाश है, उसका नाश उसकी सृष्टि है, जो, जीव नहीं है, जिसके पास स्थायी गुण हो। समीतका समन्वय निम्न और उच्च स्वरोंका समागम—विरोधियोंका समागम—है। यह (क्षणिकता) एक ऐसा नियम है, जिसे न देवताओं ने बनाया, न मनुष्योंने। यह सदासे रहा है और रहेगा।” बुद्ध और हेराक्लितुके क्षणिकवादी दर्शनपर हम अचर^२ कह चुके हैं।

हेगेल (१७७० १८३१ ई०) यद्यपि विज्ञानवादी था किन्तु वह अचर (४०० ई०) की भाँति मानता था कि विज्ञान स्थिर नहीं, क्षणिक

^१ “यत् सत् तत् क्षणिकम्” ^२ देखो “दशन दिग्दशन”

है, इसीलिये उसे शकगचार्यकी तरह मायावाद—ग्रीमे साँपके भ्रमकी भाँति यह जातु श्रमोंके सर्वथा विलक्षण ब्रह्मभ्रम, मायामान हैं—का सारा गढ़ लेना पडा। हेगेल्की पहिलेने चले आते विज्ञानवादमें परिवर्तनशीलता(क्षणिकता)को मिलाकर उने एउ कदम आगे बढ़ाया। किन्तु पहले हीमे मौजूद असमके क्षणिकवादको “प्रच्छन्न बौद्ध” शंकराचार्यका स्थिर ब्रह्मवाद—मायावाद—का रूप देना, उनके प्रयत्नकी प्रगतिकी आर नहीं, बल्कि पतनकी आर उत्पत्ता है। मार्क्स एंगेल्सके वैज्ञानिक (ड ड् ट्मरु) भौतिकवादाने हेगेल्के इन्डामनवादको काल्पनिक विज्ञानवादसे मुक्त कर उने आगे बढ़ाया।

एन्गेल्स परिवर्तनशीलतावादने ‘गारेमें समझाते हुए कहते हैं’—

“जब हम सारी प्रकृति या मानव-जानिके इतिहास या यास अपनी ही वैज्ञानिक (मानसिक) क्रियापर विचार, मनन करते हैं, तो सबसे पहले सभों, टक्करों, योगों विभागोंकी न खतम होनेवाली उलझनोंका चित्र हमारे सामने आता है। इस (चित्र)में पहले जो जहाँ जैसा था, (दूसरे क्षण) उसमें कुछ भी बच नहीं रहता, सब कुछ चल रहा (गतिशील) है, अस्तित्वमें आ रहा, और मिलीन हो रहा है।

“अतएव पहले-पहल हम चित्रको संपूर्ण (रूप)के तौरपर देखते हैं, उस वक्त उसके अलग अलग अन्वय कम या अधिक (नजरसे) आकलन रहते हैं, हम (वहाँ) गति, परिवर्तन, सबध देखते हैं, न कि (ऐसी) चीजें, जो कि गति या सबध कराती हैं और (परस्पर) सबध हैं।

“यह विचार, यद्यपि दृश्योंके चित्रके सामान्य स्वरूपको पूरे आकारके तौरपर ठीकसे प्रकट करता है, लेकिन वह तबतक चित्रको बनानेवाले विस्तार(अंशोंमें)को समझानेके लिये पर्याप्त नहीं है, और

जब तक हम इस (अर्थात् विज्ञान) को नहीं समझते तब तक हमें यह चिन्ता स्पष्ट नहीं हो सकती। इस अर्थों में जातीय लिये हमें उन्हें उनके प्राकृतिक या ऐतिहासिक संघर्षों में अलग करना होगा; फिर प्रत्यक्ष—उत्पन्न मनुष्य, विशेषकर, वायु आदि के माध्यम—परीक्षा करनी होगी। प्राकृतिक (भौतिक) माध्यम और ऐतिहासिक माध्यमों का यह मुख्य काम है।

“लड़कियाँ, (माध्यम) काम करके इस ढंग से हमारे हैं यह प्रादुर्भाव लगा दी है कि हम प्राकृतिक वस्तुओं तथा घटनाओं का दृष्टिकोण—विशाल सम्पूर्ण (आकार) में उनके संघर्षों द्वारा—देखते हैं, उन्हें हम गतिशील अवस्था में नहीं, स्थितिशील अवस्था में, परिवर्तनीय नहीं, स्थायी (रूप) में, जीवन (या अजीवन) में नहीं, बल्कि मृत्यु (की अवस्था) में देखते हैं।

“हमक विज्ञान द्वारा वस्तुओं और उनके (मानस) चिन्तकों को उनके आवश्यक संघर्ष, सहभाग्य, गति, आरम्भ और अन्त (के रूप) में देखना है।

“प्रकृति द्वारा बनाया प्रमाण है। प्रकृति अभिवृत्ति (आध्यात्मिक) रीति में नहीं, बल्कि द्वारात्मक रीति में (अपना) काम करती है। वह भ्रमों में आवृत्ति करनेवाले चक्र (गुण) का सनातन अद्वैतता (के रूप) में नहीं, बल्कि एक वास्तविक ऐतिहासिक (7 दुष्टाचारों के जानेवाले) विकास के रूप में काम करती है।”

विज्ञान वस्तुओं का समूह नहीं, घटनाओं का समूह है, अर्थात् जिसे हम वस्तु कहते हैं, वह वस्तुतः परिवर्तनीयता के प्रवाह है। एक पीपल के पत्तों की लीनिये। वह उस समय छाटे छाटे कणों का समूह जान पड़ता है, किन्तु यदि अणुबीजों की सहायता से लारवा गुना बनाकर देखें, तो वे कण अपने समूहों के भीतर निरन्तर बदलते दिखाई देंगे।

इस तरह हम नगी आँसूसे पत्तेमें निश्च स्थिरताओं देखते हैं, सूक्ष्मतामें जानेपर उसे उसका अर्थव्यव स्वीकार नहीं कर सकते ।

परिवर्तन विश्वके रोमरोममें है, प्राणि अप्राणि सारा जगत् इस नियममें जकड़ा हुआ है । विचार बदलते रहते हैं, राय बदलती रहती है, हमारी रूचि अरूचि, हमारी सदाचारीय मूल्य आँकनेकी भावना, हमारी समझ, खुद हमारा स्वभाव भी बदलता रहता है । अपने वातावरणके कारण हम बदलते, नये बन रहे हैं, और हमारे प्रभावमें आकर वातावरण भी बदल रहा और नया बन रहा है । हम भी उसके लिये वातावरण हैं । विश्व स्वयं अपनेको बदलता, नया बनाता प्रकट करता है । उसका हरएक भाग गति कर रहा है । हरएक दृश्य वही नहीं है जो कि एक क्षण पहले था । कोयलेके एक टुकड़ेको हम जलाते हैं—वह अब कोयला नहीं, बल्कि धुआँ और प्रभास्वर ताप है । वह अब चमकता काला डेला नहीं है, बल्कि गिरे हुए कण हैं, जो कि आकाशमें फैल रहे हैं । हरएक परिवर्तन पहले क्षण किसी वस्तु या वस्तु-समूहकी गतिके रूपमें दिखलाइ देता है, जिस गतिके साथ उस वस्तुकी कुछ विशेषताएँ तथा दूसरी वस्तुओंके साथ उसके सम्बन्ध भी तन्दीली हो रही है ।

तोकिन, इस गतिको सीधे-सादे तौर से देशमें एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना नहीं समझना चाहिये, बल्कि जैसा एन्गेल्सने कहा है “यह वास्तविक ऐतिहासिक (न दुहराया जानेवाला) विकास है ।” विश्वमें घटित हो रहा, प्रत्येक परिवर्तन, एक नवीन भाव (वस्तु)को अस्तित्वमें लाता है । विश्व परिवर्तनशील विश्व है । एक क्षणसे दूसरे क्षणमें भी वह वही (पहिले क्षणवाला ही) नहीं है । प्रत्येक सॉस, जो मैं अपने सेलमें इस वक्त ले रहा हूँ, वह सेलके वायु-मण्डलके ऑक्सीजन, गार्मन आदिके परिमाणमें अन्तर पैदा कर रहा है । परिवर्तनशील विश्व कहनेका यह भी मतलब है कि उसके गुण भी बदल रहे हैं ।

इस आमूल परिवर्तनमें सन्देह करनेकी जरूरत नहीं, जब कि हम

मालूम है कि भौतिक तत्वोंके भीतर घुसने पर हम जिं हाइड्रोजन आदि (६२) परमाणुओं पर पहुँचते हैं, उनमें रेडियो क्रियावाले परमाणु^१ स्वतः टूटकर बदलते हुए एकसे दूसरे तत्वमें परिणत होते रहते हैं। रेडियो क्रियावाले परमाणु—उाके नामिकण—जो टूटते हैं, वह किसी गहरी प्रहारके कारण नहीं, बल्कि अपने भीतरकी विरोधी शक्तियाँ समागम के ही कारण। यूट्रनसे गोला गरी करके हानम साइस वैज्ञानिकों परमाणुके आकार-गुण सम परिवर्तन कर हजारों तरहके नये रासायनिक मिश्रित तत्वोंको तैयार किया है।

सदृश उत्पत्ति—प्रकृतिके अतस्मय परिवर्तन और भी नास्तिकारी है, और भी आमूल है, यह तो मालूम हुआ। अब सवाल उठेगा कि ऐसा होपर हम “यह वही है” का ख्याल क्या होता है? यहाँ हमें लेनिन्के १३वें १४वें खण्डोंके फिर दुहराना पड़ेगा। परिवर्तनकी कृदान निम्न शक्तोंके साथ होता है—“निम्न अवस्थामें पाइ जाओवाली कुछ विशेषताओं, गुणों आदिकी उच्च अवस्थामें आवृत्ति होनी, और पुरानी (अवस्था)की गार दिखलावटी लीटना।” इसका अर्थ है कि हर एक नई उत्पत्ति पुरानेके सदृश होती है। इस सदृश-उत्पत्तिके कारण वैज्ञानिक भ्रम होना आश्चर्यकी बात नहीं है।

(२) गति—“गतिके बिना भूत (भौतिक तत्व) रह नहीं सकता कोई ऐसी गति नहीं जा कि भूत गति नहीं है”, देमोक्रितु, लुके लिउत से लर माकर्म, एन्नेल्स, लेनिन् होते आज तक सारे भौतिकवादियास गरी नारा रण है। एन्नेल्सने लिखा—^२

“गति भूतक (अपने) अस्तित्व (रहने)का स्वरूप है। बिना गतिके भूत न कभी या, और न कभी रहेगा। (हम देखते हैं)—

^१ प्लामियम, रेडोन्, रेडियम, अक्टिनियम, थोरियम आदि। देगा, “विश्वकी रूपरेखा”।

^२ Anti-Dahring (1878) p 71

विश्व-आकाशमें गति, नाना प्रकारके आभासीय पिंडोंके ऊपर छोटे-छोटे पिंडोंकी यात्रिक ('गुरुत्वाकर्षण वाली') गति ताप या विद्युत्-सुभ्रवीय तरंग, रासायनिक मिश्रण और विद्युत्न या प्राणि शरीरके रूपमें अणु, गुच्छक्रीड़ी गति—जिसी भी समय विश्वमें भूतका प्रत्येक परमाणु इन गति प्रकारोंमेंसे एक या दूसरे रूपमें, अथवा एकाएक इन प्रकारोंमेंसे अनेक रूपोंमें होता है। सभी (तरङ्ग) विभाम, सभी साम्यावस्था सिफ सापेक्ष है, और उसे गतिके प्रकारोंमेंसे किसी एककी अपेक्षामें ही समझा जा सकता है।^१

(३) विश्व विच्छेदयुक्त प्रवाह—परिवर्तनके सारमें लिखने वक्त हम बतला आये हैं, कि किस तरह विश्व और उसके क्षेत्र परमाणुओं तक पर परिवर्तनका नियम लागू है। भौतिक तरंगके सूक्ष्मतरंग ज्ञात अश एलेक्ट्रॉन्^२को ले लीजिये। साइसकी ताजा गणितज्ञानोंने सिद्ध किया है, कि वह कण-तरंग है—अर्थात् उसमें कण-जैसी एकदेशायताके गुण भी हैं, और तरंग-जैसे प्रवाहके गुण भी, जिसका भाव अर्थ है कि यह सीमित—परिच्छिन्न—विच्छिन्न (विच्छेदयुक्त) प्रवाह है। द्वन्द्ववाद इसी विच्छिन्नतामें तथा उसीके द्वारा होते विश्वका घटना प्रवाह मानता है। विश्व और उसके पदार्थोंके प्रत्येक अभिनव रूप, अभिनव गुणके उत्पन्न होनेके साथ ही अतीत रूप, अतीत गुणमें विच्छेद हा जाता है। इसीलिए, द्वन्द्ववाद सिफ प्रवाह कहकर ही नहा ठहर जाता, बल्कि उसे विच्छिन्न प्रवाह भी कहता है। विच्छिन्न और प्रवाह दो परस्पर विरोधी बातोंको सुनकर घबडाना नहीं चाहिये। द्वन्द्ववाद विरोधि-समागमवादका ही दूसरा नाम है। यदि सनातनी तर्कशास्त्री समझमें यह नहीं आता, तो उसे जगलकी राक छानने दीजिये। प्रकृति जो स्वयं इसका समर्थन करती है, तो तर्क बपुरा किस श्वेतकी मूली है।^२

^१ देखो "विश्वकी रूपरेखा"

^२ "यदिद स्वयमर्थाना रञ्चते तत्र के वयम्"—प्रमाणवार्त्तिर

विच्छेदयुक्त प्रकाशके सम्झौते नियम १ तरहकी गतिशक्ति साधित है।
 मध्य सरलता है—एक स्थानको छोड़ना जाता है, उमकी गति निरन्तर प्रकाश
 है। और, मध्यकी दुरान (मध्य प्लुग) एक दूसरे ही तरहकी गति
 है, निम्न मध्य हर स्थानको छोड़ता नहीं है, इस स्थानपर है, और फिर
 उदर परांच लयके आगम को मध्य रीति विना नय स्थानपर प्रापडता
 है। विन विच्छेदयुक्त प्रकाशके बारेमें हम क्या कहें हैं, न ही हमें तरहकी
 मध्य मुद्रा है। अकगणितको हम इस तरहकी मध्य-मुद्राके मध्य
 देगते हैं। मध्यका एक ही मध्यमे दो ही मध्यपर क्या हम मध्य-गतिसे
 जाते देगते हैं, या मध्य मुद्राके ? हर अक्षरपर यही बात है। अन्तम हम
 कहा १, २, ३ का प्रकाश पाते हैं, वहाँ १ न दो, २ से तान के
 मुद्रा विच्छेदका भी पाते हैं। यह साध विच्छेद (मुद्रा) युक्त प्रकाश है।

इस विराट् समागम—विच्छेदयुक्त प्रकाश—के १ होने पर प्रकृति
 'विज्ञान' वैचित्रीहीन क्षणी। आन्तरिक विद्येमात्रा बहुत प्रचार है। नागरिक,
 सामाजिक सभी लीला विद्विनीम और रसुजा देवीके अभियांत्रिकी आनन्द
 लते हैं। जानते हैं, विद्येमात्रे चल चित्र किस तरह रूपदले पदों पर प्रति
 विधित हो हमारे मोरेंजाने कारण बनते हैं। वहाँ भी कण-तरंग,
 विच्छेदयुक्त प्रकाश मौजूद है। फिल्म सेम्टी पीट लम्बा पाण्डशक (काँच
 का) पता है, जिसपर छोटी छोटी चौमोर तसवीरें हैं। इन इन्-दो-इन्-लम्बी
 चौड़ी चौमोर तसवीरोंको कागज पर लेकर यदि आप आतशी शीशेसे
 देखें, तो वह चौमटीम लगी 'विज्ञान' (गतिरत्न) तसवीरें हैं। किन्तु,
 न ही वह छोटे-छोटे तसवीर मनकानी माला (कण-तरंग) के रूपम एक
 क बाद एक पद परसे गुजरता है, तो उनको हम उस रूपम देखते हैं,
 जिसे चल चित्रपट कहते हैं। किन्तु, यहाँ एक बात और ख्याल रखिये,
 यदि विद्येमात्रे मशीन-बालटेनेरे मूँसे गुजरते न ही एक तसवीरको
 दूसरी तसवीरमे 'अविच्छेद' क्रमसे लगा दिया जाय, तो जानने हैं
 तसवीर आपका वैसी दिग्गलायेगी ?—विल्लुल अस्पष्ट, विना पानस्-रिये

कमरेसे खींची तस्वीर अथवा साठ वर्षके बूढ़ेकी ऐनकको लगाकर चलने-
वाले बालककी आंखमें देग्नी जानेवाली 'दुनिया'की तरह। इसीलिये,
सिनेमाकी चित्र मालामें एक तस्वीरको दूसरीसे पिच्छेद करनेका इन्तिजाम
किया गया है। इसी पिच्छेदयुक्त चित्र प्रदर्शना चमत्कार है, जिसे कि
हम सिनेमाकी चलती-पिरती तस्वीरोंमें पाते हैं।

घ. द्वन्द्वात्मक (वैज्ञानिक) भौतिकवाद

भौतिकवादके कई भेद हैं, ग्रासरूप उसके ऐतिहासिक प्रवाहमें।
एक पुराण भौतिकवाद था, चाणक्यको निम्नका समर्थक उतलाया जाता
है, और कहा जाता है कि वह सिध प्रत्यक्ष प्रमाणको मानता था—
गोया वह मनुष्यकी मस्तिष्क शक्तिके इस्तेमालको ठीक नहीं मानता था।
लेकिन, हम नहा समझते, चाणक्य इतना उच्चोक्त्या-दाशनिक था।
उमका प्रत्यक्ष प्रमाण पर जोर देनेका यही मतलब हो सकता है, कि
इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान 'परमार्थ' सत् है, दूसरी तरह—
फलना आदिके द्वारा अनुमान-उपमान शब्द—से जो ज्ञान
प्राप्त होते हैं, वह उतने ही अशमें प्रामाणिक होंगे, नितने अशम
कि उन् प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता प्राप्त है।—प्रत्यक्ष मूधाभिरिक्त
प्रमाण है, दूसरे उमक चाकर है। चाणक्यके समय कुञ्जी पर चलनेवाली
गड़ी अथवा वाघ चालित यंत्रोंका पता नहीं था। पीछे इन यंत्रोंके
अस्तित्वमें आनेपर जो भौतिकवाद प्रचलित हुआ, उसे यानिक भौतिक-
वाद कहते हैं।

(?) यानिक भौतिकवाद—पुराण भौतिकवादमें 'स्मरण' डालने
में शरणाके नशाकी उत्पत्तिकी भांति भूतसे चेतनकी उत्पत्ति उतलाते
थे। लेकिन, जब चाभी देकर हफ्ता नहा, क्यों चलनेवाली घड़ियाँ चलने
लगा, तो इसे लेकर दो तरहके दाशनिक विचार पैदा हुए, निम्न एक
तो द-काव-जैसे उन ईश्वरनिश्वासियाँ गिरोह, जो कि विश्वको भारी

घड़ी यत्र और इश्वरको चाभी लगानेवाला मानते थे । इस यात्रिक इश्वरवादमें ऐसे विचार भी शामिल थे, जिनमें इश्वरको प्रलय करने लिये चाभी लगा प्राराम करते बतलाया गया था, और इसीलिये उन्हा कहता था, बीचमें सारी रातें प्राकृतिर नियमसे चलती हैं । दूसरा विचार यात्रिक भौतिकवादियां था, जो घड़ी, घड़ीसाग सगको भौतिक मानकर कहते थे, कि किसी ईश्वरको सृष्टिके आदिमें चाभी देने तथा प्रलय (रुयामत) के समय नाश करनेकी जरूरत नह। मरहदा अठारहवीं सदीमें यत्राके जो तर्क-संरहके यात्रिकार हुए थे, उनका प्रमाण भौतिकवाद पर पडना जरूरी था । यात्रिक भौतिकवादियाके लिये मन और भूत एर ही चीज थी । इस अर्थमें नह। कि प्रकृतिसे मन निरगित हुआ है, बल्कि दोनों अभिन हैं । गुणात्मक परिवर्तनस—विच्छेदयुक्त प्रवाह द्वारा—मिस तरह बिलकुल नश वस्तु—घटना—पैदा हाती है, इसे वह मन्द्य नही देते थे । उनके लिये मिस तरह घड़ी उसके पुजोंका याग है, जैसे ही मन भी उसके बनानेवाले भौतिक तत्त्वोंका योग है । अठारहवीं सदीके यात्रिक भौतिकवादके बारेमें एंगेल्सने लिखा था ^१—

“पिछली सदीका भौतिकवाद बहुत अधिक यात्रिक था क्योंकि उस समय सभी प्राकृति भाईसोंमें यत्रशास्त्र और (उहाँ भी) वस्तुतः ठोस पार्थिव तथा प्राकाशीय पिढोंका यत्रशास्त्र—सक्षेपम गुह्यवाकर्षणका यत्रशास्त्र एक निष्पक्षपर पहुँचपाया था । दे-कात^२ के लिय जेमे पशु (जीव-रहित स्रप्रवह यत्र) था, वेने ही अठारहवा सदीके भौतिकवादियाके लिये मनुष्य एर यत्र था । रमायन और प्राणि-सवधी स्रभार (मिस घटनाओंमें, यह सच है—यत्र शास्त्रके नियम भी लागू हैं, किंतु दूसरे उनसे उच्चतर नियमों द्वारा वे भा पत्र दिये जाते हैं) की घटनाओंमें

^१ Ludwig Feuerbach pp 367)

^२ दे-कात सिफ मनुष्यों और परिश्रतोमें ही जीवात्माकी सत्ताका स्वीकार करता था, बाकी प्राणी उसके लिये जीव-रहित यत्र थे ।

इस तरह सिर्फ यत्र शास्त्रने मानोंके प्रयोगका अभाव पुराने फ्रेंच भौतिक-वादकी एक खास कमी थी, जो कि उस समयके लिये अनिनाय भी थी।

“दूसरी खास कमी उस भौतिकवादकी इस बातमें थी कि वह विश्वको घटना प्रवाह—ऐतिहासिक घटना प्रवाहके तौरपर विकसित होते भूत (भौतिक तत्त्व)—के तौरपर समझनेकी क्षमता न रखता था। वह समझता था कि प्रकृति निरन्तर गति कर रही है। किन्तु, उस समयके विचारके अनुसार यह गति सदासे एक वृत्त पर हो रही है, इसलिये उस स्थानसे कमी नहीं हटती, और फिर उन्हीं परिमाणोंको उत्पन्न करती है।”

फ्रांसीसी भौतिकवादी दोल बाश^१ (१७२३-८६ ई०) ने लिखा था^२ —“हम (भौतिकवादीयों)को कोई अपत्ति नहीं होनी चाहिये, यदि कोई व्यक्ति पहिलेकी कल्पनाओंसे इन्कार करता है। यदि कोई मनलाता है कि प्रकृति अटल एव नार्गनिक नियमोंके खास समूहके अनुसार काम करती है, यदि कोई विश्वास करता है कि मनुष्य, चीपाया, मट्टली, कीड़े, वृक्ष आदि जैसे प्राण हैं, वैसे ही सदासे रहते आये हैं और रहेंगे, यदि वह जोर देता है कि तारे नभ-मंडल में अनन्तकाल तक जगमगाते रहेंगे।” यानिक भौतिकवादकी यह यानिक जडता ही थी, जिसने विज्ञानवादको आगे बढ़ानेमें काफी सहायता पहुँचाई, यद्यपि उसमें सत्रसे सहायक थी मध्य और उच्चजगत्के शिक्षितके दिमाग की श्रान्तिके नामसे उत्पन्न हुई परेशानी।

(२) वैज्ञानिक भौतिकवाद—द्व द्ववादके चारोंमें हमने उतलाया कि वह द्व द्वसमागम, विच्छेद-युक्त प्रवाह और गुणात्मक परिवर्तनका सिद्धान्त है। भूत और भौतिकवादको भी हम उतला चुके, और यह भी कि यानिक भौतिकवाद—अपने समयके लिये काफी प्रगतिशील रहते

^१ D Holbach ^२ Essays in History of Materialism (by Plekhanov) p 13 में उद्धृत।

भी— यह उलभनांग अपने काटके शक्ति का पुनर्जागृत अन्वय था । भौतिकवाद + दार्शनिक = दार्शनिक भौतिकवाद ही वैज्ञानिक भौतिकवाद कहते हैं, भौतिकवाद का उत्कृष्टतम विभाग है, और यह विज्ञान के सारे क्षेत्रों का आधार है ।

(1) व्याख्या— वैज्ञानिक भौतिकवाद यह भौतिकवाद है, (क) जो अतिभौतिक (आध्यात्मिक) और विज्ञान की धारणाओं को खारिज करता है, (ख) जो कि प्राकृतिक जगत् (जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित है) को विकसित करते, सम्बन्ध-परिवर्तन के निरन्तर घटता प्रगच्छक रूपों स्वीकार करता है, (ग) इसी विज्ञान के उच्चतर विभाग ही ऐसे तरीके पर अपनी विज्ञान प्रक्रिया का अन्त करता है— यह सभी सम्बन्धों को उच्चतर दृष्टि का शक्ति के एक दूसरे के अन्तर्गत, उच्चतर प्रयोग का एकता, और उनके विज्ञान-संरक्षी गहरी भीतर परिणामाशा (फी टि) में देखना चाहता है ।¹

साइंस-युग के आरम्भ में एक समय था, जबकि दर्शन भी धर्म की भाँति उपेक्षित था, किन्तु काटके हेगेल जैसे चार्सिकों ने उसे वैज्ञानिकी का शिवाय की । काटके प्रतिभा और प्रयोग की सारी कसौटियों को कुचिड़ उतारके, और हेगेल ने साइंस के आधार द्वारा मरुभूमि (भौतिक) नरक ही द्वारा अन्त विज्ञान का देकर अपने दर्शन के लिये साइंस की महत्ता प्राप्त की । इस समय नहीं कि काटके और हेगेल के प्रयत्न के दर्शन की वह गत नहीं बना दा, जो कि धर्म की हृदय । और उसके बाद तो दर्शन यहाँ तक गया करने लगा कि वह सब साइंस का ऊपर महावाङ्मय है, वैज्ञानिक भौतिकवाद अपने ही साइंस का विज्ञान शासन— महाराजा— नहीं समझता, उसकी इस विषय का काय है, इसे हेगेल के शब्दों में सुनिये—²

¹ Dialectics (by T A Jackson) p. 22

² Socialism pp 39 40

(11) उद्देश्य—“आधुनिक [वैज्ञानिक] भौतिकवाद सारत द्वैत-वादी है, और उसे उस प्रकारके (दशन विद्या) की काई जरूरत नहीं, जोकि महाराजाकी भाँति राखी सभी माईमाँकी भीड़पर ‘मेरा शासन है’, यह दिखलाना चाहता है। प्रत्येक रास साइसके लिये वस्तुओंके उडे समुदाय और वस्तु-सम्बन्धी हमारे ज्ञानके बीच अपनी स्थितिसे साफ करना जरूरी है, और जैसे ही यह यह कर लेता है, वैसे ही इस सारे समुदायके लिये उपयोगी एक रास साइसकी जरूरत नही रहती। अब भी पहलेके सभी दर्शनोंमेंसे जो कुछ उच रहा है, वह है विचार और उसके नियमोंका साइस—प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वैतवाद। और राखी सभी बातें इतिहास और भौतिक (प्राकृतिक) साइसके अंतर्गत न गइ हँ।”

इस तरह साफ है, कि वैज्ञानिक भौतिकवाद अपनी वही स्थिति नहीं समझता, जो कि दूसरे दशन। पैसोंके लिये—दो-चार नहीं दो-चार हजार दो-चार लाखके लिये—जुआ-चोरी, रिश्वत, बेइमानी, वही-खातेका बाल सब कुछ करनेवाला शिक्षित धनिक-वर्ग तथा उसके पिछू जिन तरफ रोटीकी बात करतेही नार भी सिकोड सातों ग्रासमानपर बैठे देवताकी तरह बोल उठता है—मनुष्य रोटीसे नहीं जीता, रोटीका बवाल रचना मानवताका अपमान है, मनुष्यको “नेह नाना”, ‘सत्य शिव मुंदर’, ‘तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेद यदिद उपासते ।’” ठीक इसी तरह दशन भी अपनेको सातवें ग्रासमानका देवता समझ “राम नानाशाहके हुन्मनामे” निकालता है, जो नितांत परिहासास्पद है, इसे करनेकी आज्ञा नहीं।—और इसे दार्शनिकताम अधिन सोचने-समझनेकी शक्ति गहन घाले बूझते हैं। इसीलिये तो वह भी पुराने समयमें (और अब नजर-तर)—जैसे कणाद, गौतम, गजाली, उद्वेग—और बुद्ध

“यहाँ नाना” है”, “सत्य, अच्छा, सु”, “सुखी ब्रह्म
 शान करो, २ कि (पामर लोग) उद्वेग, कहे हैं

आपमें धूल मूर्खनेके लिये काट और विनियम जेम्हने भी—धर्म और दर्शाके समबयसी काशिश की थी, उसी तरह आज भी कुछ लाग दर्शन और साइंसका समारथ करना चाहते हैं ।

इससे एक बात और साफ हो जाती है, कि मानवकी प्रगतिम दर्शन धर्मके आगे आनेवाली स्थिति रखता है । इसलिये दुनियामें सभी जगह दर्शनको गाली देते देख भी धर्मको उसकी सहायता पानेके लिये अपना साथ पमारता पड़ा । साइंस दर्शामे भी आगेकी प्रगति है, इसलिये "लोग क्या रहेंगे"के खयालसे दर्शन चाहे साफ स्वीकार न करे, किन्तु यह भी साइंसका मुँह जेड़ता है । "राम रादशाहना हुक्मनामा" निजालनेसे दर्शन साइंसका महाराज नहीं हो सकता । वैज्ञानिक भौतिकवाद अपनेको साइंसोंके ऊपर नहीं समझता और न साइंससे अलग । यह सभी साइंस—ज्योतिष, भौतिकशास्त्र, रसायन, प्राणशास्त्र के गवेषणीय विषय इद्रात्मक भूतको आगामि आत्मन न होने देनेकी कोशिश करता है । इसकी वर्तमान अवस्थामें कितनी जरूरत है यह आप आसानीसे समझ सकते हैं, जगरि जीन्स और एडिंग्टन जैसे साइंसदानोंको धर्म दर्शन—राज तथा वर्तमान समाज-व्यवस्था—की चापलूगी करते हुये अपने पदको ठीकरों ("सर")के मूल्य बँचते देखते हैं । वैज्ञानिक भौतिकवादकी आज अग्रगण्यता है, विचार-क्षेत्रम इन प्रतिक्रियावादी विचारों (दर्शनों) म लोहा लेनेके लिये । वस्तुतः, वैज्ञानिक भौतिकवाद विधानों (साइंसों)का अधिनायकत्व है, जो कि कमतर अधिनायकत्वकी भाँति नीचेसे—भिन्न भिन्न साइंसोंसे—शक्ति प्राप्त करता है । और जैसा कि एंगेल्सने अभी कहा, जैसे ही साइंसको "आत्मचेतना" आजायेगी, और नामधारी साइंसदानोंकी धाँधली तथा अनधिकार चेंपन खतम हो जायगी, वैसे ही यह अधिनायकत्व और विचार क्षेत्रकी सफार भी खूब मुक्ता मुद्रा होनायगी, तथा जो काम वैज्ञानिक भौतिकवादके रूपमें आज सगठित हुआ है, उसे खुद साइंस अपने आप करे लगेगे, इस प्रकार

उनके (सपन गवेषणात्मक) कुछ उत्तम उदाहरणों को यहाँ उद्धृत करना (अच्छा नहीं, बराबर) उग्रमे उनकी तीसरी और चेतन पर-
गतरा हो सकता है।”

देखा, पूँजावादी समाज के विचार-स्वातंत्र्यका दिग्गलान्ती नेत्रक
अदर कितनी पल है। उसी साइस क्षेत्रक कमरका के तिर पर भी यन्त्र
धागेके सहार नगी तलवार लगना खर्चों है ॥

(11) भूतनी प्रधानता “नेद नाग”वाले उर्पापदके श्रयियां, तथा
निर्गिकार विज्ञान(मन) मयी (श्रभौतिक) दुनियाके ‘नष्टा’ अन्तलातूँ की
छोड़ दीजिये, उन्हें श्रत्याचारण भारसे दरी गती दासाईकी पृथिवीको भुलाने
का बही सन्ना मालूम हुआ, किन्तु श्राधुनिक साइस युगके विचारक भी
भौतिक जगत्को भुलवानेकी जी-तोड़ काशिरा करके जब बेशतर दुनिया
गनाके प्रयत्नम बाधा डालते हैं, तो आश्चर्य और क्षोभ दागाईकी सीमा
गही रहती। शायद वह कह सकते हैं कि बेशतर दुनिया बनानेम हम
गथा नहीं डालते, किन्तु “करनी रक्षित कथनी” अपने और दूसरोंके
धारा देनेके सिवाय कुछ नहीं है। यदि उनके विचारमें भौतिक दुनियाका
अस्तित्व ही नहीं है, तो सर राधाकृष्णार् हिन्दू विश्वनिद्यालयकी
व्यासगदीसे गीता या शंकराचार्यके श्रद्धैतनाद—मायावाद—की सुनाकर
कुछ नौनवानोंके दिमागम धमकी सड़ी लाराकी माला धारण करानेम
भले ही सफल हो सकते हैं, किन्तु उनसे यह आशा नहा न
जा सकती, कि वह उसी तरह नई दुनियाके निर्माण करनेम प्राण
शरीर लगा सकेंगे, तितना कि वह तक्षण लगा सकते हैं, तिनके लिये
दुनिया माया, अनिवचनीय ब्रह्मकी छाया नहा, रत्निक वह वस्तु-सत्य—
जारों पीठियों और असत्य मनुष्योंके दुःख मुग्न, जीवन भरखर्क
वास्तविक दुनिया—है। वह जमाना गया जब भौतिकवादियारो दुराचार
‘मृण कृत्वा धृत विवेत्’वादी स्वार्थी कहकर लोगको भटकाया जा
सकता था। अब लोगोंने आरों खुली हैं, और वह जानते हैं कि सबसे

पामर नरपशु दुराचारी मनुष्य मिलेंगे धमाचार्यों और उनके इशारे पर गदगद हो नाचनेवाले सेठों, राजाओं, नवयारों में । स्वार्थके लिये जाति और देशको रेंचनेवाले भी उसी वर्गमें ज्यादा मिलेंगे, जो कि "नेह नाना" का धनन्य भक्त हैं ।

हाँ, लेकिन आजके दाशनिकोंने पेंतग बदला है, वह मायावादकी जगह परिणामवादी विज्ञानवाद—दुनिया कल्पित नहीं, अभौतिकतत्त्व (विज्ञान या मन) का परिणाम (रूपान्तर) है—को मानते हैं, वह कहते हैं विश्वके भीतर मूलतत्त्व भूत नहीं, अ भूत (विज्ञान, मन) हैं । लेकिन भूतके बिना मन (विज्ञान) कभी था, क्या यह कल्पना भी की जा सकती है—वैज्ञानिक विधिके अनुसार ? साइस हमें बतलाता है कि मनके पैदा होनेसे पहिले अरबों वर्षों तक बिना मनके ही मूल (भौतिक तत्त्व) मौजूद था । भूगर्भ शास्त्री पृथिवीकी आयुको दो अरब वर्षसे ऊपर मानते हैं, आइये देखिये तो वहाँ मन का उत्पन्न होता है । लेकिन यहाँ पहिले यह प्रश्न उठ सडा होगा—मनको किसके भीतर मानते हैं । प्रभु इसाके भक्तों का पतवा था कि खियोंमें जीव नहीं है । खैर ! यह चौदह-सद्वह सौ वर्षोंकी पुरानी बात है, और बात बढनेपर जीव और आत्माकी गलती खाल खानेका डर है । ईश्वरपुर इसाके परमभक्त दे कार्त (१५६६ १६५० ई०)को लीजिये, उस मरे—प्रभु मसीह उसको आत्माको शांति दें—अभी तीन सौ वर्ष मुश्किलसे हो पाये हैं—उसका कहना था मनुष्य छोड़ बाकी सभी प्राणी—गानर और अनमानुष भी—चलते-फिरते का हैं । प्राधुनिक मानव का पता ४०, ५० हजार वर्षसे पहिले बिल्कुल गहा लगता । यदि गेग्रन्डथल, जावी, चीनी पथराई हड्डियोंवाले मानव अथवा मानवप्राणियों भी माग लें कि उनमें अफ लावूँ और शकराचार्य जैसा मन था, जो कि अपने भीतरसे इस ब्रह्मांड का मकारीकी यैलीभी तरहसे निकाल सकता था, तो भी हम १० लाख वर्ष तक ही पहुँचते हैं । यदि आप और आमद करते हैं, और आधुनिक पहियों

तनको मन प्रदान करना चाहते हैं, क्योंकि तोते मनुष्यकी तरह योना हैं—बोलते ही नदी गुस्सा या राना माँगनेके शब्दोंके अर्थसे भी कभी कभी परिचित देते जाते हैं—इसलिये उनके तुफैलसे सारी पक्ष जातिको यदि मनवाली मानेना आग्रह करते हैं, तो एवमस्तु, तब भी ५० लाख वर्षसे आप आगे नहीं पहुँचते—माथ ही यह भी ख्याल गीव कि उस बच्चे पक्षी तोनेका तो क्या आपके उल्लूके जूतेका तस्मा मा खोलनेकी योग्यता नहीं रखते थ। तब भी मनकी आयु ५० लाख वर्ष होगी, जब कि पृथिवी (उसके मन हीन भूत) की आयु २०,००० लाख वर्ष है। आप यदि सारे पुराण-पक्षी, पुराण सरीसृप, अर्ध जलचर, मछली प्रथम रीढ़धारीसे भी आगे अ-रीढ़धारी प्रथम प्राणीको भी मन-वाला कहना चाहते हैं, तो हम उसके लिये भी तैयार हैं, यद्यपि इतना उतल देनेके साथ कि इन बेचारोको अपने मनसे दुनिया बनानेकी साथ 'सा जन्म' में भी नहीं हो सकती थी और जाँक, केंचुये जैसे अरीन्धर प्राणिजातिके प्रथम वशज बेक्टीरिया और विरसू जैसेको भूत और भूत (जड़ चेतन) दोनों कहलानेका बेसा ही अधिभार था, जैसे चमगादड़को पशु और पक्षी दोनों कहलानेका। तैर, आपके इस दुराग्रह-के मान लेनेपर भी मनकी आयु सिर्फ ५०० लाख वर्ष होती है, जबकि पृथिवीमें मौजूद भूत उम्रमें उससे ४० गुना बूटा है। इससे स्पष्ट साबित है, कि निश्चयमें भूत (भौतिक-तत्व) पहिलेसे मौजूद था, मन या निजान पीछे आया। साइसवेत्ता हैल्डेनके शब्दांम^१—

“चाहे, गहरी प्रकृति (जगत्)के बारेम हमारा ज्ञान (साक्षात् नहीं) परम्परासे (विषय-द्रव्य-अस्तित्वके संपर्कसे प्राप्त वेदना द्वारा) ही क्यों न हो, किन्तु हम उसके बारेमें चितना जानते हैं, उसके सामने हमारा वेदनासंबंधी ज्ञान नगण्यता है, क्योंकि इस (जगत्)के बारेमें जो ज्ञान हमें प्राप्त है, वह सामाजिक (सारे समान द्वारा अर्जित) है।

^१ Marxist Philosophy and Sciences pp 140-42

मैं अपने हाथको देखता हूँ, और जानता हूँ कि इम कितनीही नस, पेशी, हड्डी, रुधिरत्रिंदु है। यह ज्ञान हजारों शरीर शास्त्रियोंकी वेदनाआपर आधारित है। मैं प्रत्येक केशके परमाणुआंकी स्थिति-व्यवस्थाका जानता हूँ (या कमसे कम स्थूल रूपसे जानता हूँ)। यह ज्ञान आस्ट्ररी की वेदनासे प्राप्त हुआ है, जा कि एक रेंके फोटो चित्रोंकी परीक्षा करते वक्त उसे हुई। हजारों आदमियोंका समाजीकृत (सारे समाज द्वारा अर्जित) ज्ञान, चाहे वह (साक्षात् नहीं, वेदना) परम्परासे ही प्राप्त क्या न हो, उससे कहीं अधिक (प्रामाणिक) सूचना हम देता है, जितना कि एक आदमीका वैयक्तिक ज्ञान। मुझे वास्तविक दुनियामें काम करना है। वे (विज्ञानवादी वेदान्ती) भी, यदि पूर्णतया स्वार्थी नहीं हैं, तो, अपने विचारोंका अपने साथी (दूसरे मनुष्यों) तक भूत (भौतिकतत्वों) पर काम करते हुए लेखन या भाषण द्वारा पहुँचाते हैं। यदि आप (विज्ञानवादी) सचमुच विश्वास रखते हैं, कि आपने अपनी वेदनाआ द्वारा जगत्को बनाया है, तो आप (ऐसी निम्न दुनिया बनाकर अपने ऊपर) उड़ी भारी जवाबदेही ले रहे हैं। तो भी मैं (जगत्के बनानेवाले) आपको नहीं कहता कि आप एक (दूसरी इससे) बेहतर दुनियाका बनाये, यलिक म सिर्फ (इतना ही अर्ज करूँगा, कि आइये) इस सामने (मौजूद जगत्)को बदलनेमें हमारी सहायता कीजिये। मुझे विश्वास है, ऐसा (बदलनेकी सहायता) करनेमें [स्वार्थी वेदान्ती सत्ताधारियोंकी ओरसे] जिस विरोधका सामना आपको करना पड़ेगा, वह आपको पक्का विश्वास करा देगा, कि आपका मुकाबिला [मायासे नहीं यलिक] वास्तविकता [ठोस जगत्] में हो रहा है। ”

(v) वैज्ञानिक भौतिकवादके सामने काम—इसे मार्क्सने एक काम कह दिया है—

“दाशनिष्ठानि भिन्न भिन्न तरङ्गते जगत्की त्रिर्न ध्यात्म्या का है, किन्तु (अत्र) वात है, उक्त (जगत्)के घटननेत्री ।”

भौतिकवाद्यांशारा रिछने सत्ताइस सौ वर्षोंमें—याज्ञवल्क्यसे लेकर हिंदूतर तक—जा गालियाँ सुनती पनी हैं, यह इमानिय कि यह इत दक्षिता और अ-यायसे गरी दुनियाकी गचा-सचत व्याख्या नहीं करन चाहते, बल्कि उसे बदलनेमें लग जाते हैं । वैज्ञानिक भौतिकवाद का दर्शन (हमारी भाषामें प्रचलित शब्दक अनुसार) है, जा रि उतलात है—दुनियामें परिवर्तन होजा है और धने यह परिवर्तन होता है । यही गई उस परिवर्तनमें मनुष्य होके नाते हमें हिम्मा भी लेना चादिय । हमार आँसोने सामने का प्रसारके भारी परिवर्तन घटित हो रहे हैं । एक परि वर्तन यह है जा कि साइस अपने आदिप्यारसे उपस्थित कर रहा है ।—रेल, तार, बिजली, हवाई जहाज, रेडियो, सिनेमा जिस तरहके परिवर्तन को उपस्थित कर रहे हैं, यह मनुष्यकी आचिन्त्य कामताका उतला रहे हैं । सातपाठ (सत्ताइस)के पुलके पास गड़े हाजर देगिये तो इन पास उत पार मीन मरने करीर लम्ब और भारी लादेके गाटरमि बने उत विशाल पुलका, और फिर उसके पाम गड़े किसी ३॥ हाय लम्ब आदमीका देखिये । देखिये मनुष्यके जग-परिवर्तन करनेकी शक्तिको । यह विशान(जल)-चादियाकी तरहकी शक्ति नहीं है, वैसी शक्तिवाले आगरे और कर्कि (राँना) म काफी मिलेंगे, किन्तु उन्हनि एव छत्रूँ दर भी पैदा करके नहीं दिताइ । और जग ५०,००० और ६०,००० टन, (१५,००,००० और १८,००,००० पद्रह और अठारह लाख मन) के किमा चीनमरी जहाजकी आप देखते हैं, उत वक्त भी टेढ मन भारी आदमीकी परिवर्तन करौनी शक्तिको समक सक्ते हैं । वैज्ञानिक नैतिकवादी मनुष्यके कोरे खपनाम पर नहा, बल्कि वास्तविक परिवर्तनकी शक्ति पर विश्वास करते हैं, और जगत्को बेहतर रूपमें परिवर्तित करनेके लिये उसे इस्ते माल करना चाहते हैं । सनियत् मय एलियामें करानल्पकी हजारों

मील विस्तृत निर्जल निर्जन भूमि है। वहाँ छोटी छोटी घास उगती थी, जिसके सहारे लाफ़ा भेड़ें, घोड़े, ऊँट पाले जा सकते थे, किन्तु वहाँ पीने का पानी नहीं था। जमीनके पेटमें पानी प्रचुर परिमाणमें था, किन्तु वह काम्पियन समुद्रके जलसे भी ज्यादा खारा (नमकवाला) था। नमक बेकार चीज नहीं, पानी बेकार चीज नहीं, घास बेकार चीज नहीं, क्योंकि उनकी सहायतासे श्रमण सम्पत्ति—नफा कमानेकी हो गयी, मनुष्यक जीवनको सुग्री और समृद्ध बनानेवाली—पैदा की जा सकती थी, किन्तु आदिकालसे कराकल्पक पथिकके हृदयमें सिर्फ भारी भय संचार करने का कारण बना रहा। जब सभियताकी घोर भौतिकवादी सरकार कायम हुई, मनुष्यने जग-परिवर्तन करनेके लिये साइसके हथियारको हाथमें लिया, तो कराकल्पककी उस मरुभूमिमें बड़े-बड़े न्यून् वेल् लगाये गये, बड़े-बड़े जलाशय बनाये गये। जाडेमें पाँच-छै महीने तक इस खरा (काले) रेगिस्तानमें पानी जम जाया करता है। उस समय न्यून् वेल् से पानी निकाल निकालकर इन सीमेंट क्रिये तालाबोंमें भरा जाता। सदासे शुद्ध पानी उर्फ बन जाता और नमक नीचे तलछटके तौर पर बैठ जाता। इन उर्फकी चट्टानोंको हजारों मनुष्य और मशीनें दूसरे महान् सरोवरोंमें ढालते रहते हैं। गर्मी आने पर उर्फ पिघलकर वहाँ शुद्ध जलकी श्रमण जलराशि जमा हो जाती। आज कराकल्पककी भूमिसे लाफ़ा टन नमक निकलता है, करोडा-करोड भेड़ें तथा दूसरे पशु मांस, ऊन, चमड़ा और दूध प्रदान कर रहे हैं। आज वहाँ विजलीकी रोशनी, रेडियो, सिनेमा, पुस्तकालय, अस्पताल, होटल, रेस्तराँसे सुसज्जित शहर और कस्बे आवाद होते जा रहे हैं। मनुष्य जगन्के परित्रित करनेमें जोर शोरसे लगा हुआ है।

मनुष्यने अपने सामाजिक (वैयक्तिक नहीं) प्रयत्नने मस्तिष्कका विकसित किया, साइसको पैदा किया, श्रम उसकी सहायतासे वह जग परिवर्तनको और तेजीसे कर रहा है। ता भी इस परिवर्तनके साथ खूद

समाजके परिवर्तनमें गति अत्यन्त मन्द रही है, लेकिन अब वह समझ लगा है, जग-परिवर्तन करने हुए अपने तथा अपने समाजमें अछूत रखनेकी मोशिश नष्ट करनी चाहिये, अधिक दानमें धरसे शुरु करना चाहिये। इसीलिये यहाँ 'समाजवादकी जय', इसीलिये यहाँ "साम्यवादकी जय", इसीलिये यहाँ "पूँजीवादकी क्षय" करनी है।

(vi) सत्य बनाया नहीं जाता—वैज्ञानिक भौतिकवाद घटना-प्रवाहवाली इस वास्तविक दुनियाँसे अलग सत्यकी दुनिया खोजनेकी गलती नष्ट करता। दार्शनिक काफी ऐसे हैं और हुए हैं, जो इस भौतिक दुनियाके पीछे एक आत्मा, ब्रह्म, या मन (विज्ञान)की वास्तविक लोकोत्तर दुनियाके पानेका दावा करते हैं। ऐसा दावा करनेवालोंके बारे में हम यहाँ बत सकते हैं, कि उन्होंने यहाँ 'सत्य' को पाया नहीं—पैदा किया। किन्तु 'सत्य' पाया जाता है, पैदा नष्ट किया जाता है। इस विद्यमान दुनियासे इन्कार कर इस तरह सत्यका पैदा करना सिर्फ मनकी लड्डू है, जिसे हाथमें लेकर परीक्षा नष्ट कर सकते, जो किसीकी भूखमें तृप्त नहीं कर सकता। हम जिसकी वैज्ञानिक परीक्षा नहीं कर सकते, वह सिर्फ मूढ़ विश्वासकी रात भर हा सकता है।

(vii) फेयरबाखपर ग्यारह सूत्र—हेगेलके द्वैतवादको मार्क्स तक पहुँचानेमें लुट्ज़िग् फेयरबाख (१८०४-७० ई०) का ग्रास हाथ है। फेयरबाखने "इसाइयत-सार"^१ नामसे एक बहुत ही विचारपूर्ण पुस्तक लिखी थी,^२ जिसे पत्तनेके बाद मार्क्स (१८१८-८३ ई०)ने १८४५ ई० में एक नोटबुकमें ग्यारह गतों नोट कर दी थीं। मार्क्सकी मृत्युके बाद १८८८ ई० में एन्गल्स जब मार्क्सके कागजोंकी देखभाल कर रहे थे, तो उन्हें ये नोट मिले, जो "फेयरबाखपर नाट"^३ के नामसे

^१ Essence of Christianity

^२ देनिय "दर्शन दिग्दर्शन"

^३ Thesis on Feuerbach

मशहूर हैं। वैज्ञानिक भौतिकवादके समझनेके लिये तर्क (२७ वर्ष)
मात्मके ये सूत्र उद्भूत सहायक सांगित हुए हैं।—

१ अत्रतक विद्यमान हर एक भौतिकवाद—जिसमें फ़ेरदार
का भी शामिल है—में प्रधान दोष यह है, कि (उनमें) विषय
[बाह्य पदार्थ], वास्तविकता, इन्द्रियगोचरताको मानुषिक
इन्द्रियगोचरीय क्रिया,—प्रयोगके तौर पर नहीं, मानसिक तौर पर
नहीं, बल्कि सिर्फ़ विषय या चिंतन^१के तौरपर ही ग्रहण किया
जाता था। इस तरह भौतिकवादके विरोधमें विज्ञानवादने
क्रियावाले पहलूको विकसित करनेका मौका पाया, किन्तु [हों]
निराकार रूपमें ही, क्योंकि विज्ञानवाद किसी वास्तविक इन्द्रिय
गोचरीय क्रियाको स्वीकार नहीं करता। फ़ेरदार विचारके
विषयों [मानसिक कल्पना चित्रों] से वस्तुतः भिन्नता रखनेवाले
इन्द्रियगोचर विषयोंको स्वीकार करता है, किन्तु वह स्वयं
मनुष्यकी क्रियाको विषयों (बाह्य पदार्थों) के द्वारा होनेवाली
क्रियाके तौरपर ख्यालमें नहीं लाता। इसीका परिणाम है, जो
कि “इसाइयत सार” में सैद्धान्तिक मनोभावको ही वह एकमात्र
शुद्ध मानवीय मनोभाव समझता है, और प्रयोगको वह सिर्फ़
उस [मानवीय मनोभाव]की दिखलावटी गद्दी ‘म्लेच्छ’ मूर्ति मानता
और निश्चित करता है, इसीलिये वह व्यवहार गाम्भीर्य समन्वित
क्रान्तिकारी क्रिया [प्रयोग] के महत्त्वको समझ नहीं पाता।

२, साकार सत्य क्या मनुष्यकी समझ द्वारा प्राप्त किया जा
सकता है? यह प्रश्न सैद्धान्तिक नहीं व्यावहारिक प्रश्न है।
सत्य—अपने सोचनेकी वास्तविकता, शक्ति, ‘इस-और-पन’—को
प्रयोग [क्रिया] में मनुष्यको सिद्ध करना होगा। प्रयोग [क्रिया]
से रहित चिन्तनका वास्तविकता या अवास्तविकताके बारेमें

^१ Contemplation

विवाद करना सिर्फ़ मतवादोपाला सवाल [है, अतएव व्यर्थ] है।

३ मनुष्य परिस्थितियाँ और [पारिवारिक] पालन-पोषणका उपज है, इसीलिये परिवर्तित मनुष्य [किन्हीं] और परिस्थितियों तथा परिवर्तित पालन पोषणकी उपज हैं।—भौतिकज्ञानी सिद्धान्त यह भूल जाता है कि परिस्थितियों भी उन्ही तरह मनुष्य द्वारा बदली जाती हैं, और शिक्षकको स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी होती है। इसलिये इस सिद्धान्तको समाजको दो हिस्सोंमें बाँटनेकी बात पथाना पड़ता है, जिनमेंसे एक (सर्वट ओवेनके रूपमें) ममाना ऊपर आसन लगाता है।

परिस्थितियों और मानवीय क्रियाओंके परिवर्तनको एक ही साथ (लागेका बात) क्रान्तिकारक प्रयोगके तौरपर ही माना और बौद्धिक तौरसे समझा जा सकता है।

४ फ़ेरेबाख् मजहबी आत्म-बहिष्कार—दुनियाको दो मजहबों काल्पनिक तथा वास्तविक दुनियाओंमें बाँटना—को लेकर शुरू करता है। मजहबी दुनियाको उसके समारी उपादानमें विलीन करना फ़ेरेबाख़का काम है। उसका ध्यान इस आग नहीं जाता कि यह धर चुकने पर भी मुख्य बात करनेको रह जाती है, क्योंकि, सासारिक उपादान अपनेको अपनेसे ऊपर उठा एक स्वतंत्र लाकके तौरपर स्थापित करता है, [फ़ेरेबाख़ने जो यह ईसाई स्वर्गकी व्याख्याकी है] उसकी यह व्याख्या इस सासारिक उपादानके आत्म भेद (अपनी फूट) और आत्म विरोधिता द्वारा ही की जा सकती है। इसलिये सासारिक उपादान [ईसाई स्वर्गसे भिन्न यह हमारी ठोम दुनिया] को ही सबसे पहले उसके [आत्मिक] विरोधके रूपमें नमस्कृत होगा, और तब विरोधको हटाकर प्रयोगमें उसे आमूल परिवर्तित करना होगा। इस तरह,

उदाहरणार्थ एक बार जहाँ पता लग गया कि (पवित्र सन्त-परिवारके भीतर) सांसारिक परिवार (का रयाल) छिपा हुआ है, तो खुद सांसारिक परिवारका ही मैद्वान्तिक (शास्त्रीय) तौरसे खडन और प्रयोग द्वारा भौतिक परिवर्तन करना चाहिये ।

५ फ़ेरबाख़र निराकार चिन्तन से सन्तुष्ट न हो, इन्द्रियगोचरतायुक्त चिन्तनमें प्रवृत्त होना चाहता है, किन्तु इन्द्रियगोचरताको वह एक व्यापहारिक [प्रयोग लायक] मानवीय इन्द्रियगोचरतायुक्त क्रिया नहीं ख्याल करता ।

६ फ़ेरबाख़र मजहबको उसके मानवीय सारमें लेता है । किन्तु, यह मानवीय सार एक-एक व्यक्तिमें सदा पाई जानेवाली निराकार-कल्पना नहीं है । तहमें पहुँचनेपर वह सामाजिक सबधोंका पुंज [मुरचना] है ।

फ़ेरबाख़र इस वास्तविक सारको खडन करनेका प्रयत्न नहीं करता, इसीलिये वह [निम्न बातोंके लिये मजबूर है]—

(१) ऐतिहासिक घटना प्रवाहसे निकालकर धार्मिक भावनाको अपन लिये खास चीजके तौरपर स्थिर करना और एक निराकार—अलग थलग—मानवीय व्यक्तिको पहलेसे मान लेना ।

(२) अतएव मानवीय सार, फ़ेरबाख़रके मतसे, केवल [न्यायशास्त्रीकी] जाति—जिसका काम है, मूरु [निष्क्रिया] आन्तरिक समानता [गायपन] के तौरपर, बहुतसे व्यक्तियों [गाय-शरीरो] को स्वमानत मिलाना—के तौरपर समझा जा सकता है ।

७ इसीलिये फ़ेरबाख़रको नहीं सूझ पडता, कि 'धार्मिक भावना' खुद एक सामाजिक उपज है । जिस निराकार व्यक्तिका

उमन [अथवा प्रथमे] विनियोग किया है, यह वस्तुतः एक व्यास प्रकारक समाजका [व्यक्ति] है।

८ सामाजिक जीवन मारत व्यावहारिक [प्रयोगात्मक] है। सभी [विषय] गणना—जो विद्वान्तको गृहस्थयादयो और भाग ले जात हैं—मातृकीय व्यवहार [प्रयोग] तथा उम व्यवहारके समानोसे बौद्धिक औरपर हल हा जातें हैं।

९ चिन्तनमूलक भौतिकवाद्का द्वारा मथमे बड़ी बात जो मिली है, वह 'नागरिक समाज'म अद्वैत व्यक्तियोंका दृष्टि-राग है।

१० प्राचीन भौतिकवाद्का दृष्टिबिन्दु 'नागरिक समाज' है, नवीन [भौतिकवाद्] का दृष्टिबिन्दु है मातृतायुक्त समाज या समाजवाद-युक्त मान्यता।

११ दार्शनिकोंन भिन्न भिन्न तरीकेम जगतकी सिर्फ व्याख्या की है, और प्रथ बात है उमके बदलनकी।

फेररराउमर मान्यते ने ये गारद गूर निम्ने है, यह रिता भाष्य श्रीम विनियोगक समझम आना इसलिये भी मुश्किल है, क्योंकि उनमें हर जगद फेररराउकी 'मान्य-सीध' (क्षेप्ट वृत्ति) 'इसाइयत-सार' की अर्थ मकरा ह। भाष्य विनियोगकी गुरुत समझने हुए भी मैं उम लोभ का संरक्षण करना चाहता हूँ। क्योंकि पुस्तकक विस्तारना ग्याल जरूर समझना ह श्रीम नाथ हा फेररराउ और उतक 'इसाइयत-सार' पर मैं 'दशन दिग्दर्शन'में लिख चुका हूँ। यहाँ, पाठक यदि सिफ इतना मनम रखें, तो कुछ काम चल जायगा, कि फेररराउ इया-मसीह, पवित्रात्मा, पिता श्वर, परलोक (स्वर्ग नर), परिशता आदि सभी इगाइ उल्पनाआका आधार हमी हमारे चातुर्भौतिक ग्यातरो माना है, और इसाइयतकी अलीविस्वापर भारी प्रहार किया है। माफसने फेररराउका कुछ राताम और आगे न बढनेके लिये पटकारा मी है,

तो भी फवेरगाएने महत्त्वको वह कम नहा मानता । फवेरगाए नहता है—

‘ धर्म मनुष्यको अपने आपसे अलग कराता है, (इसके कारण) वह (मनुष्य) अपने सामने, अपने प्रतिवादीके तीरपर, ईश्वरको ला रता है । ईश्वर वह है, जो कि मनुष्य नहीं है—मनुष्य वह है, जो कि ईश्वर नहीं है । ईश्वर और मनुष्य दो विरोधी छोर हैं, ईश्वर पूर्णतया भावरूप, वास्तुविनताआका योग है, मनुष्य पूर्णतया अभाव-रूप (अकिंचन) सभी अभावोका योग है । ’

३. परिवर्तनकी घटना-श्रृंखला

जगत्के परिवर्तनकी व्याख्या जगत्से करना, वैज्ञानिक भौतिकवाद का सबसे मुख्य काम है, यह अथ तककी लिखी पंक्तियोंसे स्पष्ट हो गया होगा । अथ यह खतलाना है कि परिवर्तन—आमूल परिवर्तन—विन अवस्थाओं, सीढियाँसे गुजरता है । यह सीढियाँ वैज्ञानिक भौतिकवाद की त्रिपुटी हैं—

(१) विरोधि-समागम, (२) गुणात्मक परिवर्तन और (३) प्रतिषेध का प्रतिषेध । रस्तुके उदरमें विरोधी प्रवृत्तियाँ जमा होती हैं, इसमें परिवर्तनके लिये सबसे आवश्यक चीज़—गति—पैदा होती है । फिर हेगेलके द्वन्द्ववादी प्रक्रियाके बाद और प्रतिवाद के सभ्य से सवाद रूपमें नया गुण पैदा होता है, इसे दूसरी सीढी गुणात्मक-परिवर्तन कहते हैं । पहले जो वाद था, उसको भी उसकी पूर्वगामी कड़ीमें मिलानेपर यह निश्चिन्ता प्रतिषेध करनेवाला सवाद था, अथ गुणात्मक-परिवर्तन—आमूल परिवर्तन—जससे उसका प्रतिषेध हुआ, तो यह प्रतिषेधका प्रतिषेध है ।

(१) विरोधि समागम—

दो या अधिक एक दूसरेसे और स्वभावमें विरोधा वस्तुओंका समागम हुनियाम पाया जाता है, यह बात हरएक आदमीको अथ अथ

उत्तर आती है। किन्तु, उसे देखकर यह ख्याल नहीं आता कि एक बार इस विरोधि-समागमको मान लेने पर फिर विश्वके संचालक ईश्वरकी जरूरत नहीं रहती, न किसी श्रमोक्ति रहस्यमय दिव्य नियमकी आवश्यकता। विश्वके रोम-रोम गति हैं, दे-वातन (अस्तू, उदयन और गजालीने भी) कहा कि गतिकी सान इश्वर है। दा परस्पर विरोधी शक्तियाँ (घट्टना, घटना प्रवाह)का मिलना ही गति पैदा करनेके लिये पयात है। गतिकी नाम विकास है—या लेनिन्के शब्दोंमें कहिये—“विकास विरोधियोंके सघप (का नाम) है।”^१ विरोधी जब मिलेंगे तो सघप जरूर होगा, और, सघप नय स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अथात् विकासको जरूर पैदा करेगा, यह बात साफ है। अटापरमें मिलियाई खेलनेवाले देखते हैं मेज़ पर दो विरोधी दिशाग्राही और गति करनेवाले गद चल रहे हैं। यदि उनकी गति विरोधी न हो, तो उनका मिलन न होगा। यदि विरोधी गति होनेसे एक एक तरफमें आता है, दूसरा दूसरी तरफसे, तो दोनों विरोधियोंका समागम होता है—यह विरोधके समागम पैदा करनेमें हेतु होनेका दृष्टान्त है। किन्तु, मामला यहीं खतम नहीं हो जाता। दो विरोधी गैदाँ (श्रद्धों)का जब समागम होता है, तो उनके गुणोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। एक अटा पूर्व की जा रहा था, दूसरा उत्तरको, दोनों मिलते—टकरते—हैं, अब उनके जेग (गति)की दिशा पूर्व या उत्तरकी और न रहकर नई दिशामें होती है, यह वेगका गुणात्मक परिवर्तन (दिशात्मक परिवर्तन) है। और, इसे आगेके लिये छोड़िये। यहाँ यह तो स्पष्ट है कि विरोध शक्ति या क्रियाका नाम है, जो विरोधीके स्वभावमें है। उस क्रियाके होने पर समागम होना, और समागमसे नये गुण, नये स्वभावका पैदा होना अनिवार्य है।

(१) व्याख्या—अपलातूँ बहस करता था—हमारी कुर्सीका नठ क्या है, कहा न होता तो हमारे बोझको कैसे सहारता ?

और काठ नम है, यदि नर्म न होता, तो कुल्हाड़ा उसे काट कैसे सकता ? इसलिये, काठ रुडा और नर्म दोनों है—भूत (भौतिकतत्त्व) परस्पर विरोधी पदार्थ है। अफलातूँ ठीक स्थान पर पहुँच गया था, निशाना ठीक लगा था, किन्तु वह नहक गया। उसने सत्य पर पहुँचनेके लिये प्रकृति (प्रयोग) को छोड़, कल्पना पर अधिस्तर, आधारित तर्क शान्त्रकी अपना पथ प्रदर्शक बनाया। और परिणाम ? दो विरोधी गुणोंका एक नगद होना असम्भव है, इसे बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती, इसलिये यह कड़ापन, यह नमपन और स्वयं यह भूत ही असत्य—सत्ता न रखनेवाला—है, जो सत्ता है, वह इससे परे है, जिसे हमारी पथ-प्रदर्शिका कृपामयी बुद्धि दिखलाती है। उसका ख्याल इधर नहीं गया, कि आप चले ये वस्तु (कुर्सी) की परीक्षा करने—कुर्सी क्या है ? कुर्सी बेचारी जैसी है (कड़ी + नरम) वैसा रूप दिखलाती है। आपको कुर्सी की इमानदारी पर विश्वास रखना चाहिये था, क्योंकि उसने आपके मन-का लुभानेके लिये (बुद्धि-संगत मननेके लिये) यदा-चदाकर नहीं कहा, बल्कि एक तरह अपनी हीनता—दोष—को दिखलाया। लोग बाजारमें मित्र नफा कमानेके लिये बैठ हुए बनिबेकी भी इस तरहकी बात पर ज्यादा विश्वास करते हैं, फिर वहाँ कुर्सी बेचारी आपसे नफा गानेके लिये भी बैठी गई है।

कुर्सी क्या है यह आप जानना चाहते थे। कुर्सी जो है, उसे उसने प्रकट किया। उसकी बातको इन्कार कर जो आप तर्क (कोरी बुद्धि या कल्पना) ने फेरमें पड़कर यह कहते हुए लौट रहे हैं “यह गलत कहती है—यह है ही नहा ॥” गलत कहती है—कहती है ॥ और है नहीं तो भी कहती है ॥॥ गहरे बाम्बूके पुत्रके व्याह ग्वानेवाले ॥ आपके ऐसा पारसी यदि अपने ६ पीट लंबे दो मन भारी शरीरको सूक्ष्मकर इचके दस करोड़वें हिस्सेके उरावर लंबे-चौड़े तथा तोलाके प्रसार-लास-थरपत्रों भागके वरावर भारी हाइड्रोजन परमाणुके भीतर घुस पाता, और वहाँ यह नाभिमें अस्थित

१/१० करोड़-करोड़ इंचके १/१२५ हजार-लाख-लाख-लाख ताला भारी कण (प्रोटन)के गिद उखने काभी पासिलेसे १/१५ लाख लाख इंचके १/६२५ लाख-लाख-लाख लाख ताला भारी दूसरे कण (एलेक्टन) का तडी तेजीसे घूमते देगता । शायद किसी “भाव रस्ती”से बहुत दूर इस सुनसान ययागानम इस वृत्त्यका देखकर प्रसन्नता होती—“आगिर अपलानूँ भी प्रकृतिनी मोहारिणी छयना आनद कभी कभी लेता जरूर रहा हांगा । (माना मुझात जैसे मनीषी निरपराध महापुरुष के मारे जाने, तथा अपने सामन्त-परिवारको अभिभारच्युत कर उनका स्थान लनेवाले अथेसके बनिया शासकके उस अत्याचारके कारण उसका मन दुनियासे बहुत छोटा होगया था, तो भी यौवनम प्रकृत्य रहते समय सामन्त-परिवारकी सुदरी अथेस-नागरी अपनी पत्नीके अधराने उसने कभी मधुर तो जरूर पाया होगा) । हाँ, यदि वृत्त्यसे “आँना” को वृमकर जैसे ही अपलानूँ उन दानों कणोंके पास पहुँचता, देगता कि गहरवाला कण (एलेक्टन) उड़े जोरसे उसे धक्का दे रहा है । शायद अपलानूँ जैसा तत्परीक्षण इसे बुरा न मानता, समझ लेता—अभी अथेसक नागरिकाना भाँति यह शिष्टाचार निपुण नहीं हुआ है, या उपनिषत्की “अनिधि देवो भव”^१ (आगतुम्हा अपना न रना आगन्तुम्हा हा रग घरवार उसे हाथम मोंप दा) की शिक्षा न पा, ब्राह्मणने अदशनमे अभी वह म्लेच्छ हा रह गया है । किन्तु यदि किसी तरह वह भीतर वाले कण (प्रोटन)के पास पहुँच पाता, ता अथे धृतराष्ट्रके लौह भीमने आलिगनगना तपना अपने सिर पड़ता ।—और मालूम होता वह तो ऐसा आलिगन (आरूपण) करना चाहता है, कि हड्डी-पसनी भी सानित नहान रहे । एकके धक्के और एकके “आलिगन”के ताजे तपने के बाद अपलानूँ जैसे सम्भ्रान्त सामन्त-परिवारके एक भद्र पुरुषकी क्या राय हो सकती थी, इससे हम यही समझ सकते हैं, कि वह उनको

^१अनिधिका देवता मानो ।

असम्य, जगली, बवंर कहता, और गुम्हा शान्त होनेपर यदि दार्शनिकों की सहृदयतासे काम लेता तो ह्लाद्व या रोडस्नो उन्हें सम्य मनानेक लिये भेजता। किन्तु हमारे इस अपलातूँने अपनेको सहृदयता अस हृदयता, पाप पुण्य, धर्म-अधर्म, कर्म अ-कर्म सत्रसे ऊपर उठाया, अपने को ठीक अपलातूँनी "निश्चम्य" म दिखलाया—(हाइड्रोजन) परिमाणु = एलेक्ट्रॉन् + प्रोटन, और एलेक्ट्रॉन् = - प्रिजली, प्रोटन = + प्रिजली। — = ० (शृणु + धन = शून्य)। हमने जो देगा, छोड़ो बाग उसे, उससे भर पाया, भगवान् ऐसी गत किसीकी न बननाये। किन्तु, हमारी गुरु पथ प्रदर्शिका, बुद्धि (तर्क, कल्पना) जो कुछ कहती है, हम तो उसके माननेवाले हैं। वह मतलाती है, इस तरहकी शृणु धन सयुक्त, परस्पर विरोधी वस्तुओंका समागम (परमाणु) तीन कालमें नहीं हो सकता, इसलिए परमाणु है ही नहीं, एलेक्ट्रॉन् है ही नहीं, प्रोटन है ही नहीं। एलेक्ट्रॉन् अब भी अपलातूँको अपनी उजड्ड भाषाम कह रहा है—“आओ, दार्शनिकप्रवर ! मेरे पास आओ, और खुद देखो कि मैं हूँ या नहीं।” दूरसे प्रोटन अपनी दो हजार गुनी तेज आवाजसे चिल्लाकर कह रहा है—“स्पार्टनवीर नहीं, अथेन्सके विलासी कायरकी सन्तान ! जरा इधर तो आ, यदि मैं हूँ ही नहीं, तो आनेमें क्या उअ है ?”

हमारा सौभाग्य है कि आजके साइसवेत्ता अपलातूँके तर्कका अनुसरण नहीं करते—कमसे कम उस वक्त, जब कि वह रविवारके दिन चर्च या विश्वनाथके मंदिरमें न हो, साइंसकी प्रयोगशालाम रहते हैं। वट प्रकृतिके उदरमें उसके रोम-रोममें व्याप्त इस विरोधि-समागमको दूषण नहीं, भूषण समझते, और रोटीको कड़ी और नरम दोनों पा, उसे बँककर भूखा मरना नहीं पसंद करते। साइसवेत्ता हैल्डेनके शब्दा हैं—“अपलातूँकी भाँति मेज नरम और कड़ी दोनों है (इसलिये नहीं

¹ Marxist Philosophy and the Sciences p 30

हैं) — कहनेकी जगह हम कितनी ही गरीब नापासे पता लगात हैं कि गठ कितना बड़ा है, इसकी टुटानका चोर कितना है, आदि।”

अपलानूँ के योग्य शिष्य अरस्तू मनुमयी दुनियामे नीचे उतरनेकी कोशिश जरूर की, किंतु उसकी प्रथम महान् प्रसूति तर्कशास्त्रो अपलानूँकी कृपामयी तर्क बुद्धिसे सामन्त रानीकी जगह चक्रवर्तीरानी (राजराजेश्वरी, मलका-भुवनेश्वरी) बनानेकी पूरा कोशिश की। सगर क व्यवहार (प्रयोग) ने तक निष्काका पैदा किया था। मगर, यह शोख लड़की ग्राजारमें अपनी कीमत गनी देव माँ-आपको पहिचानेसे इन्कार करती है। अरस्तून कहा कि वस्तु और तदनुबल गुण तो ठीक है, किन्तु इससे उलटी बात करनी गलत है। हेगेलने कहा—वस्तु अपने भीतर अतुल ही गदा, प्रतिकूल—विरोधी—गुण भी रखती है, यही विरोध वस्तुमें पर-अनपक्षित स्व-चालित गतिका सात है, जिससे वह वस्तु अपनी गति—अपने आत्मनिर्वास—के दौरानमे, एक दूसरी ही वस्तुक रूपमें अपनेको परिणित कर सकती है। लेकिन, तर्कशास्त्रने प्रणेत दो दिग्गजाकी लड़ाइमें बेचारे सर राजाकृष्णकी बुरी हालत हुई है। विश्वनाथक बलपत्रको खानर मालदीयजीकी गद्दीसे (सिंहामनरत्तीसीकी पुतलियोंकी भाँति) गावा कथाना श्रद्धा और शर्मसे आये तरुणाक कानामें इन्जेक्शन दे, लम्बी धाती-पगड़ी सँभालने अभी दवाजेसे वह बाहर निकलते ही हैं, कि यूनान और जर्मनीके दो मल्लिकान इस तरह हिन्दू विश्वविद्यालयके मैदानम जूमते देखते हैं। राधाकृष्णने रयालम पहले तो आया—जाने दो, दोनों सफ़द मृत्तियानो लन्ने दा। किन्तु, जरा ही देरम मालूम हुआ, इस लड़ाइम राजा विश्वनाथ (जिनके बल पत्रको वह उससे भी ज्यादा श्रद्धा भक्तिसे अभी रा चुने थे, जिससे शायद राजाका नादिया भी न खाता होगा) भी खतरमें हैं। हेगेलकी जीतका मतलब एक ही कदम आगे उसके शिष्य फ़ेरेराजकी जीत, माक्सकी जीत, भौतिकवादकी जीत, अनीश्वरवादकी जीत, पुराने समाज

और धर्मके घसकोंनी जीत। माथा ठनका, राधाकृष्णन्की पतली-दुरली शान्त मूर्ति दुवासा बन गई। पगटी पेंक्री, घोतीका कच्छा बाँधनेमें असमर्थ देग्न नित्रार्थियाने मदद की। हिरनकी भाँति चौकड़ी मारते वह भी अलाडेके पास पहुँच गये। “बड़े-बड़े डूबे जायँ कौन कहे कितना पानी” की नहावत याद आइ, कुछ ठमके, और ठमकनेमें एक और भी कारण हुआ, सोचने लगे ‘अपलातूँ और शकराचार्य दोनों भारी मित्र थे—वेदान्तम देश काल तीना कालमें असत्य हैं—लेकिन, अस्तू तो अपने गुरुका बैसा ही पक्का चेना नहीं है, जेसा कि मैं अपने गुरु शक राचार्यना। फिर क्यों मैं इस कम्यख्त अस्तूके गाढे वचम काम आऊँ ?’ उमी वक्त अध पुन दुर्योधन (सुयोधन नहीं) की रात याद आई—हम अपने धरम सौ और पाँच हैं, किन्तु बाहरवालाके लिये १०५। बेचारे मर साटेन बेतहाशा बोल गये^१—“भूत (जडतत्त्व) जीवन या चेतनाका विकास नहीं कर सकता, जगतक कि उसने अपने स्वभावम उन (के उत्पादन) की क्षमताएँ न हों। गहरी बातावरणसे चाहे कितना ही धक्का क्या न दिया जाय, केवल भूतसे जीवनको जवदस्ती निकाला नहां जा सकता।” प्राच्य महानिधालयके निचार्योंने पहले इस रंगरेजीके पढुआ कारण तटस्थ रहना चाहा, किन्तु अद्वेय महामहोपाध्याय गालकृष्ण मिश्रना इंगित देस उहाने आनदनागके दयानंद शास्त्रार्थका नजारा पेश कर दिया। बेचारा हेगेल कहता ही रह गया—निश्चके गर्भमें सर्वत्र विरोध-समागम है, यह उसकी जरूरत क्षमता है, जिससे वह कुछसे कुछ हो जाता है। सर्वपल्ली रट रहे थे—यह गलत है “मनुष्यके धार्मिक या आचारिक, दाशनिक तथा ललित कलात्मक उच्चतम तजबेंके प्रति नि हमसे मांग पश करती है, कि हम काल (प्रास) भागी वास्तविकता

^१ Indian Philosophy by Sir S Radhakrishnan, Vol I.

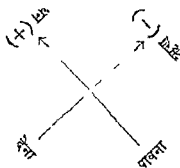
[भौतिक जगत] के मूलकी रचनाता [ब्रह्म] में, सान्त्वने आधारी अन्तमें, मनुष्यको ईश्वरसे उत्पन्न हुए तौरपर रचना करे ।”^१

विद्यार्थियोंकी तालीम हेतुकी आगमना दूर तक पहुँचना मुश्किल था । अतमें वह हिन्दू विश्वविद्यालयका यह कहकर कामता चला गया— “तो काहेको यह साइस कालेज, इन्जीनियरिंग कालेज, प्रयोगशाला, रसायनशालाकी ईंट चूकी इमारता पर रुपया बनादिया, यहाँ तो दूसरे विश्वनाथ-मन्दिर और दूसरे नादियाँकी जरूरत है ।” विद्यार्थियोंकी जमन दाशानिकके बाधपूर्ण परिहामको विना समझे एक तरहसे कर डाला—“मालवीयकी कृपा है, दूसरी बार आयोगे ता उस भी देव जाओगे, विदेशी म्लेच्छ कहीं के ।”

हाँ, यदि हिन्दू विश्वविद्यालयकी कथाना बीचमें लानेसे गभीरपाठकी निरक्ति हुई हो, तो क्षमा करें । इस कथासे माँ हम यहाँ कहना चाहते थे, कि प्रकृत (भूत) पारस्परिक विरोधोंकी रान है, वही उसका जीवन, वही उसका स्वभाव है । राधाकृष्णन् जिस क्षमताको चाहते हैं वही प्रकृतिके अपने पेटमें है । “मुझको कहीं खाने बदे म तो तेरे पाठमें” के अनुसार जब इतनी बड़ी जनदस्ती शक्ति—क्षमता—प्रकृतिके पासमें नहीं, पेटमें मौजूद है, तो उसे निर्माके सामने हाथ पसारनेकी क्या जरूरत ! और भीतरमें मौजूद वह क्षमता न हा, तो “बाहरी वातावरण [ईश्वरको भी, कृपा, ले लीजिये] से चाहे कितना हा घका क्यों न दिया जाय [विरोधि समागम रूपी आन्तरिक क्षमतामें हीन द्वैतात्मकता रहित] केवल भूतसे जीवनकी जनदस्ती करके निकाला नहा जा सकता ।”

(२) स्वरूप—विरोधि (यात्रे)-समागमको विरोधियोंका परस्पर अन्तर्व्यापन या एकता भी कहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि ये विरोध सचमुच ही हिन्दू विश्वविद्यालयके अस्तु हेगल् या भीम जरासधनी तरह दो अलग व्यक्तियोंकी तरह मरलसुद्ध नहीं कर रहे थे, बल्कि वे एक ही

(अभिन्न) वास्तविकताके ऐसे दोनों प्रकारके पहलू होते हैं। ये दोनों विरोध, दार्शनिकोंके परमाथकी तराजू पर जुले सनातन कालसे एक दूसरेसे संबंधा अलग अवस्थित भिन्न भिन्न तत्त्वके तौरपर नहीं रहते, बल्कि वह वस्तुरूपण एव हैं—एक ही समय, एक ही स्थान पर, अभिन्न होकर रहते हैं—कृपया इत्ते याज्ञवल्क्य या कबीर साहब (अथवा रामकृष्णानंदकी भी) भाषा न समझकर सीधी-सादी प्रकृतिकी भाषा समझिये। पुराने यूनानी भी इस नियमकी जानते थे—



“जो कजलोरके लिये श्रृण (देना) है, वही महाजनके लिये धन पावना) है। (हमारे लिये) पूर्वका रास्ता (दूसरेके लिये) पश्चिम का भी रास्ता है। मिजली में धन और श्रृणके छोर दो अलग स्वतंत्र अरल (पदार्थ) नहीं हैं।”^१

^१ Logic by (Hegel)

लेनिन्ने विरोधको द्वन्द्ववादका द्वार (=मार) कहा है—श्रीर यह भी कि “(किसी) एक (वस्तु) का विभाजन श्रीर उसके विरुद्ध ज्ञान द्वन्द्ववादका द्वार है।”^१ पर एकता अभी अभी सिर्फ एक चक्रक मेहमा है, जैसे कि चलती मोटरक पहियेका छोर घरतीमे जण भाग लिये छूता है, श्रीर उठना उतना मद्धन तदा है, तितना कि उसके का शक्ति पाकर चलते रहते चक्रकेके रूपम जो गति श्रीर परिवर्तन है उसका तो इस प्रकार एक ही वस्तु (घटना प्रवाद)ने हम विराधियांका समागम मा पाते हैं, तिसका फल दाना है विरोधियोंका संघर्ष, श्रीर उमक परिणाम होता है समागम (एकता) का दृटना तथा ‘नदीन’ (तरन का प्रकट होना । मृत्यु (दृटी) से इस गवीरके प्रकट होने (चीन को ररीदा जाता है ।

(३) संघर्ष, समागम साम्यावस्था—सभी वस्तुयें जट मूल बदलती, नई उत्पन्न होनी हैं, सभी वस्तुयें प्रवाहमय उत्तारी टेमकी तर हैं—निश्चकी इस वास्तविकताके बारेम बतला चुके हैं । समाज ए निश्चका एक अंग है, इसलिये वह उसके काानसे बाहर कैसे जा सक है । समाजमे भी आमूल परिवर्तन होता है, क्यकि समाजके भीतर ता उसके वातानरणमें विरोध-समागम मौजूद है । विरोधका अर्थ है हलन साम्यावस्थाना ध्वस । प्रकृतिम चित्र-साम्यावस्था चाटना उममे अत हत्याकी मांग करनी है । वह साम्यावस्थानो लाती है, किन्तु मोटर चक्रकेके भूमिसे छूनी तरह जण मरके लिये, साम्यावस्था स्वयं प्रवाह चंचल है । वह स्थापित होती है, नष्ट होती है, फिर स्थापित होती है, नि नष्ट होती है । किन्तु उहां धागांकी उधेड़-बुन नदा है, सब चीज न हर जण नये चक्रके, नया ‘आकाश’ (वेग-क्षेत्र), नई भूमि । इ साम्यावस्थानो चला-बढानर हम न्यति नाम देते हैं । अचल चित्रसे चित्र (सिनेमा) को हम ज्यादा पसद करते हैं, किन्तु प्रकृतिको अ

^१ On Dialectics

सिनेमा चलाते देख हम तमाशा देखते बघोकी तरह कहते हैं, “मा, मैं रेणुफ़ाओ ‘घर आये’ गाती देखना चाहता हूँ।” जितना ही माइ-दाइ करनेपर भी जब प्रकृति आपके लिये अपने सिनेमाकी गतिको रोफनेका तैयार नहीं होती, तो आप अपने मनसे एक नये स्थिर ध्रुव-संसारको रचने लगते हैं।—वहाँ वसन्त और वर्षाके ऋतु, वैचित्र्य तथा उसकी सुपमा न होती होगी, फिर वहाँ अश्वमेध और कालिदासकी भी जन्मरत नहीं। ग्रास्तिर—‘घोषी वसिष्ठके का करे दीगवरके गाँऊँ’। यदि आगरा काँकेराले जग निमाताआकी भातिकी आपका जगत् न होना और आप किसी इष्ट मित्र या अपनी आज्ञा सहधर्मिणी मुनूकी माँका भी उम अपने ‘हाथकी’ रनाई पुनियामें ले जाना चाहते, और बेचारी सती साध्वी हिन्दू पत्नीको उम देशकी भनक भी मालूम हो जाती, तो या तो सनातन धर्मके अनुसार वह कृष्णमें कूदकर जान दे डालती या किसी अप-ट्ट डेट सरतीका अनुकरण करते हुए अदालतमें तिलाककी भिक्षा माँगनेके लिये तैयार पाई जाती।

विरोधियाका समागम, विरोधियोंका सघर्ष प्रकृतिमें चिरनवयौवन प्रदान करता है, चिरनवयौवनका रास्ता यदि जरा मरणके श्मशानसे जाता है, तो जिस तरह प्रकृतिमें इसमें एतराज नहीं, उन्नी तरह सन्चे प्रकृति पुत्रा और पुत्रियोंको भी एतराज नहीं होना चाहिये और न महादेशी वर्माकी तरह ‘साध्यगीत’ के स्वरम घडेके घडे थासू उहावैने लिये बैठ जाना चाहिये।

द्वन्द्वात्मन भौतिकवादकी निपुटी—विरोधिसमागम, गुणात्मन परिवर्तन, प्रतिषेध प्रतिषेध—हेगेलकी देन है। यह सुनकर तत्रज्जुव करने की जरूरत नहीं है कि ऐसा इज्जतदार दार्शनिक ऐसी नामानुल हकत क्या कर बैठा। वह या उसकी तरहके दूसरे इज्जतदार हैं या बेइज्जत, इसका निश्चय सदियोंमें होगा, फिर मत करें, यदि वास्तारिकको दान्तरिक, परिवर्तनशीलको परिवर्तनशील रहना और अपने मनसे गदकर ‘नइ

लेनिन्ने विरोधको द्वैतवादका चार (= सार) कहा है—और यह भी कि “(किसी) एक (वस्तु) का विभाजन और उसके विरोधका ज्ञान द्वैतवादका मार है ।”^१ पर एकता अभी अभी सिर्फ एक क्षणिक मेहमान है, जैसे कि चलती गाड़ीके पहियेका छोर धरतीसे क्षण भर लिये छूता है, और उसका उतना महसूस नहीं है, नितना कि उसके द्वारा शक्ति पाकर चलते रहते चक्केके रूपम जा गति और परिवर्तन है उसका। तो इस प्रकार एक ही वस्तु (घटना प्रवाह)म हम विरोधियोंका समागम भी पाते हैं, जिसका फल होता है विरोधियोंका संघर्ष, और उसका परिणाम होता है समागम (एकता) का टूटना तथा ‘नवीन’ (तत्त्व) का प्रकट होना। मृत्यु (टूटने) से इस नवीनक प्रकट होने (जीवन) को परीक्षा जाता है।

(३) संघर्ष, समागम साम्यावस्था—सभी वस्तुयें जड़-मूलन बदलती, नई उत्पन्न होती हैं, सभी वस्तुय प्रगाहमय उत्तीर्ण डेमनी तरह हैं—विश्वकी इस वास्तविकताके बारेमें खतला चुके हैं। समाज एने विश्वका एक अंग है, इसलिये वह उसके फानूनसे बाहर कैसे जा सकता है। समाजमें भी आमूल परिवर्तन होता है क्योंकि समाजके भीतर तथा उसके वातावरणमें विरोध-समागम मौजूद है। विरोधका अर्थ है हलचल, साम्यावस्थाका घस। प्रकृतिम चिर-साम्यावस्था चाहना उसमें आत्म हत्याकी माँग करनी है। वह साम्यावस्थाको लाती है, किन्तु मोटरके चक्केन भूमिसे छूनेकी तरह क्षण भरने लिये, साम्यावस्था स्वयं प्रगाहमय चंचल है। वह स्थापित होती है, नष्ट होती है, फिर स्थापित होती है, फिर नष्ट होती है। किन्तु उर्ही धागाकी उधेड़-धुन नहा है, सब चीज नई हर क्षण नये चक्के, नया ‘प्राकाश’ (वेग-क्षेत्र), नई भूमि। इसी साम्यावस्थाको चला-बगानर हम स्थिति नाम देते हैं। अचल चित्रमें चल चित्र (मिनेमा) को हम ज्यादा पसंद करते हैं किन्तु प्रकृतिकी अपा

^१ On Dialectics

मिनेमा चलाते देख हम तमाशा देखते बचाकी तरह कहते हैं, “भा, भें रेणुकाको ‘ध्र आये’ गाती देखना चाहता हूँ।” कितना ही माई-दाई करनेपर भी जब प्रकृति आपके लिये अपने सिनेमाकी गतिको रोकनेको तैयार नहीं होती, ता आप अपने मनमे एउ नये स्थिर ध्रुव-संसारको रचने लगते हैं।—वहा वसन्त और बषाके मृतु, वैचित्र्य तथा उसकी सुपमा न होती होगी, फिर वहाँ अश्चर्योप और कालिदासकी भी जरूरत नहीं। आगिर—“घोरा बसिके का करे दीगनरके गाँऊँ”। यदि आगरा कोंकेगले जग निमाताआकी भाँतिआ आपका जगत् न होता और आप किसी इष्ट मिर या अपनी आजन्म सहधर्मिणी मुन्नूकी माँको भी उस अपने ‘हाथकी’ पनाइ दुनियामें ले जाना चाहते, और बेचारी सती साध्वी हिन्दू पत्नीको उस देशकी भनक भी मालूम हो जाती, तो या ता सनातन धमके अनुसार वह क्वैम कृदकर जान दे जलती या किसी अण्ड-डेट सगीना अनुकरण करते हुए अदालतम तिलाककी भिक्षा माँगनेके लिये तैयार पाइ जाती।

विरोधियोंका समागम, विरोधियोंका सवर्ष प्रकृतिको चिर नवयौवन प्रदान करता है, चिर-नवयौवनका रास्ता यदि जरा मरखके श्मशानसे जाता है, तो जिस तरह प्रकृतिको इसमें एतराज नहा, उसी तरह सच्चे प्रकृति पुत्र और पुत्रियोंको भी एतराज नहीं होना चाहिये और न महादेवी वर्माकी तरह ‘साध्यगीत’ के स्वरमे घडेके घडे आँसू रदानेके लिये बैठ जाना चाहिये।

द्व-द्वैतम् भौतिकवादकी निपुटी—विरोधिसमागम, गुणात्मक परिवर्तन, प्रतिषेध प्रतिषेध—हेगेलुनी देन है। यह सुनकर तथ्यञ्जन करने की जरूरत नहीं है कि ऐसा इज्जतदार दार्शनिक ऐसी नामाकुल हकत क्या कर बैठे। वह या उसकी तरहके दूसरे इज्जतदार हैं या बेइज्जत, इसका निर्णय सदियोमे होगा, फिर मत करें, यदि वास्तविकको वास्तविक, परिवर्तनशीलको परिवर्तनशील कहना और अपने मनमे गढ़कर ‘नई

मौलिकता' का न उपस्थित करना इज्जतसे हाथ धोनेके लिये काफी है, तो ऐसी इज्जत अपने पास रखें। हेगेलू बैचारा था भी हमारा आदमी (पानी भागामें 'साडा उदा')। उसे प्रच्छन्न भौतिकवाद नहीं कह सकते, क्योंकि गीटपादके प्रशिष्य प्रच्छन्न बौद्ध शंकराचार्यका भाति उसने अपनेका छिपानेकी कोशिश न की। इन्द्रवाद प्रकृतिका अभिन्न स्वरूप है, इसे उसने पहिचाना और स्वीकार किया, किन्तु जब विचारके आनन्दमें विभोर हो वह इस अपने महान् आविष्कारका कामजपर लिए कर साटना चाहता था, ता वह प्रकृतिकी जगह 'प्रिज्ञान' (अ भौतिक-तत्त्व) पर सट गया—यां कहिये देवताओंका अमृत गलतीसे राहु पेटके मुख में पड़ गया। लेविल ठीक जगह लगा दाजिये, सब काम उना बाया है। मार्क्सन यही क्रिया, और हेगेलूके दर्शनका शीघ्रासनकी सासतसे बैचाया—हाँ म सासत ही कहता हूँ, चाहे जवाहरलालजी जैसे सम्प्रान्त व्यक्ति भी उसे क्यों न अपना रहे हों। श्रद्धा, अत्र अपने असली विषय इन्द्रवादके दूसरे सूत्र गुणात्मक परिवर्तन पर चलें।

(२) गुणात्मक परिवर्तन—

“केवल परिमाणात्मक [नाप-तेल सत्रधी] परिवर्तनही एक रास सीमा पार होनेपर गुणात्मक (नय गुणोंवाले) भेदोंम बदल जाता है।”¹

(१) व्याख्या—कार्बन डायोक्साइड (द्विआम्लित कार्बन) एक जहरीली गैस है, यदि शुद्ध द्वि-आम्लित कार्बनम काइ सॉस ले तो वह मर जायगा, किन्तु मनुष्यके जीवन धारणके लिये भी उसकी आवश्यकता है। मनुष्यके रुधिरम ५% (पाँच सेफ़ड़ा) द्वि आम्लित कार्बनकी जरूरत है, उसके बिना आदमीका स्वास्थ्य और जीवन नष्ट रह सकता। यहाँ मात्रा के भेदसे गुण (प्राण-रक्षण, प्राण ध्वसन) म भेद हो जाता है।

¹ Capital (by Marx) Vol I

क्लोरिण् एक जहरीली गैस है, जिसे रसायनिक बुद्धिमें इस्तेमाल किया जाता है। सोडियम् (सोडा) एक तरहका चार है, जिसे पानीपर रखनेमें प्राग लग जाती है। इन दोनोंके परमाणुओंकी रास परिमाणमें मिलानेसे नानेका नमक पैदा होता है—जिसमें न क्लोरिण् जैसी प्राण-सहारक गैसका गुण है, न साडियम्का प्राग लगानेका गुण, बल्कि एक मिलजुल नये गुणका प्रादुर्भाव होता है—वह अब ग्राध नमक है।

ये परिमाणके परिवर्तनसे गुणके परिवर्तन—परिमाणात्मक परिवर्तनसे गुणात्मक परिवर्तन—के उदाहरण हैं। आइये इसके बारेमें कुछ हेगेलके मुँहसे सुने^१—

“आदमी परिवर्तनको मंद गतिसे (धाडा-धोड़ा करते हुए) परिवर्तन लानेकी काशिश करना चाहते हैं, किन्तु यह मंदगति (का परिवर्तन) सिर्फ अस्पष्ट परिवर्तन है, जो कि गुणात्मक परिवर्तनमें उलटा है। मन्दगतिमें दोनों वास्तविकतायाँ—चाहे उन्हें अबस्थाके तौरपर लीजिये या स्वतन्त्र वस्तुके तौरपर—के सम्बन्ध बूके रहते हैं। परिवर्तनको (स्पष्टताके साथ) समझनेके लिये जिस (रात) की जरूरत थी वह हटाई हुई रहती है।”

“संगीत-संघी सम्बन्धोंमें जब आगे आगेके स्वर आदि-स्वरसे क्रमश आगे और आगे गते जा रहे हैं (उम बक्त) एनाएन एक मुडान (मुडना-लौटना), एक ऐसा आश्चर्यजनक स्वर समन्वय^२ प्रकट हो उठता है, जिसपर कि अभी तक बीती गतिसे परिमाणानुसार बढ़ते हुए महा पहुँचाया गया, बल्कि वह एक दूरस्थ दिशाके तौरपर एक दूरस्थ वस्तुके सम्बन्धोंके तौरपर प्रकट हुआ।

“[रसायनशास्त्रात्मे] धातुवाली आक्साइड (उदाहरणार्थ सीसा आक्साइड) आक्साइड [आक्सिजन मिश्रित] होनेके एन रास

^१ Science of Logic Vol I pp 338—90 ^२ Concord

परिमाणुवाले स्थानों पर (पहुँचकर) बनते हैं, और अपने रंग तथा दूसरे गुणों में फरक करते हैं। वह क्रमशः एक (रूप) से दूसरे में लाने नही होते।

“सभी (तट्टके) जन्म और मरण, क्रमशः गतिसे नही होते, बल्कि इस (गति) की रोक है, और परिमाणात्मक परिवर्तनसे गुणात्मक परिवर्तन पर (मडक) मुदान करते हैं। उत्पत्ति और लय पर विचार करते वक्त साधारण कल्पना समझती है कि जब उन्हें उसने क्रमशः प्रकट होते भा मिलान क्षण कल्पित कर लिया, तो उन्हें समझ निभा। किन्तु सत्ता (सद् वस्तु) में भा ग्राम तौरसे परिवर्तन होने हैं, वह सिर्फ एक परिमाणसे दूसरे परिमाणके रूप में ही नहीं होते, बल्कि गुणात्मक [एक गुणवाले रूप] से परिमाणात्मक [दूसरे परिमाणवाले रूप] तथा परिमाणात्मकसे गुणात्मक परिवर्तन होते हैं यही दूसरा जन जाना है, क्रमसे नाता तोड़ लेना है।

“पानी [रफ़ होनेके लिये] टूटा होते वक्त लोइके (कडे होनेके) तरीकेसे थोडा थोडा करके कड़ा नहीं होता, बल्कि थकनयक कडा [रफ़] हो जाता है। जब वह हिम [जमनेके] रिन्दु पर श्रच्छी तरफ़ नरी पहुँचा हा हो सकता है (अभी) वह पूषनया तरल है (यदि वह निश्चल है), और हल्क तौरसे हिलानसे कठार अवस्थामे आ जाता है।”

(२) जीवन और मृत—भौतिकवादियों पर यह श्राक्षेप किया जाता है, कि वह तो जीवन और मन जैसी उत्तम वस्तुओं जट-तत्त्वकी कोटिमें ला देते हैं, इसीलिये हमने सर राधाकृष्णन्का ‘हिन्दू धर्म ड्रग’के नामसे तो नहीं किन्तु उससे कुछ ऊँचे तल पर ‘मनुष्यके धार्मिक तथा आचारिक, दार्शनिक तथा ललित कलात्मक उच्चतम तजर्की भक्ति’ को गायगुहार लगाते और एक कलमजीरके तौर पर भीष्म प्रतिज्ञा करते देखा भौतिकवाद मेरी लाश परसे गुजरकर ही पुष्य भूमि भारतमें पुन मरता है। लेकिन हम उन ऐमाँको विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि

भौतिकवादी जीवन और मनको जड़ भौतिकतत्व ही नहीं मानते—
 कौन ऐसा गँवार होगा, जो कन्दको चीनी, चीनीको गुड़, गुड़को
 ऊपरको मिट्टी अतएव कन्द (कलाफंद)का मिट्टी कहने
 करेगा। वैज्ञानिक भौतिकवादी प्रकृतिमें सर्वत्र गुणात्मक-परिवर्त
 और मानते हैं, और गुणात्मक परिवर्तनका मतलब है "इससे
 वही नहीं।" मिट्टीमें वह गुण हगिन नहा था, जो कि कन्द में
 मिट्टी विलकुल नहीं। कन्द गोर मिट्टी उहा परमाणुसिद्धि से ही
 नष्ट होने पर वह उहा "सफ़िनी मूल ईटा" के रूपमें उजा
 वैज्ञानिक भौतिकवादी नहीं मानते। वैज्ञानिक भौतिकवादी
 परमाणु नहीं कण-तरंग, विच्छेद-युक्त घटना प्रवाह, विच्छेद
 भी क्षण-क्षण नाश उत्पादन नियम मिला हुआ है। मिट्टीमें
 मिट्टीमें उन्ही परमाणुओंके समझनेकी गलती नहीं। कन्द
 मिट्टीसे हुआ है यह मान सकते हैं, किन्तु कन्द मिट्टी से
 हमपर नहा लगाई जा सकती। यह सच है कि कन्द
 हुआ है, वह भूत [भौतिकतत्व] ही है, किन्तु कन्द
 किसी तरहसे भी नहीं, चाहे उसके अन्तर्गत
 यह विलकुल गुणात्मक परिवर्तन, पूव (भूत)
 है। कृष्ण भगवान्सा वेटा जाने, उनसे
 महत्त्वपूर्ण व्याख्या—विसके समझनेमें
 बुद्धि भी पूर्णतया रुद्धित है, और अपने
 उहोने कभी श्रोताओंको नहा मतलावा
 यद्यपि उस महापुरुषने "सपत्नीक"
 जरूर इस बातका तमाजा रखा था
 घरमें परम सात्विक अड-साधका
 अभागा होगा, जिनने भोग लगाने
 शालिग्रामको हाथसे फोड़कर देना

ब्रह्म अण्डका भीतग्म न देता है, ता एक बार जरूर तोड़कर देखिये। यहाँ कहीं छप्पे छप्पे पंगुवाले उस चूजेका पता नहीं मिलेगा, जिसे श्रावण या बादल बादल पतन दिखाता देखोगे। यदि जैसा कि मुर्गी माहने उभे गिया है, उभी तरफ श्रावण पाइता ता बाहरी ग्याल्क भीतर पहले एक सफेद तरल ग्यान पावण, यह उड़ी रचारनिन तत्वाद्या है, जो कि हमारी नडका, नगममर और चीनीम मिलन है। उसक भीतर केसरिया रंगना तरल (रग) भरा हुआ है। यहाँ, गूर अगुली श्रावण गड़ा गड़ाकर दल डालिये, मिवाय पीन, सफेद तरन रमके और कुछ गहा पाइयेगा—यदि उबल हुए अण्डेका पाइँ, दाना प्रकारक इन तरल तरवाको ही रगोक श्रावण गुदेकी शकलमें देखेंगे। सब प्रकृत शकली अस्था और चूजेम जमीन श्रावणगासे भी भारी अन्तर है, इसलिये जीव और मृतको एक कटना सरासर गलती है साथ ही यह उगसे भी गानी गलती है, कि गुणात्मक परिवतनकी अद्भुत क्षमता गन्नेवाली प्रकृतिको उसके इम ज मसिद्ध शक्तिरसे अचिन्तर जीवन या मनको कहीं बाहरसे श्राव चीज माना जाये।

चूना तो मिश्रासे गुड़ तक गुणात्मक परिवतन जैसा है। जब हम उसे मिट्टी (भूत) मानाके लिये तैयार नहीं, ता कद जैसे सर्वाच्च विनासके घनी मनुष्यको भूत (भीतिर तत्त्व) मानना वैज्ञानिक भौतिकवादसे उतना ही सन्नप रगता है, जितना गदहेके सिरमे सांग। मनुष्य भूतका सर्वाच्च गुणात्मक परिवतन है। उसकी मानसिक, आचारिक शक्ति अद्भुत है। मनुष्य सोचता है, सौह प्रेमके लिए आत्मोत्सग करता है, कला और सौंदर्यका आनंद लेता है, उदार भावनाश्रासे पूर्ण उत्तम काम करेगा उसमें क्षमता है। वह प्रकृतिकी आत्मिक घटना या उपज नहा है, और ता वह कवल पशु है। लेकिन, ये सारे उच्च गुण भारी श्लाघनीय विशेषताएँ किनी ऐसे आत्मिक—विज्ञानमय (ब्रह्ममय) जगत्से नहीं आइँ हैं, जो कि हमारे जगत्से भिन्न, परे और पहलेसे

मौजूद था। ये सभी भव्य गुण या विशेषतायें अपना भौतिक इतिहास रखती हैं, और अपने विकासके मार्गको निश्चयपर अरिक्त किये हुये हैं। उनका वह विकास पथ बतलाता है कि उनसे नरोड़ी बर्षों पहले अरबसे अधिक बर्षोंमें लगातार जीवन-रहित, मन-रहित भूत (भौतिकतत्त्व) मौजूद था। फिर "अल्फारम्म क्षेमकर" को माटो बनाकर बहुत छोटेसे रूपमें जीवना आरम्भ हुआ इत्यादि। हमारे सामने सभी बातें साफ हा जाती हैं, जब हम इसे देख और समझ लेते हैं कि भूत (भौतिकतत्त्व) पानी निश्चल नहीं रहता, गति उसका गुण (स्व रूप = स्व-लक्षण) है। भूतकी उसकी परिभाषा है—भूत वह है जो गतिमें रहता है।

(३) दृष्टान्त—हेगेल के ऊपर उद्धृत वाक्यांशमें गुणात्मक परिवर्तन को सक्षेपम—अतएव कुछ क्लिष्ट भाषाम—बतलाया गया है। हमन कुछ सरल करनेकी कोशिशकी है, यदि उसे और साफ करनेकी जरूरत है, तो फिर मुनिये। भूतमें विकास होता है, मिट्टीसे ऊपर, गुड (या अपना गुडके सीधे) चीनी, कद तकना विकास हम खुद अपने हाथों करत हैं। प्रकृति इस निरामको क्रमश और एकाएक दोनों तरफसे करती है। क्रमश विकासके रूपमें तिकाते तिकाते एक दम हथियार छाडती है, अथवा लम्बी या ऊँची कुदानवाले खिलाडीकी भाँति पहले दौडते हुए फिर एकदम मेंडक कुदान करती है—नया गुण, नई वस्तु, नई पटना-अन्तिरवमें आती है।

१ पानीके जमनेका दृष्टान्त हेगेलने दिया है। रफ बनते वक्त पानी धीरे-धीरे गाढा नहीं होता, बल्कि टेम्प्रेचर गिरते गिरते जैसेही रिम बिन्दु (३२° फार्न हाइट, ०° सेंटीग्रेड) पर पहुँचता है, वह एकाएक बर्फ हा जाता है उसका तरलपन लुप्त हो जाता है, उसकी प्रवाहिता लुप्त हो जाती है, वह शीशेके पत्रार कडा योर भारी लोरी और ट्रामकी अपने ऊपरम मुचरने लायक हो जाता है। आप स्वच्छ पतीलीमें कण धूनिसे रक्षित शुद्ध जलको आग पर रखते हैं, वह गमाता, फिर सनसनाता है। आप

“थर्मामीटर” स गर्मांकी वृद्धि की गति का देखते जाने हैं, 20° , 40° तक वह आपका टर्मा लगता है, 26° , 40° में आपके शरीर इतना गर्म होनेसे न टर्मा न गर्म, जितना ही तापमान ऊपर उठता जाता है, पानी की गर्मा उठती जाती है—जितना गर्मा उठती जाती है, तापमान पर नया उतना ही ऊपर चढ़ता जाता है। 95° में आप हाथ रखना चाहते, 200° म और असह्य गर्मा। आपका आश्चर्य होगा पानी गलता क्या नही ? आप इस्मोना रसिये निम तरह स्वच्छ करके आपने पानी रखा है, उसमें उसका सौतनसी नौसत नही आयेगी। सौलनेके लिये नख और धूलि चादिये, जिससे हवाके प्रवेश और उल्लुला बनने की गु जाइश हो। आपके जलम नोइ विजाताय तल नही हैं, इसलिये उसे भी उससे डरना। य देलिय टेम्प्रेचर 210° डिमी फान हाइट पर पहुँच गया। सजग हो जाइये। क्या कहा—अभा भी तो वैसा ही है। यह लो यह क्या हुआ ? मारा पानी विना सोंगे यनायर भाप हो गया, देखिये 112° फानहाइट (100° सटी फ्रेट) है।

इम तरह तापके परिमाणक परिवर्तन—परिमाणात्मक परिवर्तन—न पर साम सीमापर पहुँचते ही गुणात्मक परिवर्तन कर दिया, तरलको टेम्प्रेचर ठोस या भाप (गेस) बना दिया।

२ तराचूना दृष्टात देग्ने, समकनेम इसमें भी सहल है। सेरका बदरग रर एरु नहुन अछे तराचूमे आप रससस (पोस्नेके दाने) का तोलिये। पाव, दो पाव, तीन पाव, पंद्रह छटाँक, १५ छटाँक ४ तला, १५ छटाँक ४ तोला ११ माशा, १५ छटाँक ४ तोला ११ माशा ७ रत्ती, १५ छ० ४ ता ११ मा० ७ रत्ती, ७ चावल, १५ छ० ४ तो० ११ मा० ७ रत्ती, ७ चावल, ७ रसगस तक धारे धीरे रखते जाइये, तराचूनी डाँडी सी गी नहा होगी, किन्तु जैसे ही आप आतिरी रससस रंगे, वह नरानर हो जायेगी, और उसके आगे एक रसगस बढ़ाते ही डाँडी गिर जायेगी।

३ इसे भी छोड़िये, दूसरा दृष्टांत लीजिये । चार पहलवान एक पत्थरको उठाना चाहते हैं । सारी ताकत लगाकर हार गये, वह नहीं उठा । उस वक्त एक लडका उबरसे गुजरा । लडकेके यह पूछनेपर कि क्या मैं भी हाथ लगा दूँ, तीन पहलवान हँस पड़ते हैं, चौथेको जाने अनजाने वैज्ञानिक भौतिकवादकी गव लग गई है, वह कहता है—आने दीजिये । लडका हाथ लगाता है, पत्थर उठ जाता है । बाकी तीन पहलवान लडकेको भगवान् या सिद्ध पुरुष मानना चाहते हैं, वह उसको चरणोंमें दबवत् गिरना ही चाहते हैं, किन्तु वह भौतिकवादी पहलवान वह उठता है—ऐसी कोई सिद्धांत नहीं है, आखिरी थोडासा भार बँच रहा था, जिसे उठानेके लिये हम चारोंकी शक्ति बँच नहीं रहती थी, इसलिये हम उठा नहीं पाते थे ।

४ और उदाहरण लीजिये । स्टोम आप हवा भर रहे हैं । भरते जा रहे हैं, भरते जा रहे हैं, पूरी हवा भर दी गई है, स्टोचकी सूई रतरे-रत लाल लाइनपर पहुँच गई है । हाशियार हवा भरनेवाले गुणात्मक परिवर्तनवादी होनेके कारण आप समझ गये कि अब इसकी उदरपूर्ति हो गई । आपका साथी भगवान्दास कोरा भाग्यवादी, ब्रह्मवादी कमवादी, या मायावादी शून्यवादी है । वह आपके जरासा हटते ही जलते स्टोममें एक ही पिचकारी और फसता है, स्टोच पटनेका धडाना होता है । आप दौड़कर देखते हैं, घरमें आग लग रही है, भगवान्दास जलते कपड़ोंमें तड़फड़ा रहा है । और आप किसी तरह गीले कपड़ेकी मदद से भगवान्दासका बुझाकर बाहर निम्नलते हैं । अस्पतालमें जाकर वह बँच जाता है । चगा होनेपर भगवान्दास कहता है—भाई ! मैंने तो आधी पूर भर भी हवा नहीं डाली होगी, भगवान्ने किसी पुरिले कमना पल दिया । आप कहते हैं—इसी जन्मके कर्मना पल है, वह आधी पूर हवाका परिमाण गुणात्मक परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य रखता है । और यदि भगवान्दास—भाई ! लगानेमें अनुप्रासका आनन्द तो

गुरु मिलता है, किन्तु सिंगी गार मैं आपसे प्रार्थना की कि इन गनीयेर तामको उदलो—उसी गुणात्मक परिवर्तनसे आपने नदय गाधक स्वरका भक्तक रूप में परिवर्तन देगा।

(४) मा—मस्तिष्क प्रौढ़ चिन्तन स्वरूप आशुकी क्षमता क्रिया-
निते कि हम मन वदते हैं—का क्या संबंध है, इत्यादे परेमें हम अन्यत्र
फापी नद चुन हैं। इगलिए उा यताको यदी दूहरायेरी गुरुत गरी,
साथ ही “जीवन और मृत्यु” पर निरतने वत हम अपनी स्थिति माफ क
आम हैं, कि जीवन मृतसे उत्पन्न है, किन्तु मृतही नहीं है। जीवन और
मन एकही पत्ताका दूखग पदलू, अथवा साधारण जीवनका उत्पन्न
निशत है। पानलाफ्ने इस मशम मस्तिष्ककी श्रवेरी। सोठरीमें मुसकर
उसे दसोफा काम शुरू किया। पिछले चालीस वर्षोंमें उमके नितनही
भागाने आलोकित जरूर किया जा सता है, किन्तु मस्तिष्कका पाला
मज्जाके करोडों मैलाना रहस्य इतनी जल्दी नहीं खोला जा सकता। ता
ना गवेयथाआमा ने कुछ फल मालूम हुआ है, उससे पता लगता है
मनका भिन्न भिन्न क्रियामें मस्तिष्कके भिन्न भिन्न भागाने सेल-समुदायों
से सर्व व रपती है। एक अनेक सेल अलग करके अनिश्चित कालतक
अनुमूल आकारके साथ रग जा सकता है, किन्तु उमयत वह अपनी
सारी श्रद्धुत शक्ति लो चैटेगा, और एक साधारण एकतेलीय प्राणी -
अमाय्या—जैसा जीवन व्यतीत करेगा। इगलिए कहना चाहिए कि
मस्तिष्क इन सेलाना योग मात्र नहीं है, महीं परिमाण-संबंधी परिवर्तनसे
गुणात्मक परिवर्तन होता है—और मस्तिष्कके करोड़ों सेल वह काम करत
हैं, जिसे उन सेलकी वैयक्तिक क्षमता अलग-अलग नर्न कर सकती।
गालंशाने। दाशनित्र धमकीर्त्ति (६०० ई०)के शब्दोंमें^२—“एकने काइ

^१ “विश्वकी रूपरेखा”

^२ “न किंचिदेकमेऽस्मात् सामग्र्या सप्तमव ।” प्रमाणवार्त्तिक
३।५।३६ “संहतौ ह्युता तेषाम्—वहीं २।१८।

1 एक वस्तु नहीं होती, (बहुतसे हेतुओंकी) सामग्रीसे उसकी उत्पत्ति होती है ।” “उनकी संहति (सघात)म हेतुता है ।”

मनके गारम विचार करनेके लिये कुछ भी आगे बढ़नेसे पहिले यह ख्याल द्या देना चाहिये कि मन एक सास तत्त्व है, जो फूलकी तरह अपने भीतरसे चिन्तन-स्मरण आदिकी सुगंध निकालता रहता है । प्राधुनिक मस्तिष्क विद्या निशारद मनोविज्ञानवेत्ता मनको एक द्रव्य नहीं, बल्कि घटना-प्रवाह मानते हैं । जीवन और मनकी तुलना करके देगिये ता मालूम हागा, मन तभी तक रह सकता है, जब तक कि जीवन है । जीवनने न रहने पर मन (चिन्तन, स्मरण)का रहना बिलकुल असभव है । तैर, इसे तो आप पजूल वक्त लेना कहेंगे । किन्तु यह ख्याल रगिये, कि परीक्षासे यह सिद्ध हो चुका है, कि मन शरीरके मरनेसे पहिले मर जाता है, इस तरह हमारे यहाँके नैयायिकों की व्याप्ति—“जहाँ जहाँ धूम वहाँ वहाँ आग”की तरह “जहाँ जहाँ मन वहाँ वहाँ जीवन” तो ठीक उतरती है, किन्तु जिस तरह “जहाँ जहाँ आग वहाँ-वहाँ धूम”को गलत व्याप्ति (अ-व्याप्ति) कहेंगे, क्याकि निर्धूम आग भी देखी जाती है, उसी तरह “जहाँ-जहाँ जीव वहाँ-वहाँ मन” (चिन्तन, स्मरण) भी अव्याप्ति है, क्याकि जीवन चिह्न, शरीरकी उष्णता श्वास प्रश्वासके बद होनेके पहिले ही चिन्तन-स्मरणकी नियार्य समाप्त हो जाती हैं—“मन” मर जाता है । यही नहा कि मनके राद भी शरीर जीता देखा जाता है, बल्कि राज वक्त तो शरीरके मर जाने पर भी,—डिटरलेके बन द्वारा ध्वस्त ग्राममे एकाध पत्र गये दुधमुदे बच्चेकी भाँति शरीरक कुछ सेलोंको जिन्दा रहते देखा जाता है, यद्यपि यह ‘दुधमुँहा पच्चा’ देर तकका मेहमान नहीं होता—मुदों के नाखून और केश जा रुभी-रुभी उढे पाये जाते हैं, वह इसीके दृष्टान्त हैं । वस्तुतः जिसे हम शरीर कहते हैं, वह अरबों स्वतंत्र सजीव सेला (हाँ, यदि हमारे शरीरके किसी सेलको निकालकर सास सभें रखें तो वह अनिश्चित काल तक एकसेलीय जंतुकी तरह जीवेगा)

रहेगा) का संगत है । ये मेन अलग अलग उग शक्ति नहीं पैदा कर सकते, जिसे हम मनका नाम देते हैं किन्तु उनकी गहनतम श्रेयता होती है और गुणात्मक परिवर्तनसहित-संगत गैसों अद्भुत शक्ति (=मा) पैदा हो जाती है । पक्क (समस्त कुल) पंचमे पैदा होता है, किन्तु बह पंच नहीं है, मन भी पक्क (पंचमे पैदा हुआ) है, किन्तु बह पंच नहीं । जैन समस्तक रूप गुणका देवदत्त उम न्यग्मि टररा माना पंचके साथ धर्म अन्याय और अपनेका जड़ भरत साधित करता है, उसी तरह मनके आममासे टपराना भी जड़ भरत जाना है, अथवा "राजी सादय के शक्कर" की कदास्वर अनुभार दूगराका घोरा देता है ।

एक रात फिर मूत्रके उदर-गहरम हम आपका ले चलना चाहते हैं । एलेक्ट्रॉनको प्रोटॉन (हाइड्रोजनके नाभिकण) के गिर्द निरन्तर घूम करनेके बारेमें हम यह श्राय है । पिछले युद्धके बाद वैज्ञानिक कैसे इन प्रोटॉनके जयदस्त मिलेगी भी ताड़नेमें समर्थ हुए, इसे दूरी जगह देखिये । यहाँ संक्षेपमें इतना ही समझिये कि यह प्रोटॉन भी ताड़ने पर एलेक्ट्रॉन और पोजिट्रॉन (पोजिट्रॉन=धना विजली)से युक्त मिला, और अब वैज्ञानिकाने एलेक्ट्रॉनके नामकी और वैज्ञानिक बताते हुए उसे निगेट्रॉन (निगेटिव=ऋण विजली कण) नाम दे दिया । एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन इन "प्रारम्भिक" इकाइयामें कैसे विश्वका विकास हुआ, इसके बारेमें भी हम यहाँ दूर तक नहीं जा सकते । ये भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिलकर (परिमाणात्मक परिवर्तनसे) गुणात्मक परिवर्तन करत हुए हाइड्रोजन, कार्बन, रेडियम जैसे परस्पर भिन्न स्वभाववाले ६२ रसायनिक मूलतत्त्वों (परमाणुओं)को विकसित करते हैं । ये परमाणु मिलकर अणुओं, अणु-गुच्छकों तथा भिन्न-भिन्न रसायन योगों—जल (ओ १ हा २), नमक आदि—को बनाते हैं । सौर, इस योगके बनाने

१ "विश्वकी रूपरेखा"

म तापमानका खास महत्त्व है। तापमानके परिमाणके परिवर्तनसे कैसे जलम गुणात्मक परिवर्तन हो वह ठोस बर्फ तथा गैसरूपी भापम परिवर्तित हो जाता है, इसे हम पतला प्राये हैं। लेकिन इस तापसे हूँदनेके लिये मशाल लेकर बाहर मटकनेकी जरूरत नहै। भूत (भौतिकत्व) की गतिका ही नाम ताप है, और यह गति भूतम स्वाभाविक है—गतिरहित भूत कहा नहीं पाया जा सकता। एलेक्ट्रॉन् १,८२,६२८ मील प्रति सेकण्डकी चालसे चक्कर काटता है। रेडियमसे स्वतः सदा निकलनेवाले कणमें एक अल्फा-कण मी है, यह एलेक्ट्रॉन्की गतिके सामने छत्रड़ा है—सिर्फ १० से १५ हजार मील प्रतिसेकण्ड चलता है, किंतु जानते हैं वह कितना गर्म होता है—५० थ्रन डिग्री सेंटीग्रेड (फार्नहाइट करनेमें और ज्यादा डिग्री होगा), उसके सामने सूर्यकी नाभिपर की ४ करोड़ डिग्रीवाली गर्मी हिमालयकी सर्दी है। हाँ, तो गति=गर्मी, सघर्ष=समागम कराती है। परिमाणके परिवर्तनसे गुणमें परिवर्तन होता है। पृथिवी दो अरब वर्ष पहले ऋतु सतप्त थी, ताप गिरनेके साथ गुणात्मक परिवर्तन शुरू हुए और अन्तम जीवनकी आगमनीके लायक तापमान हुआ।—जीवनः सेंटीग्रेड (३२° फार्नहाइट)से १००° (२१२ फार्नहाइट) तक जीवित रह सकता है। और १००° सेंटीग्रेड पर थोड़े समय तकके लिये जीवित रहनेवाले बैक्टीरिया और विरसू है, जिन्हें भूत और जीवनकी बीचकी ऋती माना जाता है। तापमान जीवन पर क्या प्रभाव रखता है, इसे मैं अपनी पुस्तक “विश्वकी रूपरेखा”से उद्धृत करता हूँ—करना ही चाहिये, नहीं तो आपलोग समझने लगेंगे कि अपनी पुस्तकका विज्ञापन डेकर उसे बिकवाना तथा नया क्रमाना चाहता है। नफेकी बात किसी हिन्दी-लेखकसे पूछिये और उद्धृत करनेका एक यह भी मतलब है क्या जाने दुनियाके इस महानूषानम “विश्वकी रूपरेखा” कहाँ रहे और “वैज्ञानिक भौतिकवाद” कहाँ ?—

प्रोफेसर हर्ट्जिगने मेंडका पर तापमानका प्रयोग किया है। उन्होंने

एक ही मंडकके एक ही दिन दिये अंडाओं चार भागोंमें बाँटा । चारों भागोंको क्रमशः ११.५°, १५°, २०° और २४° सेंटीग्रेड तापमानके पानीमें पाला । तीन दिनके बाद देखा गया कि जहाँ प्रथम भाग दाना दार भी नहा उन मका, वहाँ चतुर्थ भाग अंडा फोड़कर बाहर निकलने वाला था, और बाकी दो भाग बाँचनी अवस्थामें थे । इसका अर्थ यह हुआ कि ऊँच तापमानमें जीवन निरस शीघ्रतासे होता है ।

“प्राफ़मर लोएन्गे नेमोफिला मक्खनी पर प्रयोग किया है । उससे पता लगा है, कि ३०° सेण्टी तापमानमें रखनेपर मक्खनीको अंडा फोड़कर बाहर निकलनेसे मरने तकमें २१ दिन लगे, २०° सेण्टीग्रेडमें प्रायः ५४ दिनकी रखा और १०° सें० में १७७ दिन अर्थात् आठ गुनीसे भी ज्यादा ।

“तापमान जीवनोंके जीवनको शीघ्रतासे तैयार करता है, ऊपर झूलनेके प्रयोगमें हर १०° डिग्रीपर जीवनोंकी अवधि ढाई और तीनगुनी होती है । यह भी ख्याल रखना चाहिये कि, १०° सेण्टीग्रेडसे ऊपर जीवनोंकी अवधि(१००° सें०)तक तापमानमें हर दस डिग्रीपर रसायनिक तत्वोंके प्रभाव भी दुगुने तिगुने हो जाते हैं ।

“तापमानका आयुपर जिस तरहका प्रभाव हम मक्खनियों, मंडकों तथा दूसरे निम्न प्राणियोंपर पाते हैं, वही चिड़ियाँ, स्तनधारियों, मनुष्यों पर नही पाया जाता । कारण उनके शरीरकी बनावट ऐसी है, कि उनका शरीरका तापमान एक खास परिमाणसे ऊपर नही जाने पाता । गर्मियों में एकही जगह तीन-तीन गिलास पानी जो हम पीते हैं, वह टेम्पेचरको ६६°, ६७° फानहाइट तक रोक रखनेमें सक्षम होता है ।”

तापमानका जीवनपर प्रभाव कैसा होता है, यह तो समझ गये । पृथिवी पहिले अत्यंत उष्ण थी, फिर गर्मा कम होते होते जब ऐसे तापमानमें आइ, जहाँ कि जीवनोंका गुजर हो सकता है, तो जीवन उत्पन्न हुआ, और पृथिवीके तत्वोंसे ही उत्पन्न हुआ । कैसे हुआ, इसके लिये हम

मजबूर हैं, “विश्वकी रूपरेखा”को देखनेकी सलाह देनेके लिये। अजीब रसायनिक रसयोगसे गुणात्मक परिवर्तनके साथ एक नया तत्त्व “विरसु”^१ या वेक्यूटीरिया पैदा हुआ। फिर क्रमशः एकसेलवाला प्राणी अस्तित्वमें आया। फिर एकसेलीय अमोयूरा, और अनेकसेलीय चूद्र कीटसे शरयों सेलांगले मनुष्य तक। आज भी हमारे शरीरके तन्मी सेलको शरीरमें बाहर जिंदा रखा जा सकता है। सेलके चिन्दा रखनेकी एक प्रक्रिया यह है, जिसे सतान प्रसन्न कहते हैं, जिसमें पति, पत्नीके एक एक सजीव सेल प्राप्तमें मिलते हैं, और उदरमें तथा गहरे आहार प्राप्त कर पुनः या पुत्रीके रूपमें साकार हो हमारे प्रेम, तथा योग्यताके अधिकारी बनते हैं। दूसरा तरीका डाक्टर केरेल (अमेरिका) जैसे वैज्ञानिक इस्तेमाल कर रहे हैं—डाक्टर केरेलने मुर्गीके हृदयके एक सेलको एक रास रसम २० सालसे जीवित रखा है, उसकी जिन्दगी एक सेलवाले अमोयूरा जैसी है।—स्मरण रखना चाहिये, मुर्गीकी औसत आयु सिर्फ पाँच सालकी हानी है।

इसी गुणात्मक प्रक्रियासे मानव तकके विकासके समझनेके लिये हमें प्राणिशास्त्रियोंके प्रयोगसिद्ध एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जाति परिवर्तन^२ का थोडासा समझ लेना चाहिये।

(५) जाति-परिवर्तन—इमने अन्यत्र^३ इसके बारेमें लिखा है—“आनुवंशिकताका प्राणीके निमाणमें” बहुत हाथ है, तो भी उसकी दीनारमें कुछ छिद्र हैं, जिसके कारण नई जातियों या श्रेणियाका प्रादुर्भाव होता रहता है। व्यक्तिमें नये रूप-गुणका प्रादुर्भाव दो तरहसे होता है—एक अभ्यास या कृत्रिम रीतिसे—जैसे अशिक्षित व्यक्ति अध्ययन और अभ्यवसायसे शिक्षित बन जाता है, अथवा दुग्धनासे आदमी लंगड़ा-सूला हो जाता है। ये परिवर्तन ऊपरी तथा एक शरीर (पीनी)

^१ Virus

^२ Mutation

^३ ज्यादा जानतेके लिये देखिये “विश्वकी रूपरेखा”

तक ही सीमित रहते हैं। टास्टरना लड़का सिर्फ इसलिये डाक्टर नहीं हो सकता, कि वह डाक्टरना लड़का है। इसका मतलब यह है कि ग्रन्थास और ग्रन्थवसाव द्वारा प्राप्त गुण आनुवंशिक नहीं बनते। एर दूसरी तरहना परिवर्तन है, जो कि स्थायी होता है, इसे जाति-परिवर्तन कहते हैं। यह परिवर्तन ऊपरी नहीं, प्राणिके अतस्तम जनक-बीज (जेनस्^१) म होता है, जिससे नवीन वस्तुका प्रादुर्भाव होता है। नवीनताका प्रदुर्भाव ही विकासना आधार है।

“मेंटल^२ की जाति परिवर्तनसबधी गवेपणायें डार्विनको अज्ञात था, इसलिये विकासना अर्थ वह अविच्छिन्न शान्त प्रवाह—सपगति—लेता था। विकास, वस्तुतः, प्रविच्छिन्न नहीं है, बल्कि निच्छिन्न उदान है।”

जनक-बीज या जेनस् हा एरु पानीके आनुवंशिक गुणानो दूसरी पीढीमें पहुँचाते हैं। इन्हा जनक बीजाम परिवर्तन जन और जितने परिमाणमें होता है, तब और उसी मात्राम जातिमें परिवर्तन होता है। जनक बीज और जाति-परिवर्तनके विषयमें हम दूसरी जगह^३ लिख चुके हैं। मनुष्यका शरीर अरनो सेलोंने एक परिवार है। हर सेलमें एक नाभिकण होता है। हर “नाभिकण”में रस्सने टुकड़ा जैसी कोइ चीज (क्रोमोसोम) होती—(सेलकी भाँति इसना रूप भी बदलता रहता है)। इसकी संख्या मनुष्यमें ४८ है (खून या मासकी परीक्षा कर इन क्रोमोसोमाकी गिनतीसे वह किस प्राणीना मास या रून है इसे पतलाया जा सकता है)। क्रोमोसोमके धानेम कुछ हजार छोटे-छाटे मनके पिराये रहते हैं, जिन्हें कि जनक-बीज (जेनस्) कहते हैं। अमेरिकन वैज्ञानिक मोगर्नने फ्लांकी मक्खनी डालो खिलाये प्रयोगसे जनक-बीजके रहस्यको गोप निकालनेमें बहुत सफलता पाई है। महीनम दो और सालम २४ पीढ़ी तैयार हो जानेसे ड्रोसोफिला

^१ Genus ^२ आस्ट्रियाका एक प्राणिक शास्त्री ^३ “विश्वकी रूपरेखा”

पीढीमें पीढीमें जनक-परिवर्तनका अध्ययन बहुत सुगम है। मोर्गनने नितनी ही लाख मक्खियोंकी आनुवंशिकताका लेखा तैयार किया है। जनक-परिवर्तनसे जो आनुवंशिकता-परिवर्तन होता है, इसे ही जाति-परिवर्तन कहते हैं। मोर्गनने अपनी इन मक्खियोंमें चार सौके करीब जाति-परिवर्तन देखे, इन चार सौ जाति परिवर्तनोंमेंसे बहुतोंका अध्ययन करनेमें मालूम हुआ है कि वहाँ जनक-बीजों (जनकों)के चार समूह हैं—अर्थात् समूहोंकी उतनी ही संख्या है, नितने कि ड्रोसोफिलाके नाभिचक्रमें क्रोमोसोम होते हैं। एक-एक समूहमें जनक-बीजोंकी संख्या क्रोमोसोमकी लम्बाइके अनुसार होती है, और उसे अणुवीक्षणसे हम देना सकते हैं।

ड्रोसोफिलामें हर लाख पर २८ में ६१ तक जाति-परिवर्तनवाले व्यक्ति पाये गये हैं। लेखा लगानेसे पता लगता है कि एक हजार वर्ष के समयमें ड्रोसोफिलाके सभी जनक-बीज बदल जाते हैं। १५ दिनमें नई पीढी तैयार करनेवाली, तथा सन्तान प्रसवमें लासानी ड्रोसोफिला मक्खीमें जाति-परिवर्तनकी गति बहुत तीव्र है। मुलरने एक प्रयोग द्वारा जाति-परिवर्तनकी प्राकृतिक गतिसे १५० गुना तक कर दिया, और इस प्रकार एक लाखपर ४२०० से ६१५० जाति-परिवर्तन किये जा सके—अर्थात् ऐसा होनेपर छै वषरमें सारी मक्खियोंके जनक-बीज बदल जावेंगे। ड्रोसोफिलाकी सारी जानिके जाति-परिवर्तनमें नितना समय लगता है, हम यहाँ उससे भतलव नही है, मतलब इससे है कि जाति-परिवर्तन होता है, और सिर्फ सर्प-गतिसे नहीं, बल्कि मंडक-जुदानकी तरह यथायक होता है।

(६) मनुष्य और उसके समाजमें गुणात्मक-परिवर्तन—समाज-म गुणात्मक-परिवर्तन होता है, इसीको हम सामाजिक-क्रान्ति कहते हैं। यह जगत्से पृथिवीपर मनुष्य आया तबसे हो रहा है, यद्यपि मस्तिष्कका मालिक मनुष्य प्रकृतिके काममें अरुसर बाधा डालना चाहता है, किंतु

वह होता ही रहता है। हमने इस परिवर्तनको अपने "मानव-समान"में सन्निस्तार दिया है। इस तरहके परिवर्तनको और नन्दीरुसे देरना चाहते हैं, तो अपने मामले मौजूद किन्हीं घरकी तीन पीढीका गौरस देखिये। मेरा अपना उदाहरण लीजिये—

१ नाना (रामशरण पाठक, पन्टनके सिपाही)—“हमारी पन्टनका बलिया तिलेगाला राजपूत डाक्टर त्रिस्तान था, उसकी स्त्रीने उसे छोड़ दिया। क्या? वह अंग्रेजोंके साथ चाय पीता था।”

२ पिता (गोमर्धन पांडे^१)—पूजा-पाठके बहुत पापद, किन्तु अपने हलवाड़े चिनगी चमारकी लाशको लोगोंके बुरा माननेपर भी ४० मील दूर गंगा तटपर फूकनेके लिये ले गये, और

३ बदा (राहुल साहत्यायन)—आप लोगोंके सामने नंगा मर्दा है। न हिन्दुओंके भक्ष्याभक्ष्यको मानता, न धर्म अधर्म, न बाल-मर्दानको। बेचारा तिलियागाला डाक्टर तो अंग्रेजोंके साथ चाय पीता था, यहाँ अंग्रेजोंको भी पी जानेके लिये तैयार है। और? रामशरण पाठक और गोमर्धन पांडेके एक एक सेल्फी परपराका आगे ले जानेके लिये (यदि वह इस सर्वसंहारी युद्धसे बच रहा तो) लोलाको उसने सहयोगिनी बनाया, जो कि पाठकजी, पांडेजी दोनोंके विचारसे साल्हा आना “त्रिस्तान” श्लेच्छ रुसी स्त्री है।

मानव समाजमें गुणात्मक-परिवर्तनके लिये उसके पुराली, उग्र, सम्य (सभ्यता सामन्तवाद, पूँजीवाद, समाजवाद) अवस्थाओंकी देरनेमें भालूम होगा कि इन अवस्थाओंमें गुजरनेपर किस तरह रूढ़ियाँ, आर्थिक, धार्मिक ढाँचे बदलते गये हैं।

^१ दादाको न देगने तथा समझ होनेसे पहिले माके मर जानेसे उनका दृष्टांत नहीं दे सना।

३ प्रतिषेधका प्रतिषेध

द्वन्द्ववादके ध्वंस रचना कार्यकी तीसरी सीढ़ी प्रतिषेधना प्रतिषेध है। विनष्ट त्रिलीन वस्तु (घटना प्रवाह)के उत्तराधिकारी या स्थाना पन्नको प्रतिषेध, निषेध, कहते हैं। यद्यपि प्रतिषेधना नाम कर्णवद्धुभा प्रतीत होता है, किन्तु साथ ही उसका महत्त्व बहुत बड़ा है, यह इन्हींसे पता लगेगा कि विश्वकी हर एक प्रगति, हरएक प्रिफासमें इसका होना जरूरी है। एक पीढ़ी पहिली पीढ़ीना प्रतिषेध करती है, फिर इस नयी पीढ़ी (प्रतिषेध) का प्रतिषेध अगली करती है। वैज्ञानिक भौतिकवादकी ही ओर देखिये—

पुगण भौतिकवाद ।

↓

यांत्रिक भौतिकवाद

↓

वैज्ञानिक भौतिकवाद

प्राचीन भौतिकवादका प्रतिषेध सत्रहवीं-अठारहवा सदीके यांत्रिक भौतिकवादने किया, और उसका प्रतिषेध वैज्ञानिक भौतिकवादने, गोया वैज्ञानिक भौतिकवाद प्रतिषेधका प्रतिषेध है।

और,

अलग अलग वैयक्तिक सम्पत्ति →

पूँजीवादी वैयक्तिक सम्पत्ति →

समाजवादी सामूहिक सम्पत्ति

पूँजीवादने अलग अलग छोटे छोटे व्यवसायियां, शिल्पियोंका इलाकर उत्पादनके साधनों तथा व्यवसायको पूँजीवादी संगठनके हाथ-

म दे दिया। समानवाद उसका प्रतिपक्ष कर प्रतिपक्ष का प्रतिपक्ष बना। माकनन इस विषयके कामको दिग्गलाने हुए कहा है—

“एक पूँजीवादी कह [पूँजीगतियाँ] को मारना है। नद (पूँजी-पातशा) द्वारा बहनासे पूँजीगतियाँ इस प्रकार हो रहे हृदयन या केन्द्रा करणन साथ-साथ बढ़ लगानार बढ़ते हुए पैमानेपर आगे बढ़ता जाता है—धमका सहयोगी (सामूहिक) तौरपर प्रयोग, जान-बूझकर सार्वजनिक पक्ष-नाजरीना विनिष्ठाग, भूमिना टीन तौरन कपण, धमके साधनांन मित्र सम्भम (सम्मिलित) तौरपर ही इस्तेमाल हाा लायक बन जाना, सम्मिलित समानाधिकृत नमके उत्पादन साधनांन उपयोग द्वारा सभी उत्पादन-साधनांन मित्र व्यवहारा हा इस्तेमाल । उत्पादन-साधनांन कन्द्रीकरण [नद हाथोम एनवित हाा] तथा श्रमना समानाधिकरण [वैयक्तिक नद व्यवस्थित समाजक रूपम उपयोग] आगिरम एक ऐने स्थानपर पहुँच जाता है, जहाँपर नद अपनी पूँजीवादी रालके प्रतिकूल हा जाता है। यह स्तोन पट जाता है। पूँजीवादी वैयक्तिक संपत्तिका (मरण) घटा बन जाता है और हृदयक हृदयि हाजाते हैं।”

सामन्तवादी युगकी वैयक्तिक संपत्तिको पूँजीवादने हृदया, उसका प्रतिपक्ष क्रिया, उगने पूँजी—लाभ—को वैयक्तिक रन श्रमको समान उक्त क्रिया। एन ही जगह दो विरोधी व्यवस्थाआंन समागम हुआ। दोनोंमें स्क्नर लगी। गुणात्मक परिवर्तनसे एन नया समानवादी समाज-शोषक शोषित रहित समान—पैदा हुआ, जिसने पहनक प्रतिपक्ष (पूँजीवाद) ना प्रतिपक्ष कर दिया।

विरोधि-समागम होनेपर ही सधनद्वारा गुणात्मक परिवर्तन हाता है, जिसना ही परिणाम प्रतिपक्षका प्रतिपक्ष होता है। यह विरोधि-समागममें निरुश्रय, जिस निरु रूपम हागा, उसीके अनुसार वह अपनी श्रमली क्रिया

आफ़ो करानेमें सफल होगा। प्रश्न हा सकता है—जिस तरह पूँजीवादको समाजवादने प्रतिषेध किया, क्या इस प्रतिषेध (समाजवाद)का भी काइ प्रतिषेध नहीं होगा, क्या यहाँ प्रतिषेध प्रतिषेधका नियम लागू नहीं है ?—लंकिन यह प्रश्न गलतीसे किया गया है। प्रतिषेध प्रतिषेधके सप्ताहको हम बीचसे नहा उटा सकते। हमें उसे विरोधि-समागमसे पटले गुरु करना होगा। प्रश्न होगा—समाजवादी—या उससे जागेके साम्यवादी-समाजम क्या विरोधि समागम होगा ? निश्चय ही (शोषक शोषित) वगहीन साम्यवादी समाजमें वग-मधर्प नहा होगा, इसलिए वहाँ इस तरहके विरोधि-समागमकी सभावना नहा। वहाँ विरोधि समागम उस वक्तकी साइस-यन-चातुरी तथा प्राकृति शक्ति और क्षमताके साथ होगा, जेसका परिणाम मानवकी क्षमताका अधिक् और अधिक विकास होगा। किम तरह, जिस दिशामें ?—यह प्रश्न गुणात्मक-परिवतनवादासे नहीं किया जा सकता, यदि आपका बैधा निश्वास है, ता इसे किसी भ्रगुसहिता वालेके पास ल जाकर अपनी अकलका दिवाला बुलवाइये।

“प्रतिषेधका प्रतिषेध” कठघोडेके नाचकी तरह उसी चक्कर पर नहा बल्कि चक्करदार सीढाकी भोंति ऊपर और ऊपर जाते पथ पर होता है, यर उतलाते हुए मार्क्सने उतलाया—

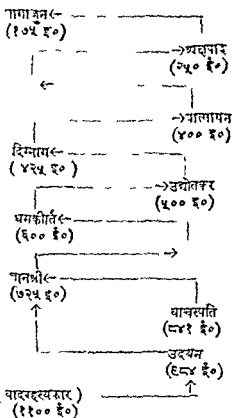
“पहिली [पूँजीवादकी सफलताकी] अवस्थाम याडेसे (परस्वत्व) अपहरण करनेवाला द्वारा जनताकी एक अत्यन्त भारी सख्याका वचित करना [हड़पना] था, दूसरी [समाजवादकी सफलताकी अवस्था] म जनताकी एक अत्यन्त भारी सख्या द्वारा चद अपहरण करने वालाका वचित करना है।”

प्रतिषेध प्रतिषेधक नियमका दर्शनके इतिहासम देखें ता इसके उहुतमे नमूने मिलेंगे। यागनल्क्य (७०० ई० पू०, से असग (४०० ई० पू०) के म्यारह सौ सालोंम प्रतिषेध प्रतिषेध निम्न तौरसे चता रहा था—

पैरिफ पमनाह → वायवल्न्य → फिलि → बुद्ध → अफलातून → अमंग
 और आगे—

अमंग | → दिग्गाण → धमकीर्ति
 → गौड़पाद → शंकराचार्य

और भारतीय वायवशास्त्रमें प्रतिषेधधे प्रतिषेध—



हा, यहाँ प्रतिषेध प्रतिषेधना मतलब यह न समझिये कि एकने दूसरेके सारे दर्शनवा प्रतिषेध कर दिया, प्रतिषेध उसी अंशमें हुआ, जितनेमें निरोधि-समागम हुआ था ।

द्वितीय अध्याय

कार्य-कारण (हेतुवाद)

द्वद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन नहीं, बल्कि साइसका अधिनायकत्व है, इसीलिये वह जो भी शक्ति रखता है, वह उसे साइससे मिली है— यह हम पहले कह चुके । किन्तु, प्रचलित दर्शनवालाके मुकामिले हम इसे दर्शन—और उनसे कहीं बढ चढकर दर्शन—भी कह सकते हैं । द्वद्वात्मक भौतिकवाद अपनेको प्रचलित तर्कशास्त्रकी कोटिमें रखनेके लिये तैयार नहा है, क्योंकि वह दिमागी कसरतको नहा बल्कि प्रयोग (भौतिक जगत्में प्राप्त वस्तु स्थिति)का परम प्रमाण मानता है, यही उसके लिये सत्यकी सर्वश्रेष्ठ कसौटी है । तो भी जिस तरह प्रचलित दर्शनसे लाहा लेनेके लिये उसे दर्शन बनकर दर्शनकी भाषामे जवाब देना पडता है, उसी तरह तर्कके शास्त्रको कु ठित करनेके लिये उसे तर्क के जनक प्रयोग जैसे महाशास्त्रवाले तर्कको भी इस्तेमाल करना पडता है । ऐसी अनगिनत वैज्ञानिक भौतिकवादको कार्यकारण (हेतु)-वादके बारेमें अपनी स्थितिको साफ कर देना जरूरी है ।

क. कार्य-कारण या हेतु

१ व्याख्या

कार्य-कारण नियम क्या है ? इसे जाननेके लिये पहले कारणको जानना जरूरी है । कारणका जो लक्षण अभी हम दे रहे हैं, उसके बारे में यह जान लेना जरूरी है प्रकृतिको यह बिलकुल मजूर नहा है कि उसकी वास्तविकता परमाथ तौर पर चिन्तित या भाषित किया जाये ।

—वस्तुतः दार्शनिकों और तार्किकों अर्थमें परमार्थ नामका वा शब्द है, वह प्रकृतिके कोगम मौजूद ही नहीं है। वास्तविकताके नियम प्रयोगकी कसौटी हाथ ले जैसे आइन्स्टाइन^१ सापेक्षतावाद पर पहुँचे, इसे आपने पढ़ा होगा, उससे हमारी बात समझनेमें न दिक्कत होगी, न उसमें रहस्यवादी अर्थ खोजनेकी आप कोशिश करोगे।

अच्छा तो कारण क्या है? यहाँ फिर स्मरण रखना होगा कि जब हम कहते हैं—कुछ कारण है, जो अमुक परिवर्तनको ला रहे हैं, तो परिवर्तन लानेमें वहाँ हम देश और कालको नहीं गिनते, गोया देश-काल किसी चीजके कारण नहीं हैं। आप प्रश्न कर उठेंगे—क्या देश-कालका अस्तित्व ही नहीं है? क्या आप भी वेदाती हो गये? नहीं, इन दोनों बातोंकी शंका आपके मनमें नहीं खानी चाहिये। हम देश-कालसे इन्कार नहीं करते, हम इन्कार करते हैं, उनके दार्शनिक अर्थमें परमार्थ होनेसे। देश-काल वस्तुतः भूत (भौतिकतत्त्व)के अस्तित्वके ही—उससे कभी अलग नहीं रहनेवाले—पहलू हैं। जैसे गिनती प्रकृतिके यहाँ उस तरह नहीं मिलता, जैसी कि हमारी गणितकी पुस्तकामें, उसी तरह देश-काल भी द्वैत्वात्मक प्रकृति (भूत, गति)से अलग कोई हस्ती नहीं रहते। कारणका काम है किया करना। क्रिया बिना अपने या दूसरेमें कोई परिवर्तन किये नहीं हो सकती। दार्शनिकोंका देश-काल-आकाश, आत्मा (ईश्वरको भी ले लीजिये)—कोई काम नहीं करते, वह निष्क्रियतत्त्व हैं। निष्क्रिय होने पर भी वह निराकार पदार्थ हैं—यह सध्याभाषा है, जिसका समझना मत्स्योंकी शक्तिसे बाहर है, शायद इसे भाँगना गाला चनाये भोला जावे व' उनका नाँदिया ही समझ पाये।

फिर यह भी स्मरण रखना है कि कारण भी कोई परमार्थके अर्थमें नहीं होता—एक बार कारण है तो वह सदा कारण रहेगा, ऐका प्रकृति

^१ देखिये “विश्वकी रूपरेखा”

में नहीं मिलता । जिस तरह हर एक पिता किसी-ना पुत्र भी है, उसी तरह हर एक कारण किसी (नहा किन्ही कहना अच्छा है, क्योंकि प्रकृति नहु, पति विवाह—यूथ विवाह—को बहुत पसंद करती है ! एक कारण नहीं कारण सामग्री ^१—कारण-समुदाय—कार्यको अस्तित्वमें लानेमें समर्थ होते हैं) किन्हा पहिले कारण-समुदायकी प्रसूति—काय हाता है । यह ग्यालम रखते हुए आप कारणकी परिभाषा कर सकते हैं—कारण वह वस्तु (घटना प्रवाह) है, जो कि नियमपूर्वक किसी परिवर्तनके तुरन्त पूर्व मौजूद (काय नियत पूर्व-वृत्ति) था, और यदि उन्ही परित्यगमें वेशा कारण(-समुदाय) फिर मौजूद हुआ, तो उसी तरहके कार्य (घटना प्रवाह) अस्तित्वमें आयेंगे ।

तब कार्य-करण नियम होगा—यदि एक रात घटना प्रवाह (आसानीके लिये वस्तु कह लीजिये) वस्तुतः मौजूद है, तो उसमें पहिले एक दूसरा अनूकूल घटना प्रवाह वहाँ अवश्य मौजूद रहा होगा । अवश्य मौजूदगी कारण होनेके लिये जरूरी है ।

१ नियतिवाद

काय-कारण नियममें नियम—नियति = अवश्यभावना—दुसरेके बँठा हुआ है, जिसमें नियतिवादका प्रसव बिल्कुल आसानीमें हो सकना है । प्रकृतिमें कार्य-कारण नियम हर जगह सरार दिखाई पड़ता है । किन्तु इस तरहके बडे नियमको जब हम एक मनुष्य या अनेक मनुष्या पर लागू करना चाहते हैं, तो भारी दिक्कत ही का सामना नहीं करना पड़ता, बल्कि कितना ही बार वह व्यक्ति या व्यक्ति-समूह उसे लागू होने नहीं देता, यही बजह है, जो कि हम प्रकृतिके बारेमें जिनने इतमीनानके साथ भविष्य कथन कर सकते हैं, मनुष्यके बारेमें उनना

^१“सहती देवता तेषाम्”—धर्मश्रुति (प्रमाणवार्त्तिक २।२८)

नहीं कर सकते। आप इससे खुश न होइये—अच्छा हुआ जो मनुष्यजी (इच्छा या कर्म) स्वतन्त्रता सुरक्षित रह गई, और यह नियतिके पारामे रथा “मदारी” का भानू नहा बन गया। नियतिवाद और न्याय-ययादगी समस्या काफी गहन है—आसकर जपति प्रकृति (प्रयोग) का सहारा छाड़ लोग इससे आनाशके सितारे तोड़ने लगते हैं।

हा, तो प्रश्न है—य प्रकृतिम सर्वत्र कार्य-कारण नियम व्याप्य हुआ है (इसे माने बिना काइ साइस-सपधी गवेषणा संभव नहीं), तो मनुष्यको “स्वतन्त्र कला” कैस कर सकते हैं? कार्य-कारण-नियम एक जपईसत नियति (भाग्य) है, जिसके द्वारा विश्वना प्रत्येक वस्तु (घटना प्रवाह) नियत है, तभी तो हम प्रयोगशाला, या वेधशालाम रायस कारण तरु पहुँचनेका प्रयत्न करते हैं, अथवा कारणसे कार्यक संभव होनेका एवाल कर उसका पानेके लिये परिश्रम करते हैं। फिर तो बचारा मनुष्य हाथ पेरने बाँधा है, उसकी तो साँस भी इसी कार्य-कारण नियमके अधीन है। इसका अर्थ दूसरे शब्दाँम यह हुआ कि हमारी इच्छा हमारे अन्तस्तम विचार सभी नियति—भाग्यके हाथम हैं। फिर तो यह भी मानना पड़ेगा कि विश्वके भीतर एक सास प्रयोजन छिपा मालूम होता है, और उसका संचालन ‘ईश्वर’ यह सब कुछ एक सास प्रयोजनसे करता है। किन्तु अभी इतनी दूर तक जानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि नियतिवाद दुधारी तलवार है, यदि यह मानवका हाथ पैर बाँध कर छोड़ देगा, तो ईश्वरकी दशा भा उससे बेहतर न होगी, वह भा नियतिके हाथकी कठपुतला मान रह जायेगा।

देखना है—क्या कार्य-कारण नियम इतना प्रबल है।
 यदि ऐसा होता तो कार्य-कारण नियम काटते देखना,
 और कारणके बाद कार्य,
 कार्य फिर वही कारण
 किन्तु इतिहासमें हम

ऐसा सारित करनेके लिये पूरी कोशिश की जाती है। अंग्रेजी कहानत है—“सूर्य(आकाश)के नीचे कोई नव चीज नहीं”, जो कि सोलहा आने गतत है, और उसकी जगह रहना चाहिये—‘आकाशके नीचे कोई चीज पुरानी नहीं है।’ हर एक चीज हर क्षण नव है, इसे हम पहले पतला आये हैं। अंग्रेजीकी नहापतकी भाति ही भारतकी भी पुरानी गलत कहावत है—“मृयाच द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्”^१, और इसके ऊपर जो तूफाने-बदतमीची पाया गया, उट तो “पत्ता भी हिलता नहीं (बिना उसकी मर्जने)” नेमी सस्ती हजारों कहावतमें देखा जाता है। इसका निदर्शन राम रामणमें संबध रचनेवाली हनुमानकी कहानीसे है।

हिन्दुआके परम देवता बानर हनुमान्, जो है-सो रामकी कृपासे, जगत्-माता जनकनन्दिनी सीताजीके पास जय जा रहे थे, तो उनके मनमें सदेह होता भया—यदि कहीं घट पटकी बात जाननहारी जनक दुलारी सीता महारानीके मनमें शका उत्पन्न होती भई कि कौन जाने यह कलमु हा बानर त्रिलोक्यके विधाता दाशरथी रामके पाससे आया है वा और कहासे, तो कैसे करके विश्वास दिला सकूँगा। निदान, यह सोच श्री हनुमान्जी महाराज रामजीसे बोलते भये—“हे त्रिलोकीके धाता ! हमारे मनमें यह सदेह होती भई है, सा उपा करिके हमको कोई चीहा दीजिये।”

रामजीने रामनाम-अन्वित मुद्रिकाको अपनी अंगुलीसे निकालकर श्री हनुमान्जीको प्रदान कर दिया। बेचारे हनुमान्जी रास्तेमें कालनेमि में कम न परेशान करनेवाले एक नूढ़ेके पैरमें पड़ गये। उसने धीरेसे हनुमान्की अंगुठी उडाइ और उसे अपने नभउल्लुमें डाल दीनी। हनुमान्जीकी अकल गुम हो गई। कौन मुत्त लेके रामके पास लौटें, और कौन

^१“सूर्य और चंद्रमाको विधाताने पूर्वकी तरह ही बनाया” —यजुर्वेद

नहीं कर सकते। आप इन्हें, वृत्त न देखते—अच्छा हुआ जो अनुभव (इच्छा या काम) उतना मुखिया रह गई, और वह निर्वाण पारमेश्वर "मदारी" का मालू नहीं बन गया। निर्वाण और स्वतन्त्रता की समस्या काही नहीं है—आसन्न अके प्रकृति (प्रयोग) का सहाय छोड़ लोग हम आशाशेष गिता छोड़ा मान है।

है, तो प्रश्न है—यह प्रकृति का कार्य-कारण-नियम क्या हुआ है (हम माना कि यह कार्य-कारण-नियम ही है), तो अनुभव का "मदारी" का वह करने है। कार्य-कारण-नियम एक तन्त्र-नियम (भाव) है, जिसके द्वारा निरवधि प्रत्येक वस्तु (पदार्थ प्रकाश) नियत है तथा तो हम प्रयोगशाळा, या वैश्वानरों कायके कारण तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, अथवा कारणों कायके मध्य होने का प्रयत्न कर उमरे पाक नियम परिभ्रम करते हैं। फिर तो अज्ञान अनुभव हाथ देते हैं, उगरी तो मीमांसा भी हमी कार्य-कारण-नियमके अधीन है। हमका अर्थ दूसरे शब्दों में यह हुआ कि हमारी इच्छा हमारे अतस्तम विचार सभी नियमों—भाष्यकहायम है। फिर तो यह भी मानना पड़ेगा कि निश्चय भीतर एक रास प्रयोजन द्विपा मालूम होता है, और उगरी संगत 'इश्वर' यह सब कुछ एक रास प्रयोजनसे करता है। किन्तु अभी इतनी दूर तक जाँची जायत नहीं क्योंकि नियमों का दुधारी तलवार है, यदि वह मानने हाथ-पैर बाँध कर छोड़ देगा, तो ईश्वरकी दशा भी उगने बेहार न होगी, यह भी नियमके हाथकी कटपुतली मात्र रह जायेगा।

देखा है—क्या कार्य-कारण-नियम समुदाय ही इतना प्रबल है। यदि ऐसा होता तो कार्य-कारणों एक तन्त्र ही चकर पायत देवते, और कारणके मद काय, उस कायके कारण बन जानेपर भी वही काय फिर वही कारण इस तरह एव-ही आवृत्ति चलती रहती है। किन्तु इतिहासमें हम कभी इस तरहकी पूर्ण आवृत्ति नहीं देखते, यद्यपि

ऐसा साबित करनेके लिये पूरी कोशिश की जाती है। अग्नेजी कहावत है—“सूर्य (आकाश) के नीचे कोई नई चीज नहीं”, जो कि सोलने आने गलत है, और उसकी जगह रूफना चाहिये—‘आकाशके नीचे कोई चीज पुरानी नहीं है।’ हर एक चीज हर क्षण नई है, इसे हम पहले बतला आये हैं। अग्नेजीकी कहावतकी भाँति ही भारतकी भी पुरानी गलत कहावत है—“सूर्याचंद्रमसो धाता यथापूर्वमकल्पयत्”^१, और इसके ऊपर जो तूफाने-बदतमीची रोधा गया, वह तो “पत्ता भी हिलता नहीं (पिना उसकी मजोंके)” नेमी सस्ती हत्तारा कहावतोंमें देगा जाता है। इसका निदर्शन राम-राज्यमें संभव रहनेवाली हनुमान्की कहानीसे है।

हिन्दुआके परम देवता वानर हनुमान, जो है-सो रामजीकी कृपासे, जगत्-माता जनकनन्दिनी सीताजीके पास जन्म जा रहे थे, तो उनके मनमें सदेह होता भया—यदि नहीं घट-घटकी बात जाननहारी जनक दुलारी सीता महारानीके मनमें शक उत्पन्न होती भई कि कौन जाने यह कलमु हा वानर त्रैलोक्यके विधाता दाशरथी रामके पाससे आया है या और कहींसे, तो कैसे उनके विश्वास दिला सकूँगा। निदान, यह सोच श्री हनुमान्जी महाराज रामजीसे गोलते भये—“हे त्रिलोकीके दाता ! हमारे मनमें यह सदेह होनी भई है, मा कृपा करके हमको कोई चीन्हा दीजिये।”

रामजीने रामनाम अंकित मुद्रिकाको अपनी अंगुलीसे निकालकर श्री हनुमान्जीको प्रदान कर दिया। बेचारे हनुमान्जी रास्तेमें कालनेमि ने कम न परेशान करनेवाले एक बूढ़ेके परम पद गये। उराने धीरेसे हनुमान्जी अगूठी उठाइ और उसे अपने नमदलमें डाल दीनी। हनुमान जीकी अकल गुम हो गई। कौन मुख लेके रामके पास लौटें, और कौन

^१“सूर्य और चंद्रमाको विधाताने पूर्वकी तरह ही बनाया” —यजुर्वेद

मुझ लेके सीतामाताके पास जायें—मुझ पर भारी कालिल सी पुतल लगी ।
 बूढ़ेको दया आइ, उसने कमडलू सामने रखर कहा—इसके भीतरसे
 अपनी अगूठी निकाल ले । हनुमानने झोंकर देगा, तो वहाँ अगूठियों
 का ठिकाना न था, और मभा एक ही तरहकी, मानो बूढ़ेने अगूठीकी
 एक टुकड़ा ही खान रखी हुती । बूढ़ेने थोड़ा ही देर बाद नगर जला
 म्नी-बच्चके करुण नदन करानेमें कलियुगके दिट्ठलरको भी मात करन
 वाल बानर पु गनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—जिस रामकी अगूठी
 चाहता है रे !”

“दशरथके पुत्र रामकी ।”

“ये सभी दशरथके पुत्र थे, जिनकी अगूठियाँ यहाँ पड़ी हैं ।”

“पुराना नाम सन्त और हाल नाम अयोध्याके राजाकी —।”

“ये सभी अयोध्याके राजा थे ।”

“रघुपति राघव राजा राम । पतितपाया गीता राम” की । येचारे
 हनुमानने समझा—इस बूढ़ेने भी गीताप्रेस उल्लाण एक लिमिटेडम बारा
 राघवदासकी सिफारिशपर कुछ रामनामकी रकम डिपॉजिट की होगी,
 और अब मेरा काम बन जायगा । लेकिन बूढ़ेने हनुमानकी पीठसे हाथ
 हटा खिचको नीचा रखे कहा—

“यह सभी ‘रघुपति सीताराम’की अगूठियाँ हैं ।”

“अरे जिसे कलियुगके तारद निष्णु दिगंबर तनूरेपर गानेवाले हैं,
 उस ‘रघुपति सीताराम’की ।”

“कह दिया यह सभी वही अगूठियाँ हैं, जिन्हें निष्णु दिगंबरके ‘रघुपति
 सीताराम’ और सेनाग्रामम गाये जायेंगले ‘रघुपति सीताराम’ नामक
 व्यक्तियाने एकबार पहिना था । तू इस चक्करम मत पड, तेरे जैसे हनुमानों
 तथा तेरे भालिक जैसे रामोंको एक नहा छसौ छप्पन गडे मने देखे हैं ।
 मने ये केश धूपमें नहीं सुजाये हैं । इनमसे एक अगूठी ले, और अपना
 रास्ता नाप ।”

बूढ़ेकी रात सुनकर हनूमान्के उत्साहपर हजार घड़ा पानी पड़ गया। वहाँ अशोक वामे नजरबंद सीताके अकमें अगूठी फकी, गद्द और जगन्माताने जो गेना धोना शुरू किया, उसे जानना चाहते हैं ना नम्रमोचनगाले पुराने रामके पास चले जायें।

नैर ! यह तो मालूम हुआ न कि बूढ़े—हिन्दू धर्म—के कहनेके अनुसार “सूर्यके नीचे कोई चीज नष्ट नहीं।”—मालवीयजीअनि करोड़ों बार ऐसे हिन्दू विश्वविद्यालय बनाये हैं, सर राधाकृष्णन्ने अनगिनत बार उमम सालहो आना गलत-सलत गीतोपदेश किये हैं, और सबसे बढ़कर तो यह बात है कि राहुलाने भी अरबों नीलों सखों महा सगनों बार “वैज्ञानिक भौतिकवाद” ठीक इन्हा पक्तियों, इहाँ वणानुपूर्वी, इसी दिग्दीभापामें ऐसे ही मीठे-कड़वे शब्दोंमें लिखे हैं। हाँ, तब तो यह “वैज्ञानिक भौतिकवाद” उतना ही नित्य अपौरुषेय है, जितना कि जैमिनि शम्भुमारिल-रामाजुज चीन्डोका अपौरुषेय वेद। मैं तो पैगमरकी भाँति “लौहे मटफून्”पर उत्कीर्ण “वैज्ञानिक भौतिकवाद”का सिर्फ पैगाम भर आपके सामने पहुँचा रहा हूँ, जैसा कि हर कलियुगके इसवी १९४२ ई०में हिटलर-मुसोलिनीके रण-वाढवके समय मुझसे पहिलेवाले गहुलोंने किया था। यदि आप हनूमान्गाले बूढ़े, जैमिनि, जुमारिल के सच्चे अनुयायी हैं, तो इमान लायेंगे कि यह “वैज्ञानिक भौतिकवाद” प्राचीनता अतएव परिश्रतामें वेद, बाइबल, जिन्दा वस्था, इजील, कुरान किसीमें कम नहीं है, और यदि इसमें कुछ और भी बुद्धिकी बात पाते हैं, तो “ग्रामके ग्राम और गुठलीके दाम।”

- यह बात न समझिये कि यह भाप सिर्फ हिन्दुओंने ही किया है। यूनानी और इस्लामिक दार्शनिकोंमें चौटीके विचारक नित्य ईश्वरको सिद्ध करनेके लिये जगत्की नित्यता (कदामत्-पालम) को मानना बहुत जरूरी समझते थे, और अपनी बुद्धि-वादिता सांगित करनेके लिये कार्य-कारणके नियमको विश्वमें सबदामे अटल मानते थे। “नदिया एक

मुग लेके सीतामाताके पास जायें—मु हपर भारी कालिय-सी पुतन लगी । बूढ़ेको दया आइ, उसने कमडलू सामने रखर कहा—इसके भीतरसे अपनी अगूठी निकाल ले । हनुमान्ने झॉकर देगा, ता वहा अगूठियों का ठिकाना न था, और सभी एक ही तरहकी, मानो बूढ़ेने अगूठीकी एक टकनाग ही गोल रखी हुती । बूढ़ेने थोड़ा ही देर गल नगर जला गी-बच्चाके नरुग-भदन नरानेम कलियुगके दिट्लरने भी मात करने वाले यानर पु गवनी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—किस रामकी अगूठी चाहता है रे !”

“दशरथके पुत्र रामकी !”

“ये सभी दशरथके पुत्र थे, तिनकी अगूठियां यहा पड़ी हैं ।”

“पुराना नाम साकेत और हाल नाम अयोध्याके राजाकी —”

“ये सभी अयोध्याके राजा थे !”

“रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीता राम” की । बेचारे हनुमान्ने समझा—इस बूढ़ेने भी गीताप्रेस-बल्ब्याण नरु लिमिटेडमें बाग राघवदासकी सिपारिशपर कुछ रामनामकी रकम डिपॉजिट की होगी, और अर मेरा काम न जायगा । लेकिन बूढ़ेने हनुमान्की पीठसे हाथ हटा सिरको नीचा रखे कहा—

“यह सभी ‘रघुपति सीताराम’की अगूठियाँ हैं ।”

“अरे तिसे कलियुगके नारद त्रिष्णु दिगंबर तंत्ररेपर गानेवाले हैं, उस ‘रघुपति सीताराम’की !”

“कह दिया यह सभी वही अगूठियाँ हैं, तिनह त्रिष्णु दिगंबरके ‘रघुपति सीताराम’ और सेनाग्राममें गाने जानेवाले ‘रघुपति सीताराम’ नामक व्यक्तियाने एक नार पहिना था । तू इस चक्करम मत पड़, तेरे जैसे हनुमानों तथा तेरे मालिक जैसे रामोंको एक नहा छसो-छपन गडे मने देखे हैं । मने ये केश धूपमें नहीं सुत्ताये हैं । इनमेंसे एक अगूठी ले, और अपना रास्ता नाप ।”

बूढेकी ग़ात सुनकर हनूमान्के उत्साहपर हजार घडा पानी पड गया । वहाँ अशोक वनम नजरअद सीताके अकमें अगूठी फेंकी, गइ और जगन्माताने जा रोना धोना शुरू किया, उसे जानना चाहते हैं ता सन्तमोचनवाले पुराने ग़ातके पास चले जायँ ।

खैर ! यह तो मालूम हुआ न कि बूढे—हिन्दू धर्म—के कहनेके अनुसार “सूयके नीचे कोई चीज नइ नहा ।”—मालनीयजीग्रोंने करोड़ा ग़र ऐसे हिन्दू विश्वविद्यालय बनाये हैं, सर राधाकृष्णन्ने अनगिनत ग़र उमम सालहो आना ग़लत-सलत गीतापदेश किये हैं, और सरसे बढ़कर तो यह बात है कि राहुलाने भी अररा नीला * सग्नो महा सस्ता ग़र “वैज्ञानिक भौतिकवाद” ठीक इन्दा पक्तियों, इन्दा वणानुपूर्वा, इसी हिन्दीभाषामें ऐसे ही मीठे-बडवे शब्दोंमें लिखे हैं । हाँ, तर तो यह “वैज्ञानिक भौतिकवाद” उतना ही नित्य अपोरुपेय है, जितना कि जैमिनि शबर-कुमारिल-रामानुज चौकड़ीका अपोरुपेय वेद । मैं तो पेगतराकी भाँति “लौहे महफूज”पर उत्कीण “वैज्ञानिक भौतिकवाद”का सिफ पैगाम भर आपके सामने पहुँचा रहा हूँ, जेसा कि हर कलियुगके इसवी १९४२ ई०में हिटलर-मुसोलिनीके रख-चाँडवके समय मुम्तसे पहिलेवाले राहुलोंने किया था । यदि आप हनूमान्वाले बूढे, जैमिनि, कुमारिल के सच्चे अनुयायी हैं, तो इमान लायेंगे कि यह “वैज्ञानिक भौतिकवाद” प्राचीनता अतएव परिपतामें वेद, गइरल, जिन्दा वस्था, इजील, कुरान किसीमे कम नहीं है, और यदि इसमें कुछ और भी बुद्धिकी बात पाते हैं, तो “ग्रामके ग्राम और गुठलीके दाम ।”

यह बात न समन्वित कि यह पाप सिर्फ हिन्दुओंने ही किया है । यूनानी और इस्लामिक दाशनिकोंमें चोटीके विचारक नित्य ईश्वरको सिद्ध करनेके लिये जगत्की नित्यता (क़दामत्-ज्वालम) को मानना बहुत जरूरी समझते थे, और अपनी बुद्धि-वादिता सापित करनेके लिये कार्य कारणके नियमको निश्वम सबदासे अटल मानते थे । “नदिया एक

घाट पहुँचते" की कहावतके अनुसार हम रास्तासे भी हम सीधे नियति वादके उसी दलदलमें पहुँच जायेंगे। हाँ, इस लोगोका दलदलमें पहुँचकर हा नहीं, उठकर तड़प हा जाने पर अगुनो एक निनकेना सहारा थमाना चाह—अगर सामाजिक ज्ञान रखता है, निगमना नहीं, जानिकी बात रखता है व्यक्तिना नहीं। और इसपर भवनाभमके भगवदभक्तों अरस्तूकी जा गत बनाई—जा युक्तम पत्राहत नी, उम कहनेके लिये, उम्मीद है, आप मुझमें आश्रय नहीं करगें। भगवद् भक्तोंके कानमें उँगुली टापी, और अरस्तूकी बात माननेकी जग नुल्लू भर पानीमें डूब मरना पसंद किना।

सैरियत यही है कि यह सभी बातें गलत हैं। इतिहासके पन्नाओं देखनेसे मालूम होता है कि उसका कोई व्यक्ति कोई घटना यही नहा हाती। कारणका अस्तित्व तिम जत हम स्वीकार करते हैं, उसी वक्त कारणकी परिमाणा (परिवर्तन उपस्थित करेवाला) भी कबूल करते हैं, और परिवर्तनके बाद फिर 'वही है' यदि कहते हैं, तो गोया परिवर्तन से इन्कार करना चाहते हैं। फिर भिरसे कहिये, कारण ही नहा है—“न रहे जौस न वनै बाँसुरी।”

३ वैज्ञानिक नियम

आप फिर सवाल करेंगे—जब हम प्राकृतिक घटना प्रवाद पर गौर करते हैं, अपने आस-पासके वातावरण, परिस्थिति तथा सामाजिक जीवन पर विचार करते हैं, तो इन घटनाओंमें एक खास तौरकी नियमबद्धता देखते हैं—दिन, रात, वर्षा, यमन्त । प्रकृतिके भीतर जो कुछ है—तारा प्र उपग्रहसे ले, चुद्रतम कण तक, सबमें एक नियमबद्धता पाई जाती है, जिसे कि प्राकृतिक नियम कहते हैं। इहाँ नियमोंका पता लगाना साइसना काम है। यही वाय-कारण नियम हैं, जा कि प्रकृति और समाजमें हर जगह कल्पनाके तौर पर नहा, वस्तु स्थितिके तौरपर

पाया जाता है। साइंस इस कार्य-कारण नियमना पता लगाकर प्राकृतिक घटनाओंको आकस्मिकतासे हटा नियम नियंत्रित साधित करता है, और उनपर नियंत्रण कर साइंसकी देन—रेल, तार, हवाई जहाज—को मनुष्यके उपयोग और उपभोगके लिये बनाता—चलाता है। प्रकृति-की हरण चीजमें नियम है। छछून्दर धरतीके भीतर रहती है, जहाँ उसे अच्छी आँसूकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि अच्छी श्रवण शक्तिकी, और इसलिये छछून्दर दिव्य श्रोत्र होनेका दावा कर सकती है। इसी तरह बहुत भारी गहगाईमें रहनेवाली मासुदिक मछलियाँ शरीरपर पार जल-शशिका जितना भार रहता है, उससे बचनेके लिये उनके शरीरके भीतरमें जितना दबाव बाहरकी ओर पड रहा है, वह, इतना अधिक है कि मछली पानीसे निकलते ही भीतरी दबावके कारण फट जाती है। इस तरह हम फिर कहते हैं—प्रकृति और समाज दोनोंमें ऐसा प्राकृतिक नियम मौजूद है, जिसे हम चाहे जानें या न जानें, वह अपना नाम दिये जाता है, जिसका अर्थ है प्राकृतिक घटनाओंकी भौतिक सामाजिक घटनाएँ भी नियमसे बद्ध हैं।

और ? उपरोक्त प्राकृतिक नियम अथवा उनसे ज्ञात वैज्ञानिक नियम कार्य-कारण नियम हैं। उनका काम है अतीतना अनागत (भविष्य) से सम्बन्ध जोटना। इसी अतीत अनागतके अटल सम्बन्धके भरोसे ही किताने ज्ञानमें धरकी अनपूर्णाको खेतनी माटीम गाड़ आता है, और मनु समाजवादी सोशियल मनुष्य पंचवर्षिक योजना बनाती है। यह कहनेका हमारा यह मतलब नया कि वैज्ञानिक नियम “जो चाहो सो पूछ लो” वाले जोतिषी राजाकी अदलीमें हाजिर रहनेके लिये बनाया गया है।

उसका काम आनेवाली घटनाओंका सिर्फ भविष्य कथन ही नहीं है, बल्कि घटनाको वैसे होनेके लिये भौतिक परिस्थितियों भी बनाना है। लेकिन, भौतिक परिस्थितिके बनानेमें कार्य-कारण नियमने जहाँ हाथ

डाला, वहीं यह नियति (भाग्य) ग्राहके चगुलसे निकला । कारण कहते हैं, परिवर्तन-कारणों परिवर्तन नयेके पैदा होनेको कहते हैं । फिर काय-कारणसे नियतिवादना कोई सम्भव नहीं । साथ ही काय-कारणों अदृष्ट सम्बन्धोंकी सहायतासे हम किसी कामके करनेमें हाथ लगा सकते हैं, यह भी ठीक है । यह दोनों परस्पर विरोधी बातें कैसे मानी जा सकती हैं—इसका उत्तर इस वक्तके लिये इतना ही है कि प्रकृति विराय-ममा गमको प्राणोंसे प्याग मानती है ।

४ मनुष्यकी स्वतन्त्रता

कार्यकारण नियमना नियतिवाद, ईश्वरवादसे कितना सम्बन्ध है, इसका जिज्ञ हो चुका है । ईश्वरवादियोंमें कुछ भगवान्दास तो आत्म-समर्पण करनेके लिये तैयार हैं—ईश्वरके हाथकी कठपुतली बननेका बन्धन नहीं भूषण मानते हैं—और, दुनियाके दुःख, अत्यायनों उसका 'भेद' रहकर भुलावा देनेकी कोशिश करते हैं । यद्यपि इसका उद्देश्य कितनोंके मनमें यही होता है कि वह खुद अपने शासन-क्षेत्रमें उसी तरह के अनुत्तरदायी भगवान् बन सकें, किन्तु, सभी ईश्वरवादी इस तरह अहंके पीछे लाठी लेकर फिरनेवाले नही हैं । यह ईश्वरकी वस्तु ईश्वर का, और जीवकी वस्तु जीवको देनेकी कोशिश करते हैं—अथवा दाना पर मोचनेके लिये अपने मस्तिष्कमें काफी पासिलेके साथ उन्होंने दा कोठरिया बना रखी हैं, और एक समय दोनों गार्ताको लेकर वह अपने तथा अपने मित्रके दिमागको परेशान नहीं करना चाहते । वह कहते हैं—श्वर सत्ता प्रथम कारण है, साथ ही जीवको कम और विचारकी स्वतन्त्रता है ।

लेकिन, यहाँ यह कहना पड़ेगा कि यह धर्म घोषणा अधिष्ठित 'सानेके दाँत और दिखानेके और' की सी है । आपका विचारका पुरा स्वतन्त्रता है, किन्तु जहाँ आपने ईश्वरकी सत्तापर अनुनय करना शुरू

किया कि 'बहुका मान बितना है' इसका पता लग गया। और कर्म स्वातन्त्र्यके बारेमें कुछ कहना तो और मुश्किल है। क्योंकि, वह तो उमीके लिये समय है, जो "जबरा मारे रोने न दे" का नमूना है। ईश्वरको अन्यायी समझकर लोग उसका छोट न बैठें, इसीलिये इस कर्म विचार-स्वातन्त्र्यकी रात कमी जाती है, अन्यथा यह तो साफ है कि घाम घोड़ेका यारी नहा हो सकती। छोटी चादरम यदि सिर ढाँकते हैं तो पैर नगा, और पैर ढाँकते हैं तो सिर नगा। यदि आप जीवको स्वातन्त्र्य प्रदान करते हैं, तो उतने अंशमें ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्तामें कमी जाती है, यदि ईश्वरको सर्वशक्तिमान् मानते हैं, तो जीव अकिञ्चन हो जाता है। और ईश्वरकी स्वतन्त्रताकी रात तो अरस्तूके मुँहसे आप सुन लुके हैं। अरस्तू चाहता था कि ईश्वर और जीव दानाकी सेवा करे। उसे दो नावोंपर चढ़नेवालेकी बात नहीं मालूम थी। उमने कहा— ईश्वर सर्वश है, किन्तु सर्वम सामान्य शामिल है, विशेष नहा, जातियाँ शामिल हैं, व्यक्तियों नहा, ईश्वर मानवताका जानता है, गाँधी और गाँधिसुनका नहीं, गाय जाति (गोत्व) ना जानता है, नये "मुसलमान" गो भक्त श्रीराम शमाके "विशाल भारत" में छपनेवाली गायोंकी नहा।—शमाजीके साथ हमारी सहानुभूति है, ईश्वरकी इस बेदुगीपर। किन्तु, अरस्तूने यह माननेके लिये अपने तैयार किया था। वह बेचारा जानता था, भेड़ोंके भडकन्त स्वभावको। निकाल समय ईश्वरके ज्ञानम अतीत अस्तुअकि बागैम जा कुछ मौजूद है, वह होकर रहेगा, जैसी मिट्टी जैती आग बननेवाली है, वैसी बनकर रहेगी, जैसी सींग पैर-नाक मानवाली गाय जाति बननेवाली है, वह ईश्वरके ज्ञानमें पहलेसे मौजूद है, और वह वैसा बनकर रहेगी। इसका अर्थ हुआ ईश्वर परिस्थितिको जैसा होना चाहिये, वैसा ज्ञानमें बना चुका है, और नियत समयपर वह उसी रूपमें आ मौजूद हागी। मनुष्यके स्वातन्त्र्यका कोई मूल्य नहा यदि वह भी परिस्थितिम परिवर्तन करनेका

उसी तरह अधिकारी न हो, जिस तरह कि परिस्थिति उसे परिवर्तित करती है। इसके बारेमें जब हम प्रकृति (प्रयोग) में पूछते जाते हैं, तो वह साफ बहती है कि परिस्थिति जिस तरह मनुष्यको बदलती है, उसी तरह मनुष्यको भी परिस्थितिको बदला है और बदल देनेमें लगा हुआ है।

५ तर्षनिर्भर नहीं, वस्तुनिर्भर हेतुवाद

प्रकृतिने जैसे दूरमें चौराहों को तर्कको पछाटा है, वैसे ही स्वातंत्र्य और नियमरक्षताके संघर्षमें भी व उसके फदेमें आनेवाली नहीं है। अपने अन्तस्तरमें अवस्थित एलेक्ट्रॉनके बारेमें उसने दिखाया है कि वह कण भी है और तरंग भी। तब बहुत चिल्लाता रहा किन्तु प्रकृति हम चिल्लापोंको नहीं सुनती। वह तो हर एक सत्य आवेपकको एक रात उहती है—मेरा अनुगमन करो। “राजा करे तो न्याय” प्रकृतिमें जो देखो वही नियम है। यदि वहां नियम और अनियमका मिश्रण दिखाई पड़ता है, तो यही समझिये कि प्रकृतिके नियम वैसे ही हैं। विन्डेड-युक्त प्रवाह भी परस्पर विरोधी-सा मालूम होता है, किन्तु प्रकृतिने हमारा अनुमोदन किया है। एक ही एलेक्ट्रॉन कण हो और तरंग भी, यह भी परस्पर विरोधी मालूम होता है, किन्तु प्रकृति न सदा केवल सर्प गतिको पसंद करती है, न मड़न-बुढ़ाणको। प्रकाश तरंग है, किन्तु क्वान्टम् सिद्धान्त पतलाता है कि उसके प्रितरणमें सिर्फ अविच्छिन्न प्रवाह ही नहीं पाया जाता, बल्कि बीच-बीचमें रुक-रुक चलनेवाले फीज्यारेकी भांति प्रकाश बबे हुए मुझे (= क्वान्टम्) में निकलता है।

इस तरहके नियम अनियम मिश्रित वादको देखकर कुछ बूढ़े लोग बुढ़के बूढ़े शिष्य मुझकी तरह गोल उठते हैं—अच्छा हुआ, बूढ़ा नियम वाद भर गया, अब हम जैसा चाहेंगे वैसा करेंगे। और, यह भा कि चूंकि प्रकृतिमें नियम नहीं है, इसलिए उसके वास्ते एक नियामककी जरूरत है।—वर भगवान् है। सोचिये—यदि प्रकृतिमें नियम है, इसलिए

एक नियामक ईश्वरकी जरूरत है, प्रकृतिम नियम नहीं है, इसलिए एक नियामककी जरूरत है। इसका कहते हैं—“गाय भी हूँ, बच्चा मा हूँ।”

प्रकृतिके विरोधि-समागमनाल स्वरूपका जब तक थाप समझनेकी कोशिश नही करेंगे, तब तक यराय ऐसी गलती करते ही रहगे। मनुष्यमें स्वतंत्रता माहै, किन्तु दार्शनिक परमार्थकी नाप-तोला म नह। मनुष्यमें परिस्थिति, आनुवाशिकताकी परतंत्रता भी है, किन्तु दार्शनिक परमार्थके अयम नह। मनुष्यप्रकृतिका बदलता है, परिस्थितिको बदलता है। आनुवाशिकतामें बगअर परिवर्तन होता रहता है, और कभी तो ऐसा बड़ी जुदानका परिवर्तन जाना है, निमम वह वनमानुषस मानुषकी जेटिमें छलांग मार देता है—इने हा जाति परिवर्तन कहते हैं। हम सादस-सम्मत भविष्य-कथन भी कर सकते हैं, और भविष्यकी कम योजना यनाअर ठीक फल पर भी पहुँच सकते हैं, किन्तु यहाँ भी प्रकृतिने अपने क्वन्तम्, अपने अण तरंग, अपने विच्छेद-युक्त प्रवाहकी नीतिको छोड़ा नह। और गला कसरर दम घोटनेका प्रयत्न नहीं किया है। लदनम इस साल कितने आदमी मोटरसे दनकर मरगे, इसे वहाँकी कौंटी-कौंसिल (कापौरशा)का दस-यद्रह मालका हिसाब—माटराकी सख्या, यातायात-सचालनम सुधारका मृत्यु-मर्यापर प्रमान आदि—देरअर उतलाया जा सकता है। हाँ, वह मर्या परमाथ सख्या नहीं होगी, बल्कि व्यवहार या प्राधिक मर्या होगी। व्यवहार मर्या व्यवहार-परिमाण प्रकृत और प्रकृति पुनाके लिए पयाप्त है। हाँ, दार्शनिकाल लिए यह पयाप्त नह। है, इसनिष्ठ उनका दिल छोटा रहा करता है। एक बात और, मृतकासी मर्याके तारेमें सच्चा भविष्य-कथन उसे माना जाता है, जो कि पटनाके उहत नजदीक ह। और साथ ही प्रकृतिने एक और सुमीता िना है, वह मनुदायरूपेण इस मर्याके प्रकाशनको पसद करती है। अरकी साल भगवान्दास मोटरसे दबेंगे या नहीं, इसके लिए उसने ठीक आरस्तूके ईश्वरकी भाँति

अपना ही अतिमित्र गरा है, जो कि उसके लिए गर्वकी बात है, यद्यपि यही मान इन्द्रके लिए भारी बान्हा बनना होना । जातिपी भविष्यत्-वचाओं की बात छोड़िये, वह सा दीव्य है, और भारतीय सिद्धांतों का छाड़िये, चिनकी मनाया मना प्रत गाग्न टीलके “कल्याण” वाशां ले रग है, और जय तय हमारे “विशाल भारत” जैसे नागरिक भी उसमें पुष्पके मागी धानक लिए लालावित हो जाते हैं ।

प्रकृति परमाथ तर्क प्राणिक मूल्यको पथंद करती है । स्वाम, सापक्षता, कण तरंग, रिच्छेद-युग प्रसाद और विरुधि-समागमना अहर्निश देखावाला साईंस भी उतनसे मनुष्ट है । यह दोनों चरम पथको पथन्द नहा करता—ज उमे यथसाद, जगद्गद काय साग्नसाद पथंद है, और नहा काय-कारण नियम युक्त “परम स्वतंत्र न सिंग पर कोई”, अथवा आनस्मिक घणोमाली घणाश्रमे बना सत्कार ही ।

परमार्थकी जगह यह “प्रायिक” मूल्यना सिद्धान्त आधुनिक साईंसमें भारी महत्त्व रखता है ।

६ प्रायिकता^१

परमाथ अश्ल, नित्य मान, निरी मृत गतिशून्य जगत्म मिल सक्ता है, जिसकी कल्पना दार्शनिक भले ही कर सकें, किन्तु उगना अस्तित्व कदा नहा है । परमार्थमानके बिना परमार्थ मूल्य भी दार्शनिकों की कल्पनाम ही रथा वा सक्ता है । सारी दुनियाका व्यवहार—चाहे साधारण किमानको ले लाजिये अथवा इन्के लापरों दिखे तरुको ताप लेनेवाले साइंस बेत्ताओ ले लाजिये, सनके नाप, सनकी तोलना मूल्य प्रायिक ही है, परमार्थ नहीं ।

आइये सानार उदाहरण लेकर देखें—

^१ Probability

हम बहुत शुद्ध मापनाली जरीय लेते हैं । जिसमें तापमान आदिना अक्षर अत्यन्त कम पहुँचे, इसने लिये हमारी जरीय काचकी है । आज हम ग्वेत नापते हैं, कल और परसा भी* । मैं अपने दास्तोना भी कहता हूँ, कि आप भी माप लें । हम सभी पूरी सावधानी रखते हैं कि जरीय, त्रिफान, नापी कही गलती न होने पाये । किन्तु, जब मैं एक दर्जन दिनाङ्गी अपनी नापियोंको मिलाता हूँ, तो वहाँ पर दिग्गद पडता है । दोस्ताङ्गी नापियाङ्गी मिलाता हूँ, तो वहाँ भा अन्तर पडता है । हमारे सामने मुश्किल आती है—किसको सच्चा मानें किसका नहा । कुछ दोस्त दार्शनिकाङ्गी तरह राय देते हैं, जब आपकी नापियाँ आपसमें नहा मिलती, न हम सभीकी नापियाँ आपसमें मिलती हैं, तो सब गलत है, कोई परमार्थ सत्य नहा, हमलिये इन्हें छोड़ दें । हम सभी दार्शनिक नहा हैं, और फिर मैं क्या इस दार्शनिकके कहनेसे अपने सेतङ्गी छोड़नेवाला हूँ । हम अपनी नापीके अङ्कोंको फिर मिलाते हैं, देखते हैं उनमें पर जरूर है, किन्तु उनमें कुछ मख्यायें ऐसी हैं, जो कि अकामी एर ग्रास सीमाके भीतर हैं—जहा सबसे कम और सबसे ज्यादावाली मख्या ६७ २४६ और ६७ ३२७ विस्वासी (धूर) हैं, वहाँ अपिनाश मख्यायें ६७ ३१६२, ६७ ३१६३, ६७ ३१६४ की भाँति कुछ सीमाआके नीच होती हैं । हजारो नापियोंके करनेपर भी हम देखेंगे कि नापीना परिमाण सभी एक गही होता, किन्तु वह एर रास सीमाके भीतर ही ज्यादा मिलता है । जो नापी सबसे ज्यादा इस सीमाके भीतर आती है, हम उसे ही प्रमाण मानते हैं, अथवा ६७ विस्वासीसे ऊपरके दशमलव अङ्कों नगण्य समझ छाड देते हैं । जा रात यहाँ जमीनकी नापीके लिये हैं, वही दूसरी वारीय नापियोंके रासेमें भी समझें । नगी आँखासे न दिखलाइ देनेवाले अणुआ, परमाणुआको जब हम अणु मापन यत्रसे नापते हैं, तो यहाँ भी यही बात पाते हैं, इसीलिये साइसम यत्र मानी हुई बात है कि परमायतया निश्चित मापपर पहुँचना असम्भव है । बाल विपरिट

मशीनम इस्तेमाल होनेवाता गॉल—गोनिचा—की नापी बहुत ठीक होनी चाहिये क्योंकि उसके ऊपर मशीनकी उपयोगितामें कमी बेशी हो सकती है, लेकिन वहां भी परमार्थ मापकी उम्मीद नहीं रखी जाती और १/१०,००० इंचकी कमी बेशीको नहीं लिया जाता, और चितनी नापिया आपसम इतनेका अन्तर रखती हैं, उद्द गुद्द माना जाता है। माईस मरथी नापनाले औजारोंका और गरीबीम जाना पड़ता है, किंतु वहाँ भी परमार्थ नाप नहीं मिला करता, इसलिये १/१,००,००० इंचकी कमी बेशीको नहीं लिया जाता। किमी किसी मशीनम १/१,००० इंचकी कमी बेशी होपर भी उसे गुद्द माप मानते हैं। लकड़ीकी मशीनम १ ३२ इंचकी कमी-बेशीवाले माप भी गुद्द हैं।

जानना कैसेसे स्पष्ट है, कि हमारा धारा नाम प्रायिक परिमाणको शुद्ध, सत्य मान लेनेपर चन जाता है, उसे छोड़ हम किसी परमार्थके पाठ नहीं दीड़ते फिरते और न दार्शनिक क दिमागके सिवाय उठना नहीं पता है। दुनियामें चितने दिखान होते हैं, सब इसी प्रायिक मापको न लकर चलते हैं। लकड़ी लोहेके कारखाना, मोटर एरोप्लेनकी रनावट, इनका लापस स्थित तन नापनेवाली दूरगान-भागो मापक आदि यन, प्राणशास्त्र तथा रसायनशास्त्रमें व्यवहृत होते सूक्ष्म नाप तोलवाले यन तथा निमाय, कृषिकी योजनाका हिसान, ग्रहण आदि बतानेवाले-व्योक्तिप गणित, दीरानी पौद्धदारी अदालत तथा कानूनम व्यवहृत होवाले परिमाण मेंसे चाहे जिसका ले लीजिये, सभी जगह प्रायिक मापको शुद्ध माना जाता है, और परमार्थ मापको अस्मभय नममा जाता है। जो बात अस्मभय है, उसके न जाननेका अज्ञान नहीं रहा जा सकता, इसलिए ज्ञानकी सीमाना विस्तार करते करते हम परमार्थपर नहीं चरम प्रायिकता पर चन पहुँच जाते हैं, ता हम जानकी चरम सामापर पहुँच जाते हैं। उनका आगेकी आशा रखना दुराशा मान है, और उसका वस्तु जगत्से का सगंध नहा है, इसे हमें हमेशा ध्यानम रखना होगा।

ख. सत्य असत्यका ज्ञान

१ सत्य

सत्यके बारेम हलके दिलसे नट दिया जाता कि वह एन, अद्वितीय है। किन्तु क्या यह बात वास्तविकतापर निर्भर है? पूँजीपति और कामदारके लिये यह परम सत्य है, कि मजदूर और किसान उसके लिये काम कर, और अपने हाथसे उठाने जो उन्हें दे दे उमीद सतुष्ट रह। इस मार्ग से हटना नमकहरामी—असत्य मार्ग—को ग्रहण करना है। तिरुत्तमलेके श्रुति, पाडीचरीके मुनि, के जगतगुरु तथा एनीवैसट—‘लोगो’ उनकी आत्माको शांति प्रदान करे—के १२ अर्हत् और अर्हतियासे लहर गली-कुचेमे डोलनेवाले छोटे मोटे सिद्ध महात्माआ तक सभी सेठ, महागजा, नवार श्रीष्ट इस सत्यकी पुष्टि अपने आशीर्वादसे करत हैं। फिर यह सत्य परम सत्य छोड़ और हो ही कैसे सकता है, क्यादि ऐसे स्वार्थहीन निकालदर्शी ब्रह्मलीन महापुरुषाको क्या पछी है जो असत्यको आशीर्वाद देते फिरें। यत्रपि यहाँ हम जरूर कहगे कि और जगद्गुरु धर्मकीर्तिके शब्दोंमें “निबन्धजताम यथा (व्यभिचारिणी) को भी मात करनेवाले” कुमारिलभा ऐसे सिद्ध-ब्रह्मलीन महात्माआके बारेम यह घोषणा करना, सत्यसे बहुत दूर नहीं है।—

“वाणीकी असचरताके हेतु (राग, द्वेष, मोह) दोष पुरुषा मे मौजूद रहते हैं।”^१

भारतके किसान, मजदूरके लिये सत्य यही है, कि जो कमाये उसका पहले गानेका हक उन्हें होना चाहिये, जो नहीं कमाता उसे या तो भूना मरनेके लिये तैयार रहना चाहिये, अथवा कमानेवालोंके सामने दान

१ “जयेद् धाष्ट्येन वधनीम्”—प्रमाणवार्तिक १।६६७

२ “गिरा मिथ्यात्वहेतूना दीयाणां पुरुषाभयात्।”—वही १।२२७

निफालापर हाथ पसारनेके लिये। तूनेना कमाइ भाग्य भगवानकी देनके नामसे यदि हटाल न सकती, ता सभी चोरो डकैतानो जेलोसे गहर निफाल देना चाभिये।

सत्य ज्ञान

वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है, कि वास्तविक ज्ञान आदर्शमीनी पत्रके भीतर है। वास्तविक ज्ञान हम उसे ही मानते हैं, जिसका आधार विद्यमान भौतिक वस्तु है—ऐसी वस्तु जिसकी सत्ता मनुष्यके ज्ञान या कल्पनापर निर्भर नहा है। सक्रिय, स्थीर, वास्तविक मनुष्य और वस्तुमत् भौतिक (मानव मस्तिष्क) गद्य श्रधों (पदार्थों)के मन्त्र तथा उनकी एक दूसरेपर होनेवाली क्रिया प्रतिक्रियाश्रुको ज्ञान कहते हैं। जब तक गद्य पदार्थोंके वस्तु सत्ता होनेका स्वीकार नहा करते, तब तक उसके मन्त्र तथा क्रिया प्रतिक्रियाकी सम्भावना नहीं, फिर ऐसी अवस्थाम जो ज्ञान होगा न वास्तविक नही अवास्तविक होगा, अतएव वह ज्ञान नहा, अज्ञान मात्र होगा।

फिर वास्तविक कहेंगे, वस्तु निर्भर ज्ञान कभी पूर्य नहा होता, वह प्रमथा अपूर्य रहता है, अपूर्य ज्ञानको प्रमाण नहा माना जा सकता न प्रमाण उमी जानना हो सकता है, जो पूर्य है। इसका उत्तर यह है कि पूर्य ज्ञान या आपकी परिभाषामें जिसे परमार्थ ज्ञान कहते हैं, उसका कहा पना नहा, क्योंकि आपके हा कथनानुसार न वही इन्द्रियाँ पहुँच सकती हैं, न बुद्धि। ऐसा परमार्थ ज्ञान निफ श्रद्धावश ही माना जा सकता है। सत्य ज्ञान यही है, जो कि वास्तविक—वस्तु निर्भर—है। सभी सत्य सापेक्ष हैं। साइय और सभी मानवाय ज्ञान लगातार बदलावा रहता है, इसलिये ऐस सत्यसे वे-सत्यना ही रहता श्रच्छा है—यह सदेहवाद, निराकारवाद, विज्ञानवाद, श्रद्धावादकी श्रोरसे कहा जाता है, और उनमेंसे कितने लो यहाँ तक क् आते हैं कि 'सत्य'को वस्तु ही नहीं है। ये सभी वाद कमी मत्वको नहीं पा सकते, अथवा हाथम आये हीरेको परगनीकी उनमें शक्ति

ही नहीं है। यह वैज्ञानिक भौतिकवाद ही है, जो जानता है कि सापेक्षम कैसे परमाथ और परमार्थम कैसे सापेक्ष सत्यको पाया जा सकता है। लेनिन्का कहना है—

“आप कहेंगे, सापेक्ष और परमार्थ सत्यका यह (आपका बतलाया) भेद स्पष्ट नहीं है। मैं उत्तर दूँगा कि नापी स्पष्ट न होने पर भी, वह साइस का मुदा, मुन, काठमारा मतवाद मननेसे बचा सकता है। लेनिन साथ ही यह इतना स्पष्ट है कि भ्रद्वावाद, अज्ञेयवादके किसी छापेको (साइसके तौर पर) रखने, और उसे ह्यूम तथा कांटके (—शकराचार्य, विवेकानन्द, रामतीर्थको भी शामिल कर लीजिये) के चेलोंके दार्शनिक विज्ञानवाद तथा बाजीगरी बननेसे रोक सकता है। यहाँ (दोनोंके बीच) मामा मौजूद है, किन्तु उसे आपने नहीं देखा। और न देखनेके कारण प्रतिगामी दर्शनके काचडमे गिरनेसे अपनेको नहीं बचा पाया—यह (सामा) है वैज्ञानिक भौतिकवाद और (शून्यवादी) सापेक्षतावादकी सीमा।”

और एन्गल्सके शब्दोंमें—

“इस बातसे घबड़ानेकी जरूरत नहीं कि आज जिस ज्ञानकी अवस्थाम हम पहुँचे हैं, वह उससे ज्यादा पूर्णताको नहीं पहुँची है, जो कि इससे पहिले थी। अभी ही बहुतानिस्तृत (ज्ञान) सामग्री जमा हो गई है, और कोई आदमी जो किसी एक साइसमें विशेषज्ञ बनना चाहता है, उसके लिये इनका अभ्ययन बहुत ही अमसाध्य कार्य है।”

हर शास्त्र शास्त्राम अनुप्यमा पान कितना बढ़ चुका है, और हर रोज कितनी तेजीसे बढ़ता जा रहा है, यह हमारे भारी सन्तोषकी बात है। चूँकि ज्ञान पूर्ण नहीं है, उसमें वृद्धिकी राखर गु जाइश है, इसलिये उसकी वृद्धिको हम जहाँ छोड़ रहे हैं, हमारी अगली पीढी उसे वहाँसे आगे ले जायेगी। यह देखकर हाथ पर सिर धरकर रोना बुद्धिमानोंका काम

नह । है । ज्ञानमें यदि पूर्णता—जिससे आगे और काद वृद्धि नहीं—हो जाय, ता विश्वनी गति बन्दार हा जायगी, गुणात्मक-परिवर्तनमें नये-नय गुणा, तद नद वस्तुआना उद्वन होता बन्द हा जायगा, और प्रगतिशील, सचीय, नव-नय विनमित विश्वनी तगह वद अचल, मुदा, फोमीन-सा रह जायगा ।

ज्ञानकी प्रामाणिकता—रखते रहते ज्ञानकी प्रामाणिकता 1¹ होगी, य² शका फूल है । मार निरव ब्रह्मांडमें बदलती चीं ही माग काम कर रहा है । यदि याप बन्देगाले न होने तो माता या पिताके र³ अड तथा धीयं-कीट ही रह जाते । किसी भी अरस्थामें इस परिवतन, इस वृद्धिको रोकर देनिये । जीयकीट सिपं छेछे इंच उडा होता है, माता कारज अड इंच इच, दोनों मिलोपर भी मानव प्राणी सिपं छेछे इंच का होगा, वजन कितना होगा, यह इससे जानिये—सताह भरका मानव-गम सिपं छे रचीना होता है । छे मासका १ सेरके करीर । पैदा होोपर स्वरथ उच्चा २० इंच (डेढ हाथसे थोडा ऊपर) उडा और ३॥ सेर भारी होता है, जो उन्ते-वदते पंद्रह वषरी आयुम ६२इ इंच (३॥ हाथ) लना और १ मन ८इ सेर भारी हा जाता है । आप सोच सकते हैं, जिस तरह शरीरकी वृद्धि ररनेकी कामना गुम कामना नहीं करी जा सकती, वैसे ही ज्ञानकी वृद्धि ररनेकी कामना भी वही कर सकते हैं, जिई मानव जातिना श्तिपी नहा कहा जा सकता । ज्ञानको दिनपर दिन बन्दे दो, अगली पीन्का पिछलो पीन्ी द्वारा खूब पराजित होने दो—“पुनादिच्छेत् परान्यम् ।”

“सोचनेकी शक्ति रखनेगाले कितने ही अत्यंत अपूण मनुष्या द्वारा निचारकी पूर्णता प्राप्त होती है । असीम सत्यका दाग रखनेगाला पान कितनी हा सापेक्ष भूलें करके प्राप्त होता है ।”¹

¹Materialism (by Lenin)

“मनुष्यका ज्ञान (अपनी वृद्धिमें) सरल रेखाका अनुगमन नहीं करता, बल्कि वह एक ऐसी वक्र-रेखाका अनुसरण करता है जो कि सदा वृत्तके बननेकी कोशिशमें रहती है—अर्थात् घूमघुमौआ चक्करमें। इस वक्र रेखा (घूमघुमौआ चक्कर)की हर एक टुकड़ी—हर एक खंडको (एक छोरसे) एक स्वतन्त्र, पूर्ण सरल-रेखामें बदला जा सकता है, जो कि सावधान न रहनेपर ‘दलदल’ (शासक वर्गके वर्गस्वार्थ द्वारा हटानाये धमवाद में) गिरा देता है।”^१

इसलिये सापेक्ष सत्यसे बाहर जाना, और बंदकर जगलमें टहलने जाना है। वस्तुतः जो कुछ परमार्थ सत्य है, वह सापेक्षके भीतर ही है।

३ प्रयोग और सिद्धान्तकी एकता

दूसरे दर्शनों और वैज्ञानिक भौतिकवाद (साइंसके अधिनायकत्व) में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वैज्ञानिक भौतिकवाद एकमात्र प्रयोगकी ही सत्यकी कसौटी मानता है, उसके लिये कोई ज्ञान तब तक सत्य नहीं है, जब तक कि वह प्रयोगकी कसौटीपर पक्का नहीं उतरता। इसीलिये स्तालिनका कहना—“सिद्धांत प्रयोगके बिना बाँझ है।” भगवद्गीताको क्रिमी समय कर्मयोगकी बुजी माना जाता था। तिलकने जेलमें बंद रहते वक्त गीतापर अपनी प्रसिद्ध पुस्तकको इसी मतलबसे लिखा था।—स्तिना ही आगे बढ़ने पर भी तिलक योगसे आगे नहीं जा सके। और वस्तुतः किसीकी तारीफसे नहीं बल्कि वृत्त अपने फलसे पहिचाना जाता है। गीताने कर्म-युद्धके लिये तो लोगोंको उतना तैयार नहीं किया, जितना कि उस युद्धसे पनायनके लिये। वैज्ञानिक भौतिकवाद वास्तविक अर्थमें कर्मका दर्शन है। “दार्शनिकोंने सिर्फ जगत्की व्याख्याको परिवर्तित किया, किंतु हमारा काम है खुद जगत्को

^१ Lenin On Dialectics

परिवर्तित करता है।"— मास्को इग बरामे वैज्ञानिक भौतिकवादके मगझी तिराल पर रण दिया है।

मास्को वैज्ञानिक भौतिकवादकी पैरी अरुधाम रिक्वित किया, उसके उपर हा जाता है कि मास्कोका जोर प्रयोगपर हाता ज्यादा करो है। किन्तो ही लागति पड़ या गुन रणा है, कि मास्को पुस्तकानि इना गदता था, इगता उप उग्रक विचार पुस्तकपर फीड़ा से हागे। एगन शक न्द' मास्को नदाम दृष्टिभूतियमके पुनरालयम फासी मगप देता था, उगन पदगे परिपक्व विश्लियाणि क तागनल, तथा बेगता, हाइनेगवा, और योन निद्वानागलयाके पुस्तकानागोमें भी वह पुस्तकाप्ययनम दक्षिण रहा था। किन्तु, चद समभगा कि मास्को अपने क्रान्तिकारी सिद्धान्तपर शिषे पुस्तकानि पाकर पडुंग गया, रिल्कुल गलत रचाल है। मास्कोवाद १९१७ ई० की रूसी क्रान्तिमें पैदा हुआ, और तहां १८६७ ई०म कापिटलके निम्ने जाने बाद क्रमता जम १८४८ ई० से पहिले हुआ था। कापिटलके रूपम मास्कोवादका जम तहां हुआ, बल्कि उसके रूपम वह प्रौढ़ताकी प्राप्त हुआ। मास्कोवाद (वैज्ञानिक भौतिकवाद) का जन्म उन सपनोंमें हुआ जिनमें मास्को और एन्गेलसने जराचदेहीके साथ स्वयं नियातन रूपसे भाग लिया। १८४८ ई०की फ्रेंच-क्रान्तिमें, पहिलके क्रान्तिकारी आन्दोलनाम ही नर्शा बल्कि खुद उस क्रान्तिमें, उहोंने भाग लिया था। एन्गेलसने जमनीके मजदूरोंक गरख विद्रोहमें क्रान्तिके हथियारचद छिपाहीके तौरपर भाग लिया था, और मास्कोने उसके गद फौलातमें रहते सरय-मंचालाम ऐसा जसदस्त भाग लिया, कि गजनमेंटने दो बार उपपर फाँसीकी सजावाले देश छोड़का मुफदमा चलाया। यूरोप म सयन फैलावाले मजदूर-विद्रोहका आरंभ मास्को ए गेटसने अपनी "कमूनिस्त घोषणा"से किया था, और इस विद्रोही याचना जन्त मास्को सम्पादित जर्मन दैनिकपर "नोये राइनिश् जाइटुट्ट" (हामजुग) ने अन्तिम अंकके साथ १८५०में हुआ। १८५० ६४ ई० का समय है, जिसका बहुत

सा हिन्दा मार्क्सने बृटिश म्यूजियमकी पुस्तकोंके अवलोकनमें लगाया। किन्तु यह वह समय था, जब कि युरोपमें किसी जगह सुते तौरसे क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाया नहा जा सकता था, और मार्क्सको जहाँ पैर रखनेकी जगह नहीं मिल रही थी। इन चौदह वर्षोंमें भी मार्क्स सिर्फ बृटिश म्यूजियमकी पुरानी जिल्दोंकी धूल ही नहीं चाटता रहा, बल्कि उस समय भी उसकी फलम क्रान्तिकी शक्तिको याचिन दृष्ट और उद्देश्यापी जनानेमें लगी हुई थी। अमेरिजन दैनिकपत्र "न्यूयार्क ट्रिब्यून"में भारतकी राजनीति-सामाजिक अवस्था तथा क्रान्तिकी संभावनाके बारेमें मार्क्सन जो लेख लिखे थे, वे इसी समय (१८५२-५३ ई०) में लिखे गये थे।

१८६४ ई०के बाद हम मार्क्सको फिर सर्वप्रथम देखते हैं, और तबसे १८७२ ई० तक वह अंतरराष्ट्रीय मजदूर आन्दोलनका नेतृत्व करता है। उसके बाद अपने जीवनके अन्तिम समय (१८८३ ई०) तक मार्क्स फिर फ्रान्सके काममें लगता है, लेकिन साथ ही उसकी नजर उस समयके मजदूर आन्दोलनसे नहीं हटती और भविष्यकी मजदूर-क्रान्ति तथा मजदूर शासनकी गहरी नाज रखना तो उसका एकमात्र काम हो जाता है।

इतना कहनेसे साफ है, कि वैज्ञानिक भौतिकवादका रास्ता गीता या वेदान्त के पलायनवादसे बिल्कुल अलग है। वह जगत्को छोड़ भागना नहीं चाहता, बल्कि जगत्को बदलना चाहता है। जगत्के बदलानेमें कर्म—संघर्षकी जरूरत है, उसमें भुँदी श्राँपें नहीं, खुली आँखाकी जरूरत है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद सिन वाद-प्रतिवादोंका सवाद है, चांद इस बात पर हम ध्यान देंगे, तो मालूम होगा कि वह क्यों इस प्रयोग और सिद्धान्तके समन्वयको चाहता है। वैज्ञानिक भौतिकवादमें दो धाराएँ हैं एक द्वैतवाद, दूसरा भौतिकवाद। द्वैतवाद हेगेलके विज्ञानवादमें था, और भौतिकवाद सत्रहवीं अठारहवीं सदीके याचिन भौतिकवादमें। याचिन भौतिकवाद भौतिकवादकी भौतिकता—वास्तविकताको स्वीकार करता था, यह उसका मजबूत पहलू था। किन्तु उसमें किसी गुणात्मक-

परिवर्तन, किसी विच्छेद्युक्त प्रवाहरी गु जाश न थी, इसलिये वह विश्व की पूरी व्याख्या नहीं कर सकता था, न विच्छेद्युक्त-परिवर्तन—क्रान्ति—के लिये वह अनुरूप प्रदशक हो सकता था। इस भौतिकवादसे निकल उलटा हेगेल का द्वि-आत्मक विज्ञानवाद बर्कले और शकर जैसा ठूँठा, कृत्स्न, एकरम विज्ञानवाद (विज्ञान = ब्रह्म सत्य और सब भूठा) नहीं था। हेगेल उसे क्षण-क्षण परिवर्तनशील, वृद्धिपरायण मानता था। विश्व उसके लिये हर क्षण "है" नहीं, "हो रहा है" है। यह हेगेल के द्वि-आत्मक विज्ञानवादका मजबूत पहलू था। विदु, दूसरी ओर वह विश्वकी भौतिक सत्ता—वास्तविकता—को इन्कार कर अपनेको अस्तुवादी मानित करता था। ऐसा वाद न अस्तु-सत् सिद्ध हो सकता है, न जीवनके किसी काममें आ सकता है। मार्क्स एगेलसो अपने वैज्ञानिक भौतिकवादमें पुराने भौतिकवादकी भौतिकता और हेगेल के द्वि-आत्मक विज्ञानवादकी द्वि-आत्मताको लेकर अपने दर्शनका विकास किया।

वैज्ञानिक भौतिकवादके अनुसार, विज्ञानवादी गलत रास्ते पर है, जब कि वह समझता है कि सत्यको हम सिर्फ अपने मस्तिष्क—मन—के मानमतीके पियारसे निकालकर रख सकते हैं। भौतिकवादी भी गलती करता है, यदि वह इस बातको नहीं समझता, कि सत्यको हम अपने मस्तिष्ककी सहायतासे प्राप्त करते हैं। मस्तिष्क हमें सिद्धांत तक पहुँचाता है, भौतिकता हमें प्रयोग पर नजर रखनेके लिये मजबूर करती है। यही नहीं, निम्न तरह भौतिकता मस्तिष्ककी जननी है, उन्ही तरह सिद्धान्तकी प्रसवभूमि प्रयोग है। बल्कि यह कहना चाहिये कि सिद्धान्त प्रयोगका सार-संग्रह है। आखिर सिद्धान्त हैं क्या? अनेक व्यक्तियों, अनेक पीढ़ियोंके लाखों प्रयोगों-तजर्कोंका ही परिणाम। इसीलिये सिद्धान्त को अपने जीवनदायक प्रयोगके विरुद्ध जाना नहीं चाहिये। प्रयोगसे विरुद्ध सिद्धान्त सिद्ध अन्त (सिद्ध परिणाम) ही नहीं रह जाता। पिताके पुत्रकी भाँति उसे पहिले अपने पिताको ढूँढ़नेकी जरूरत पड़ेगी।

इसलिये जिस वक्त हम यह कहते हैं, कि सिद्धान्त और वादकी एकता आवश्यक है, उस वक्त यह भी ख्याल रखना चाहिये कि प्रयोग मूल है, सिद्धान्त उसकी शाखा है।

वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टिसे प्रयोग और सिद्धान्तको किस तरह लेना चाहिये, इसे हमने मतलाया, यहाँ यह भी देखना है कि प्रयोग और सिद्धान्तके आपसी सिद्धान्तको दूसरे किस तरह मानते हैं।

१ कुछ लोग कहते हैं—प्रयोग और सिद्धान्तमें कोई समन्वय नहीं हो सकता। प्रयोग इस गदी, स्थूल, असत्तय मायावाली दुनियाकी चीज है, सिद्धान्त चिर सत्य शिव सुन्दर है, दोनोंका क्या वास्ता! ये आकाशचारी हारिल हैं, जो “अज्ञेय”के हारिलकी तरह भी हार माननेके लिये तैयार नहीं, और उन्होंने सदाके लिये भू परित्यागकी कसम खा रखी है।—हाँ, लेकिन मानसिक तौर ही से, इसकी परीक्षा लेनी हो, तो ऐसे किसी हारिल—हस—परमहस—तत्त्वज्ञानी—ब्रह्मलीन—महात्मा—का एक रसगुल्लेके प्राद कीनेमें लिपटे दूसरे रसगुल्लेको पिलाकर देर लीजिये। सिद्धान्त—दर्शन—ज्ञान ही सब कुछ है, उससे अतिरिक्त कुछ है ही नहा, इस तरहके विचार रखनेवाले लोग, मफ्तीनी भाँति अपने भीतरसे (किन्तु अपने भीतरको भी स्वीकार करना तो उनके लिये मुश्किल है, इसलिये शर्मसे) सिद्धान्तका निमालते हैं।

२ दूसरे लोग हैं, जो प्रयोगसे एकदम इन्कार तो नहीं करते, किन्तु वह सिद्धान्तकी ही प्रधान मानते हैं। उनकी दृष्टि (= दर्शन)में सिद्धान्त प्रयोगकी सन्तान नहीं है, वह एक स्वयंभू तत्त्व है। इनके लिये साइस का सारा परिधम, सारी सफलता कोई महत्व नहीं रखती, क्योंकि वह स्वयंभू होनेका दावा नहीं कर सकती। ऐसे मतवालोंके लिये प्रयोगका याश्रित होना निम्न कोटिके लोगोंके लिये छानता है, सिद्ध, महर्षि इससे ऊपर हैं। गाँधी जैसे विश्वके प्रति अपार नरुणा दिग्बलानेवाले,

महा अत्माकी आत्मा गुन वि लिये का लगाये रहोमहा महामा
ज्मी कागिम है ।

३ तीसरी तरहके लोग प्रयोग और सिद्धान्त सिगरी प्रधान न
नहीं देते । यह तरह, न्यायाधीश बनाता जाते हैं ।—भौतिक विश्व
समस्त है, इसलिये प्रयोगकी प्रधानता कित्ते ही जा मन्नी है । सिद्धान्त
और प्रयोग दातां हा बल्गता है, इसलिये ठाममे किसीको प्रधानता नहीं
देनी चाहिये ।

इसमे रात नहीं, हा तीनों तरहकी विचार-सरणिशाम देगनेम
अन्तर है, किन्तु वस्तु-सत्की दृष्टिसे देगनेमर मालूम होगा, कि सपका
उद्देश्य है भौतिकता—वास्तविकता—का विरोध करना, और मनुष्यको
जगत्-परिवर्तनक कामस हटाकर जागृकी टपाली व्याख्याम लगाना ।
इन सिद्धान्ताम प्रभु, शोषक-का क्यो इतना आनंद अनुभव करता है,
इसके सारेम ज्यादा कहोसी गरुत नहीं,—“जात न जाह विशाचर
माया” कहना काफी नहीं है, क्योंकि विशाचर-भायाका समभना
उतना मुश्किल नहीं है, यदि आपके पास प्रोग का मौजूद हो ।

सिद्धान्तकी कसौती प्रयोग है, इसे सारे गाईठ मानते हैं । वस्तु
सादस और अ-साईसरा भेद ही इसीमे है कि साइस किसी एक भी
अपने सिद्धान्तकी प्रयोगकी कसौती पर कसाम गफलत नहीं करता ।
प्रयोगके दौरानमे साईसवेत्ता एक सिद्धातकी मूलक पाता है, किन्तु उसे
“अल्दाम”, “देवी याग” “आराश-बागी” “आत्मारि आवाज” कह
कर अपनेको और दुनियाको यह भोगा देना नहीं चाहता । यह प्रयोगशाला
में उसकी बड़ी बारीकीके साथ और अनेक बार परीण करता है । सभी
परीक्षाआम एक-ना ठीक उनरनके बाद यह या ता उसे इस तरह
सममाण स आकार लेवके रूपमें लिखता है, चिमम दूसरे भी प्रयोग
करके उसकी सत्यताको जान सन, अथवा अपन सिद्धान्तकी सच्चाईको
सडिया, हाइ जहाज, दूरदर्शनक यंत्रोके साकार रूपमें उपस्थित करता है ।

वस्तुतः, प्रयोग और सिद्धान्तके सम-वयके बिना कोद साइस-सत्रधी यापिकार नहा हो सकता । साधारण प्रयोगामे सीपते तथा मानसिक तौरसे विक्रमित करते भारतीय निद्धान् ईसाकी पाँचवां छठा सदीमे वहाँ पट्टुच गये थे, जहाँ आधुनिक-वेगानिक-युग आरभ होनेकी काफी कारण सामग्री मौजूद थी, किन्तु भारतीयने अल्वरूनी-द्वारा उद्धृत आर्यभट्ट (४७६ ई०) के निम्न सूत्रका भुला दिया और वह पिछट गये—

“सूर्यकी किरणें जा कुछ प्रकाशित करती हैं, वही हमारे लिये पर्याप्त हैं । उनसे परे जो कुछ है, और वह अनन्त दूरतक फैला हो सकता है, लेकिन उसका हम प्रयोग नहा कर सकते । जहाँ सूर्यकी किरणें नहीं पटुचता, वहाँ इन्द्रियाकी गति नहीं, और जहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं उसे हम जान नहीं सकते ।”

साइसके क्षेत्रमें तो इम तरह प्रयोगकी प्रधानता न समझ भारतीय आगे ही नहीं बढ़ सके, बलिक आर्यभट्टके युक्ति प्रमाण द्वारा सिद्ध भू भ्रमणको न पतिया फिर वही पुराना चर्चा—तालमीके भूकेन्द्रक मौग्मडलके विश्वासको—चलाते रहे । दर्शन और मनोविज्ञानके क्षेत्रमें धर्मकीर्ति (६०० ई०)के बाद काइ प्रगति नहीं हुई । धर्मकीर्तिके तीक्ष्ण विश्लेषण शक्तिका गृह्य भी उसकी प्रयोगवादिनामें है ।—यद्यपि धर्मकीर्ति यागाचारके विज्ञानवादके सिद्धान्तको पुष्ट करनेकी भी कोशिश करता है, किन्तु वह वेगारखी टाली रात मालूम होती है, क्याकि वैसा होनेपर “अर्थ-क्रियाम जा समर्थ है वही परमाथ सत् है” इस तरह सक्रियताको परम मत्यका मुख्य लक्षण न पताता । सिद्धि, समाधि, परचित्त ज्ञानकी बातें पिछले महायुद्धके बादसे भारतमें फिर उसी तरह जोर पकडने लगी हैं, तब तरह यूरोपमें इसी समय प्रेत निधा, किन्तु भारतीय सिद्ध-योगी लोग

१“अल हि द”

२“अर्थक्रियासमर्थं यत् तदन परमाथमत्”—प्रमाणवार्तिक

इन बातों का प्रथम कठरी, या मुग्ध भवति कि सामा ही दिग्दर्शन चाह है। जब तक उनका उगम उद्भव प्रयोगकी कमीद्वारा क्या नहीं तक, तब तक उनकी भक्ति प्रकृत्या नहीं हो पाती, तब तक उनका मन एक पुर बाजीराने 'जादू' से बढ़कर नहीं है। किन्तु जो विद्वान् प्रसिद्ध है, उसके वैज्ञानिक भौतिकवादी इन्कार के उद्भव से है। वैज्ञानिक भौतिकवाद तब भी मानते हैं, कि हमारे ज्ञान की सीमा का अन्त है, जो मान्य था हमसे ज्यादा बढ़ी रहेगी, हजार वर्ष पहले ज्ञान के समस्त सामान्य ज्ञान का तलवार उगम मालूम होगा। मनुष्य के अंदर निहित शक्ति की कार्यवाही पर सामान्य ज्ञान का अन्त शतशतों में बढ़ना के युगान्तर उपस्था करीबाने प्रयोगसे शुरू हुए हैं। किन्तु इसका अन्त से दूर परीरे-जय-नर भी यदि अज्ञान विद्वानों का मान्य चाहें, तो यह उनकी अतिरिक्त-व्यक्त होगी। यदि धार समझा है, कि धार या धारके मितव पास कोई ऐसी शक्तुत मनो-वैज्ञानिक शक्ति है, तो उनकी परीण प्रयोगशालामें हर तरहके सिद्धांत सिद्धांत सार्वभौमिकताके सामने करवाइये, एक-द, पेंटा, केमरा, नाप-नोल किमी मानव करवाइये नही—भौतिकी अति क्या? यह कह कर ज्ञान वैज्ञानिकी का शिष्ट मंत्र कीर्तिय, कि हम प्रगतिदि नही चाहते। धारक केने-नहीं बानी-फान नियम तरहका प्रोबर्वाडा धारक बारम्बर कर रहे हैं, यह मान्यताके नियम अत्यन्त अतिष्ठ है। इसलिये, यदि आप इस शक्तिको "राज्ञगर" का एक जरिया नहीं बनाना चाहते हैं, तो अस्वच्छ है, आप या तो उसकी गलती मममें प्रयत्न उस साईस सम्मत एक तरफ—विद्वान्त—साधित करें।

(१) कर्मनी और कथनी—विद्वान्त और प्रयोगकी एकताका मतलब यह भी है कि आपकी कथनी जैसी है, यदि करनी वैसी नही है, तब वह कौड़ीकी लीन है। बाद ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती एक शिवालय बनाते हैं, तो इसका मतलब है कि सर्वव्यापी, गवान्तयामी, ब्रह्मक स्वरूप पर उनका विश्वास नहीं है। और फिर जब उस शिवालेके ऊपर विजली

गिरनेसे बचानेके लिये लोहा गाड़ते हैं, तो इसका अभिप्राय यही है कि यदि मनुष्यने पहिलेसे मायधानी नहीं की, तो शिबके शासनमें रहनेवाली विनला अपने मालिकके ही घरको नष्ट कर देगी। फिर तो ब्रह्मसे ज्यादा सर्वशक्तिमान् आपका साइस है, जो कि विजलीका एसी नाजायज हस्त से रोक सकता है। यहाँ फरनी साफ कथनीके विरुद्ध जाती है।

यूरोप—विशेषकर अमेरिका—में कुछ दार्शनिक ऐसे हुए हैं, जो अपनेको उपयोगितावादी कहते हैं, और प्रयोगको भी मानते हैं। वस्तुतः साइसके युगमें—जब कि सभी जगह प्रयोगों और प्रयोगशालाओंकी जयदुन्दुभी रच रही है, यह हो नहीं सकता था कि दार्शनिक-क्षेत्रमें उसकी गूँज न पहुँचती। किन्तु इन उपयोगितावादी दार्शनिकोंकी वही मिसाल है—जो चमकता है, सभी सोना नहीं होता। उनका सिद्धान्त है “वह सिद्धान्त या विश्वास ठीक है, जो काम करनेवाला (उपयोगी) होता है।” किन्तु इसकी मददसे धर्म, और भूत प्रेत, जादू मतलबों भी आप ठीक साबित कर सकते हैं। कुमारी मरियम् माईके चमत्कारोंके वस्तु-से सफ़ार उदाहरण मार्से (फ्रान्स) के पहाडीगले गिरम रक्ते हुए हैं—लगभग वैशाखी लेमर आये थे, माइकी कृपासे चगे हा गये, उनकी वैशाखी डगी हुई है, समुद्रमें जहाज टूट रहा था, माइके भक्ताने “राहि माइ ! आदि माई !” की, जहाज सही-सलामत किनारं पहुँच गया, उन्होंने कृतज्ञतासूचक लेख माइके मरान (गिज) में खुदना दिया आदि आदि। उपयोगितावादी दार्शनिक कहते हैं, चूँकि इसमें आदमीके निर्बल हृदयको दृढ़ता मिलती है—यह ठीक काम करता है—इसलिये यह विश्वास (सिद्धान्त) ठीक है। उनके सिद्धान्तके अनुसार यदि चोरका सिद्धान्त ठीक काम करता है, तो वह भी ठीक है—और इसीलिये तो उनके दिलमें पूँजीवादी लूटके लिये “भाधु-साधु” के शब्द हैं। इन “प्रयोगवादियों” के दर्शनके दो मुख्य उद्देश्य हैं, एक तो प्रचलित वैयक्तिक या सामाजिक आचार नियमोंके दोषोंकी आरसे आँस मूँटकर

दशन, युक्ति, प्रयोगके नामपर उनका समर्थन करता, और इस प्रकार प्रगतिवादी धर्माचार्यों तथा शोषणका उपाधान बनाना, दूसरे पक्ष परता का प्रयोगका प्रर्थ करते हैं—जिसे आप श्रमणी गुर्यात करौ लग पड़े। “उपयोगितावादी” प्रत्येक आदमीके लिये “सत्य”, “निश्चय”, “वास्तविकता” का प्रलय प्रलय मानत है, यह उपयोगितावाद प्रयोगवाद का नाम प्रच्छन्न विज्ञानवादको छुड़ाकर और क्या है ? यह वाद श्रमणालू जैसे योग विज्ञानवादीके दादसे पत्र नहा रखता। उसने भी अपने प्रजातंत्र में मनुष्यकी मनमानी तीन जातिर्यी बनाद र्थी। उनके गारम जय यह सवाज हुआ, कि लोग क्या किसीको दाशानिक समझ उर गमाजका हस्तानता मान लेंगे। श्रमणालूने कहा—उर मतलाना होगा कि मनुष्योमते कुछ सोनेकी धातुके बने हैं, कुछ पीतलके, कुछ लोहेके। लेकिन सब तो मिट्टीके पत्रसे बने हैं, फिर उर सोनेका माननेवाला कौन शरारतका श्रमण मिलेगा !—बचपनसे ही ऐसा प्रावेर्गोडा करते रहनेसे लोग इते मा लेंगे। यह मानकर जय उमक अनुसार श्रमणालूका प्रजातंत्र नाम करने लग पडेगा, तो सोनेपीतलके आदमीवाला सिद्धान्त सदा सारित हो जायगा। निश्चय इस तरहके “प्रयोगवाद”को भारतमें तो बहुत जोरसे रत्ता गया है। श्रमणालूके सोनेपीतलवाले आदमियोंका प्रजातंत्र तो धरतीपर कभी कायम नहीं हुआ, कि तु हिन्दुओंके ब्रह्माग्ने मुँह-बाहु उर पैरसे पैदा होनेवाली वर्ण-व्यवस्था या “मरण-व्यवस्था” का साथ तो प्रत्र भी हमारे मिरपर सवार है। यह व्यवस्था (सिद्धान्त) नाम कर र्णी है, इनम सदाह करनेकी गुजादश कहाँसे हो सकती है, त्र कि आप हर स्थेशनपर सि दू-वानी, मुसलमान-वानी देखते, हर ध्वाद शादीमें श्रीगस्तव सरे-कन्या श्रीगस्तव-सरे-वरको ठीक क्रिये जाते पाते हैं। चूँकि यह “मरण-व्यवस्था” साढे तीन हत्तर बपसे नीर तौरसे काम कर रही है, इनलिय यह फोलतारस पुता नहीं, बल्कि

... है। इसकी और सम्बन्ध ... भावने ...
 ... के पास ... "मामि ... भाव" ने छप ...
 ... की है, उनके ...

(2) गौरीबायी 'प्रयोग' - हाँ, वेत "प्रयोग तारी" भारतम

... और ...-...। नही "प्रयोग प्रयोग"-
 ... भारी ...। भी उपवासकी तरह
 ... नीलीनी चालते छोड़ जाती है, सड़ सेटानी उगापंथी नेता
 ... आ घेरते हैं, और कभी कभी वृत्त शर्मगटरा आसा
 ... है (यदि कहीं एक छोटे शिल्पीना बाल भी नहीं
 ... उसकी प्याह नहीं) इसलिये उपवास महामिद्वार है।
 और समुद्रि प्राधा ?- उगध महा महागिद्वान्त होनेमें किसी
 ... हो सकता है ?-गहाँ हजारों भाता मद्गद् हो "रूपनि गन्ध
 ...। पतितपाप गीताराम" पर रह हाँ, शहरमें प्राथनाही उदर
 ... ही रिता दिगापरा घाटे, बिना दुग्गी पीटे, हजारों आत्मी ईदाले
 ... प्राणादम जमा हो जाते हाँ, उस प्रार्थनाको काम न बनाने
 ... कौन कहेगा ? प्राध ता जप इता अस्थी तरह काम कर ...
 ...-सिद्धा त-... यही पर सन्ता है, सिद्धा सिद्धा ...
 ... है। और प्राणा प्रधार ? इसके सिद्धान्त हैं-... काम ...
 ... (धामाताज) होने-के वारेमें ... तो सेंट
 ... से पूछ लीजिये। ...
 भारी काम हुआ विदेशी कपटा-वस्तुएं-... विद्वाने
 स्वराज्य तो साध भरम नहीं टपका, सिद्धा सिद्धा ...
 मिल मातिका भी अपनी नेकनी...
 प्रादी भोजकर देना चाहा ...
 ही हाँ, पर उन्होंने महात्माओं ...
 -एक बार कुछ समयके लिए ...

वैज्ञानिक मौलिकवाद

महात्माआफे चर्याम बैठनेका सीभाग्य मिला होना, तो निश्चय ही उनकी यह सजीर्णता दूर हो गई होती। हाँ, मगर चर्या अभी वहाँ टिमटिमा रहा है, जहाँ कि १९२२ ई०म था—आज युद्धने तीकर चर्यामें पीनके चर्याने निय चर्या-मर्या भी यदि टँडर मर्या गरा हो, तो उम्मीद है गाँधीजी युद्धनी मर्यायनाका यास्त्रियक मूल्य समझने हुए इसे सफलता नहीं र्याल करंगे। लेकिन चर्यानी भारत और दुनियामें निदा करनेवाली मिलें आन भारतम एनच्छ्रम रग्य कर रही है। चर्या ही क्या? गुड़नी भाँ गाँधीजीने अपने प्रयोगका एन श्रम रना रगा है। गाँधीजी एन मर्यानु गुड़ रग्य करना चाहते हैं, किन्तु “डूबा वश रगीरना अपने पूत रमाल”, यदि चर्याके मारे वह वर्य पूग होने पाये तब न? अपने कप्यासा गादीमें भी सस्त्रा कर मिलवालान उधर गादीनी रेड मार दी थी, और श्रम पिछले दम वर्यामें गुड़ यर्यने लिये उससे भी बुरा नाम पिडला डालमिया माराभाइ-रगाजकी चीनी मिलोने कर दिरनाया। वेचारे गाँधीजी डाल डाल चलना चाहते हैं, किन्तु चर्या पात-पातपर उड़ रहे हैं, वरें तो क्या कर?

गाँधीजीके और प्रयोगा—ब्रदाय्य, रकरीके दूध, मिडीनी चिरित्ता हाथका कुटा पिना चावल आग, मशीन-वायफाट आदि पर भी मुनना चाहते हैं? यर सारे प्रयोग परी तीरमें सफल हुए हैं, किन्तु ठीक उतसे उभटे अर्थमें, जिसम कि गाँधीजीने उरगा प्रयोग करना चाहा। ब्रह्मचर्य के नाम पर चिर्याम तले इतना भारी र्येधरा है, कि अर्याँ पाइ-पाइकर देरने पर भी कुड पल्ले पडनेमाला नहीं। रकरीके दूधका प्रयोग गोमेंना प्रयोगका एक अमिच श्रम है, यर्याि इसके समझनेमें मेर मित्र श्रीराम शमानो कुछ देर लगी थी, और उराने इस प्रयोगके इनचार्न सेठ जसुना लालकी प्रार्यनाको पहिले टुरा दिया, लेकिन सबेरेका भूला शामको यदि घर लौट आये, तो उसे भूला नहीं कहते। फिर शमानीसा मी ती अपना प्रयोग है—उरने मैरुडों चर्या और दिरनाका शिमार किया है,

किन्तु अपने नामकी भी शम न की, और शिकारी रामके सारे प्रयोगाको ताफ पर रख, शरर या मृगके मधुर मासकी कभी एक पट्टी भी दाँतके नीचे नहीं दगाई, आखिर गगना निशान कभी चूरु सकता है—
 “सफल पदारथ एहि जगमाँहा । करमहीन नर पावत नाहीं ।” अपने गमने तो जिस दिन मनुस्मृतिमें पग कि शरर मासके पिंडसे पितर वर्षों तृप्त रते हैं, उसी दिन निश्चय नर डाला कि पितृ-शृण्यसे उन्मृण्य होना होगा, और “जो इच्छा करिहौ मनमाँटी । हरिप्रताप कहु दुलभ पाटी ” धरैल-वनैल दोनसे अनेक बार तपण हो चुका है ।

हाँ, तो गो-सेवाके बेड़ेको रीच हीम छोड़ना अच्छा नहीं है । इस सेवाके प्रयोगमें नियम हैं—भँसका कम्प्लीट (सालहो आना) बायकाट करना होगा, मारी गायका चमडा नहा इस्तेमाल करना होगा, दूध घी आदि सिर्फ गोरस होना चाहिये, भँसरस नहा, अज-रसमें शायद महान् प्रयोगशास्त्रीको कोई एतराज नहा है । शमाजी पहले भड़के, पीछे ठीर हो गये यह बतला चुका हूँ, किंतु अपने रामकी भडक अभी तक बदस्तूर सानिक बनी है । बकरीके गायनाट न करनेसे मुझे तो बहुत खुशी हुई । बकरीके दूध घी से तो अपने रामका इतना ही वास्ता है कि यदि एक बूँद भी अजा दुग्ध जिहा पर पड जाय, तो छै महीनेका खाना भी पटम न रह सके, इस गारेम मैं गाँधीजीकी हिम्मतकी सराहना करता हूँ । खुशी मुझे इसलिये हुई, कि भारतमें मांसके नाम पर जो मास हर जगह सुलभ है, वह बकरीका ही है । अच्छा ही हुआ जो यहाँ हमारा गाँधीजीका समझौता हा सकता है । किन्तु, खुदाकी कसम, भँसका गायनाट मुझे पसद नहा आया । यह नहीं कि लंकाके बौद्ध-ग्रहस्थोके घरका बना लका(मिच)-परिपूण महिप मास मुझे याद आता है, बल्कि इसकी तहमें मैं दूध घी जैसे प्राणिज आहारना भी बायकाट कर “लौटा घासपातकी आर” के नारेको छिपा हुआ समझता हूँ । हाँ गो-सेवा यदि और व्यापक बनाई जाय और उनमें सांप्रदायिकता या हिदुत्वकी संकीर्ण दृष्टि हटाकर

हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, नास्तिक (कम्युनिस्त) तथा भारतीय, चीनी, युरोपीय आदि अपने अपने धर्म, अपने अपने विचार, अपनी अपनी रीति-रिवाज अनुसार भाग लेने दिया जाय, तां गांधीजी, थारा वस्त्र जीने, हम सभी गो सेवान्वी बननेके लिये तैयार है ।

(गुहा-मानवका नारा)— गांधीजीके प्रयागवादनसे मित्राणी चिन्तित्वाके मारेम दो शब्द जरूर कहन हैं, मेरे मित्र आनंद कीसल्यायान अपने पत्र (५ मार्च १९४२ ई०) म लिखा है “(पृष्ठ) २६, २५ इजेक्शन ले लेकर धर गये । थय मरे इहोमे प्राकृतिक चिन्तित्वा (मित्राणी)के प्रयोगीना परीक्षण करने जा रहे हैं । आप ता आपरेशन इजेक्शनवादी हैं ।” गांधीजीका जादू बुद्धने एक योग्य शिष्यपर भी चल गया । ईसा रमणीय विरोधि-समागम है—कहाँ बुद्ध और उनका शिष्य जो भक्तिकी परछाई भी छूना नहीं चाहता और सिर्फ योग—ज्ञान—को अपना पथ प्रदर्शन बनाता है, और कहा गांधीजी तिनका भगवाणकी भक्ति ही। जीवनमें सबसे बड़ा स्वल है ! कहीं बुद्ध और उनका शिष्य जो क्षणिकवाद—निष्ठानी दुनियाको सदाके लिये नष्ट हो जाने पर हर वक्त विलुप्त नई दुनियाके बनो—को मानते हुए, पुरानीका बुद्धके शब्दोंमें “तं तुतोत्थ लब्भा”^१ कह उसे उसके भाग्य पर छोड़, नहीन उत्साहसे तनीन पथपर चलनेके लिये तैयार, और कदा गांधीजीकी सनातन चिरस्थविरा दुनिया, जिसम लौट जानेकेलिये उनका पुराना नारा “लौटो गुहा मानवकी ओर”^२ । रैर ! हम वैज्ञानिक भौतिक वादियोंके लिये विरोधि-समागम विलुप्त स्वाभाविक वाद है । हा, हम इतना जरूर कहेंगे कि क्षणिकवादी और आत्मवादका महान् आचार्य बुद्ध,

^१ “वह यहाँ (पिर) कहीं मिलनेवाला है ।”

^२ Back to cave man

द्वन्द्वनादी भौतिकवादके महान् आचार्य मार्क्सकी भाँति ही सैकड़ों शताब्दी में अपने समयसे बहुत दूरतर देखा था। मिट्टी पानीकी गाँधी आन्दोलन शाही चिकित्साको जरा ढाड़ हगार वषके इस बूढेने सामने ले चलिये तो। “श्रमण सुकुमार” होनेपर भी यह मार्क्सकी भाँति लदन तगरीम नहा रहता था, जिससे कि उसपर ‘सागरिकताका भूत सवार’ कहा जा सके। साथ ही यह गाँधी और आन्दोलनसे चिकित्सा शास्त्रपर कम अविचार नहीं रखता था, यह उसने उन पुस्तकोंसे सिद्ध है, जो महापद्म (विनयपिटक)के भैषज्य-स्कंधके बड़े भाइजके ४१ पृष्ठों^१में लिखे हुए हैं, और जिसके कारण ही बुद्धका दूसरा नाम भैषज्य-गुरु पडा। इसी भैषज्य-गुरुकी प्रेरणासे प्रशासनने अपने ही राज्यमें चिकित्सालय नहा बनवाये, वल्कि मृगानी राजाआके राज्य (मिथ, सीरिया आदि)में भी औषधियोंके रगीने लगाये, और उसके कुछ शताब्दियों पीछे हिन्दी-चीनमें तो साकायदा सार्वजनिक दातव्य औषधालयोंका सँता बँधा हुआ था। निश्चय ही भैषज्य-गुरुके इन चिकित्सालयोंमें वेद्य लोग सिर्फ मिट्टी पानी लेकर नहा बैठे रहते थे, वल्कि यदि उन्होंने शब्दवादके घोर विरोधी प्रयोगवादी बुद्धके आदेशके अनुसार बीचकी शताब्दियोंमें और तरकीब न की हो, तो भी वहाँ “भैषज्य-स्कंध” की निम्न औषधियाँ तो जरूर थीं— रीछ, मठली, मौस, सूअर-गदहेकी चर्चवाली दवाइयाँ २, लुदी अदरक, बच, अतीस, लस, नागरमोथा और दूसरी जड़ (मूल) वाली दवाइयाँ, नीम, कूट, पटोल आदि कणायवाली दवाइयाँ, तीम, कूट, तुलसी, कपासी आदि पत्तेकी दवाइयाँ, मिडग, पीपर, मिर्च, हरा-बहेरा आँबला आदि फलोंकी दवाइयाँ, हांग, तक आदि गाँदवाली दवाइयाँ, सामुद्रिक, काला, सँधा, वानस्पतिक आदि नमकवाली दवाइयाँ और चूर्ण

^१ देखा “विनयपिटक” (मेरा अनुवाद) पृष्ठ २१४-२५५

का दवाइयाँ¹। सूत्रर आदिकी चर्चा सिर्फ मालिशके लिये ही नहीं राने क लिये विधान की गई है, इसका भी रयाल रगिन्य, और बुद्धकी इस रानको देखिये—फिसी ग्यास रोगसे पीड़ित एर शिष्यने “सूत्रर मारनेके स्थान पर जातर कच्चे मांसरा ग्याया, कच्चे खूनको पिया, और उसरा वह रोग शान्त हो गया²।” यह रात मालूम होने पर रीसवां सदी ईसवां के गांधी राबा और उनके समर्थन आनन्दरागा क्या उपदेश देते, यह ग्याप सुन चुके हैं। और आनसे पच्चीस सौ वर्ष पहिले बुद्धने इसी पुण्य भूमि भारतकी पुगीत पुरी धारस्ती³म क्या रुहा था⁴—“भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगमें कच्चे मांस और कच्चे खूनकी।”

बुद्धकी औपधि-सूचीमें मिट्टी-पानीरा नाम नहीं पावेंगे, रल्लिक वहाँ उपरोक्त औपधियोंके थलाना मिलेंगी—अजन (सुमा), अजनदानी, सलाद, सिरका तेल, तथा नारुमें नस डालनेकी नली (इजेकशन नदी, यह वात ठीरु है¹), सिरगरेटकी भाँति पीनेकी धूमबत्ती (“अनुमति देता हूँ धूरेंके पीनेकी²”), धूम-सोफी (पाइप), बातका तेल, दवामें मय। जो कुछ आपरेशन इजेकशन उस समय था, उसे मिट्टी-पानेवाले दादाके गुरु (बुद्ध) लोकरुल्याणके लिये स्वीकार करते थे, इसीलिये तो उ हाने निम्न चिकित्साआरा भी समर्थन किया—स्वेदकर्म (पनीना निरालना), सींगसे खून निकलवाना, मालिश और दवा, मलहम-पट्टी, सप चिकित्सा, पिप चिकित्सा। और आपरेशन ? सुनिये शाक्यसिंह के सिहनादका—“अनुमति देता हूँ शास्त्ररुम (आपरेशन) की।”³ बाला “गांधी रागानी जय⁴” बोलो “भदन्त आनन्द कीरुल्यायनकी

¹“विनय पिटक” (हिन्दी) पृष्ठ २१६ २१७। ²वहीं पृष्ठ २१६।

³वतमान सहेट महेट, जिला गांडा-वहराइच।

⁴देखो “विनय पिटक” पृष्ठ २२१।

जय", और इसीलिये बोलो "शाक्यसिंहकी क्षय", और उसके दिखलाये राम्तेसे सीधे वैज्ञानिक भौतिकवाद तक पहुँच जानेवाले "महानास्तिक राहुल साकृत्यायनकी क्षय ।"

हाँ, तो गाँधीजीके "लौटो गुहा-मानवकी ओर"के नारेम पसकर भोले भाले आनंदजीकी क्या गत हुई, यह तो आपने देखा लिया, अब इस नारेके बारेमें एक बात जरूर रहनी है। बुद्ध कालवादी थे—देश-काल व्यक्ति देकर वह अपनी सम्मति देते थे। वह हवामें तलवार चलाना पसंद नहीं करते थे, वही बातें उनके इस छोटेसे शिष्य राहुलकी भी है—हाँ, शिष्यताका अधिकार मैंने छोड़ा नहीं है, बल्कि "मेरे उपदेशित धर्मको वेड़ेकी तरह जानो, वह पार उतरनेके लिए है, ठोकर ले चलनेके लिए नहीं" ^१—उनके इस उपदेशका पालन करते हुए ही मैं क्षणिक (=द्वद्वात्मन) अन्-आत्मवादसे द्वद्वात्मन भौतिकवादपर पहुँचा। हा, तो यदि आप गुहा-मानवकी ओर लौटना चाहते हैं, तो पहले गुहा मानव बनिये। कपड़ानो दूर फेंकिये, नाई अस्तुरेको पास पटकने न दीजिये, ऐसे जगलमें जाइये जहाँ सेठ मेटानियाँ क्या, आजकी सम्यताका जरा भी चिन्ह न हो—लोहेका वाष्प फल तक भी जिनमें पाया जाय, ऐसे आदमियोंकी छायाको भी पासमें पटकने न दीजिये।—गोया पहले अपने साथ गुहा-मानवका वातावरण बनाइये। स्वास्थ्यपर वातावरणका भारी असर होता है—गुहा मानववाले किसी घोर जगलमें जानेसे आपके मृतुतसे राग स्वयं मिट जायेंगे, यह मैं मानता हूँ। लेकिन आहार में अपने मित्र आनंदजीके बारेमें तो अच्छी तरह जानता हूँ, कि वह मेरी तरह अका-व फासुरको हजम कर जानेकी क्षमता नहीं रखते। और पाठ्य चिकित्सार्थ गुहा-मानवका आहार सबसे ज्यादा जरूरी चीज है। आहारके लिये गुहा मानवके पुस्तकेका बतलानेका मतलब है, अपने एक ऐसे मित्रसे हाथ धोना, जिसके बिना दुनिया जीवन भरके लिये नीरस हो जायगी। फिर

^१"मन्त्रिमनिकाय"

ऐसे नुस्तेजा रताना तो दूर, उसे यदि वह दूसरेसे लेकर भा प्रयोग करना चाहेंगे, तो मैं उनकी नाराजगीकी पराह ३ कर सारी सामग्रीको न नदीके नापदानम फेंक दूँगा । मुझे विश्वास है, मैं अपने भूले मित्रको रास्तेपर लागेम सफल हा जाऊँगा । हाँ, यदि गांधीजीकी फलाहार मडली—जिनम टांगियांकी संख्या ही मरमे ज्यादा है—चादे, तो वह नुस्तेजा हर उक्त हाकिर है । उमने तजबसे उह मालूम हो जायगा कि वह सचमुच आदमीको उस जगह पहुँचा देगा, जहाँ कि आज वह गुहा मानवकी दुनिया पहुँची हुई है ।

तृतीय अध्याय

मूढ विश्वास

चेद-प्रामाण्य कस्त्रचित् कृत्वाद् स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेप ।
सन्तापारम्भ पापहानाय चेति ध्वस्तप्रह्वाना पच लिंगानि जाड्ये॥”
—धर्मकीर्ति^१

वैज्ञानिक भौतिकवाद एक प्रकाश है, जिसके पा जानेपर मूढ विश्वासोंका परखना मुश्किल नहीं है । लेकिन, यह भी खयाल रखना चाहिये कि उपरोक्त पक्तियाँ आजसे साठे तेरह सौ वर्ष पहले नालन्दाके एक महान् प्रोफेसरने इसी खयालसे लिखी थीं कि उसके देश भाड “अकल-मारै हुय्रीकी जडताके” इन पाँच चिह्नोंको अपने ऊपर न लगाने देंगे । किन्तु, परिणाम क्या हुआ ? जडताके पाँचों चिह्न पैर तोड़कर भारतके कोने-कानेमें बैठ गये , और धर्म-कीर्तिके ही शब्दोंमें “विश्व व्यापक तम” का राज्य हो गया । यह भारतीय कान्ट + हेगेल अपने लिये उस समयको अनुकूल नहीं समझता था, तभी तो उसने अपने महान् ग्रन्थ (प्रमाण-वार्तिक)को समाप्त करने हुए लिखा था—

“मत्त मम जगत्यल घसदशप्रतिपादक,
प्रयास्यति पयोनिधे पय इव रजदेरे जराम् ।”

^१ प्रमाण-वार्तिक १।३४३ “(१) वेदका प्रमाण मानना, (२) किसी (ईश्वर) को कृत्ता कहना (३) (गंगादिमें) स्नानसे धर्म चाहना (४) (छोटी-बड़ी) जातिकी यातना अभिमान (५) पाप नष्ट करनेके लिये सताप (उपवास आदि) करना—ये पाँच अकल-मारै हुय्रीकी जडताके चिह्न हैं ।”

(मर विचार जगत्में 'अपने' लायन ग्राहकको न पा समुद्रके जननी भौति अपने गात्रमें ही जाग्य हो जायेंगे ।) और सचमुच भारतमें धर्म कीर्तिना अन्तिम संस्मरण आत्मन साठे गावसी वष पहल उाके निरोधी भीरुपके मुगसे मुना गया था—

“दुरायाध इव धमकीर्तिं पथा तदत्रावहितो भाव्यमिति”^१

किन्तु, आज भारतके मानसजादी धर्म-कीर्तिका ग्याग करके लिये तैयार हैं, और यह अपनी मातृभूमिको एक नहीं, हजार गाधियां, राधा रूपाणांन होते भी ध्वस्त प्रशोकें आश्रयके पाँचाँ चिह्नसे मुक्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गये हैं। इस काममें यह अकेले नहां है, उन्कि सारे निरवकी एक जयदस्ता कमठ सेना उनके साथ है।

क धर्म और धार्मिक तत्त्व

मनुष्यके मूठ निरवागां—जड़ता चिह्न—को धर्म-कीर्तिने पाँच भागोंमें बाँटा है, किन्तु आग भद्र निरवागांकी नद पसलें भी तैयार हुई हैं। इन सारे मूठ निरवागांका राइन करना न इस छोटी-सी तीन अश्यायक पुस्तिकामें मुमकिन ही है और न उगनी जरुरा ही है। गालदाके एक दूसरे शोकेंवर (शांतिदेव)के शब्दांन काँटासे उचोके लिये सारी धर्तीमें चमड़ेसे ढँकनेकी जगह अपने दाना पैरांनो दाँन सेना काफी है।^२

१ धर्म बेकार

धर्मके लिये ईश्वर अनिवाय सहचर नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं। बौद्धधर्म धर्म होते भी ईश्वरको नहां मानता, एक हद तक जैन भी इस बातमें बौद्धाका साथ देते हैं। किन्तु, हिंदुआ, ईसाइयां, यहूदियों, पार

^१ “एवमनस्यएवसाध”—“धर्म-कीर्तिका माग दुरायाध जैसा है सो यहाँ सावधान रहना चाहिये।”^२ मोधिचयावतार १।

सियां और मुसलमानोंके लिये इश्वरके बिना मन्तव्यना ख्याल भी मुश्किल मालूम होता है, जैसा कि विदेशमें एक मुसलमान सज्जनके इस उद्गारसे पता लगता है, जिन्होंने कि जिंदगीमें पहले-पहल बौद्धधर्मकी इस विशेषता को सुनकर कह डाला था—‘या अल्लाह, यन् भी कोई मन्तव्य है, जिस में अल्लाह ही फेलिये जगह न हो !’

हेगेलके शिष्य फेरेबाख्सी पुस्तक “ईसाइयत-नार”^१ में जिक्र पहले हो चुका है। इसमें उसने इसाइयतमें नमूनेके तौरपर स्वयं उसके द्वारा एक तरह सारे इश्वरवादी और कुछ हद तक दूसरे धर्मोंका भी विश्लेषण किया है। फेरेबाख्सी एक जगह लिखता है^१—

“धर्म मानवको अपने आपसे मिलग करता है। वह (मनुष्य, धर्म द्वारा) इश्वरको अपने प्रतिद्वंद्वीके तौरपर अपने सामने रखता है।—इश्वर वह है, जो कि मानव नहीं है, मानव वह है जो कि इश्वर नहीं है। इश्वर और मानव द (परस्पर विरोधी) छोर हैं, इश्वर पूणतया भावरूप है, (वह) सभी वास्तविकताओंका योग है, मानव पूणतया अभावरूप है, (वह) सभी अभावोंका योग है।”

आगे फेरेबाख्सी फिर कहता है^२—

“धर्म पवित्र हैं, क्योंकि वह (मानवकी) आदिम आत्म-चेतना की गायब हैं। किन्तु धर्मोंमें जिस ईश्वरका स्थान प्रथम है—वह स्वतः सचमुच देखने पर द्वितीय (स्थानके योग्य) है, क्योंकि मनुष्यके (उच्च) स्वभावको साकार तौर पर सोचनेके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है, और जो धर्ममें मानव द्वितीय स्थान पर रखा गया है”

उसे प्रथम बनाना और घोषित करना चाहिये। मानवके लिये प्रेम किसी दूसरे (इश्वर)के सन्धसे नहीं बल्कि स्वतः होना चाहिये। यदि मानवके वास्ते मनुष्यका स्वभाव सर्वोच्च है, तो मानवके लिये मानवका प्रेम ही सर्वोच्च तथा प्रथम कानून भी होना चाहिये। मानव मानवके लिये ईश्वर है, यह एक महान् त्रियात्मक सिद्धान्त है, यही वह बुरी है, जिसपर जगत्का इतिहास चक्कर काटता है।”

जमन दार्शनिक फेरेबाखको इश्वरका मानवके स्थान पर बैठना पसंद न आया, इसलिये यद्यपि वह इसका विरोध करता है, तो भी उसकी नम्रता स्वयं धार्मिक भावुकताम पली हुई है। फेरेबाखकी भावुकताको उसके समकालीन मार्क्सवादी फ्रिन अर्थोम लेते थे, उसके लिये एन्गोल्सके इन वाक्यांको देखिये¹—

“वह (फेरेबाख) कभी धर्मको खत्म नहा करना चाहता, बल्कि वह उसे पूष करना चाहता है। (उसके मतसे) खुद दर्शनको धर्मम मिला लेना चाहिये।”

फेरेबाख (१८०४ ७२ ई०)से बोल्टेर (१६६४ १७७८ ई०)का मान इस विषयम ज्यादा साफ है, जो हमना भी चाहिये था, क्योंकि फेरेबाख जहाँ काग दार्शनिक था वहाँ बोल्टेर उन चिनगारियोंका बोलनेवाला था, जो कि उसकी मृत्युके दस ही साल बाद उस प्रसिद्ध फ्रेंच-ब्रान्तिको लानेमें सफल हुई, जिसने दुनियामे स्वतंत्रता—भ्रातृता—समानताका नारा पड़िले-पड़िले बुलद किया। बोल्टेर कहता है—¹

“इश्वरका शासन हमारे भीतर प्रकृतिके हाथों द्वारा नहीं डाला गया है, ऐसा दावा तो सारे मनुष्योंको इसका एक ही समय विचार होता, किन्तु हम ऐसे किसी विचारके साथ नहीं पैदा हुए हैं।”

¹ Ludwig Feuerbach p 43

¹ Philosophical Dictionary (God) 1765

बोल्तेरके शब्दोंको क्रान्तिका आवाहन करना था, इसलिये वह उ० चिनगारियोसे ही लिख सकता था, बोल्तेरको दाद देनी चाहिये कि इकहत्तर वर्षोंनी आयुमें भी वह इन चिनगारियोसे खेल सकता था, निम्न अवस्थाम कि हमारे देशके कितन ही राजनीतिज्ञ तपोवनकी तैयारी करने लगते हैं—गांधी-युगके राजनीतिज्ञोंने गारेमें मत पृछिये, उनके लिये घर और तपोवन दोनों नरार हैं, उस वह सिर्फ अनासक्ति योगपर ध्यान रखते हैं। लेकिन २६ वर्षना मार्क्स धर्मपर कैसे अगारे फेंक गटा था, उसे भी देखिये—

“मनुष्य धर्मको बनाता है, धर्म मनुष्यको नहीं बनाता। यह राज्य और समाज है जो कि धर्मको पैदा करता है। इसलिये धर्मके विरुद्ध लड़ना अत्यन्त-रूपेण, उस दुनियाके विरुद्ध लड़ना है, जिसका आध्यात्मिक प्रभा-मडल धर्म है।

“धर्म (पुस्तकों)में कथित दुःख (नर्क आदि) विलुल वास्तविक दुःखका प्रकाशन और उस वास्तविक दुःखके प्रति विरोध प्रकट करना है। धर्म निपत्में फसे प्राणीकी आह, हृदयहीन जगत्का हार्द (भाव) है, वह आत्महीन परिस्थितियोंके आत्मा जैसा है। वह जनताके लिये अक्षीम है।”¹

हेगेलने विज्ञानवादमें द्वन्द्वात्मकता (द्वैतता) जोड नित्य एर-रस विज्ञान (ब्रह्म)की महिमाको कम कर दिया। उसके शिष्य फेबेराएने “इसाइयत-सार” लिख धर्मपर हमला शुरू किया—यद्यपि यह काफी सहृदयता लिये ही। दर्शनमें फेबेरबावके उत्तराधिकारी मार्क्सने सीधे तीरसे धर्मके किलेपर गोलाबारी शुरू की। धर्मके नरली मुलाम्मेको खोलते हुए उसी लेखमें मार्क्स फिर लिखता है²—

¹ On Hegels Philosophy of Law (Marx 1844)

² वहा।

“धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है, जो कि मनुष्यके गिद तबतक घूमता रहता है, जबतक कि मनुष्य अपने [मनुष्यताके] गिद गढ़ा घूमता । इसलिए [नये जगत्की सृष्टि करोगाले] इतिहासका यह फाम है, कि परलोकके गत्यके लुप्त हो जानेपर इस जीवनके सत्यको ध्यापित करे ।

इस तरह करोग स्वर्गका लड्डा पृथ्वीके लड्डाके रूपमें, धर्मका लड्डन कानूनके लड्डनके रूपमें, देवतादका लड्डन राजनीतिके लड्डनके रूपमें बदल जाता है ।”

लड्डनके महत्व और सीमाको मार्क्स कथनी तकही रखना नहीं चाहता था, जैसाकि वह वहीं आगे निकलता है—^१

“किसी तरह भी लड्डाका इधियार इधियारों द्वारा होगाले लड्डनका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता । [हम] भौतिक लड्डन उलटना होगा, किन्तु सिद्धान्त स्वयं भौतिक बल बन जाता है, जब वह जनताको पकड लेता है ।

“धर्मके लड्डनका अन्तिम पाठ यह है, कि मानवजातिके लिये मात्र सवभेष्ट सत्य है—(अतएव) उन सभी परिस्थितियोंको लवमकर दिया जाय, जिन्होंने कि मानवका एक पतित, दाम, उपतित, घृणास्पद पाणी (बना दिया) है ।”

सभी देशोंका इतिहास, और भारतका ग्रास तौरसे, इस बातका साक्षी है, कि धर्मके लड्डनके मनुष्यका पतित, दाम, उपेक्षित, घृणास्पद बनानेगाला दूसरा कारण नहीं हो सकता । भारतकाय मानवताको छिन भिन करनेमें सबसे जबरदस्त हाथ धर्मका रहा है । कहा जाता है, धर्मका कोई कसूर नहीं, कसूर है स्वार्थी लोगोंने जो कि उसे अपने पापदेके लिए गलत तौरसे इस्तेमाल करते हैं । इसका मतलब यह हुआ, कि कोई ऐका भी जमाना था, जब कि धर्मकी घोरेर रखनेवाले सिर्फ़ नि

^१ वहाँ

स्वार्थी व्यक्ति होते थे। लेकिन इसका पता इतिहाससे तो नहीं मिलता, ऋग्वेदके ऋषियोंसे लेकर अन्तिम ऋषि तुलसीदास तक चले आइये। बाबाके शब्दोंमें इतिहासका पैसला है—

‘सुरनर मुनिनी येही रीती ।

स्वारथ लाइ करहिं सव पूती ।’

रिचने ही लाग मनुष्यताके लक्षणके बारेम कहते हैं—

“आहार निद्रा भय मैथुन च

सामान्यमेतन् पशुभिर्नैराणाम् ।

धर्मो हि तेषामधिनो विशेषो

धर्मेण हीना पशुभि समाना ।’

[आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह (चार बातें) पशुओं तथा मनुष्योंम समान हैं। इनमें धर्मही (एक) अधिक विशेष है (और) जो धर्मसे हीन हैं, वह पशुओंके समान हैं।]

धर्म के ठीकदारोंसे ऐसे ही शब्द सुननेकी आशा थी। किन्तु मैं भी याद रखना चाहिये कि यह नारा सिर्फ भारतके हिन्दुओंका ही नडा है। सारी दुनियाके धर्मराले अ धर्मरादियारा पशु-पदवी देनेमें एकमत हैं। हाँ, लूटके मालकों गोटने वक्त आपसम बह लड जरूर पडत हैं—एक धर्मका माननेवाला दूसरेको नास्तिक, नाफिर कहता तथा दिलसे मानता है। यद्यपि दार्शनिक लोग सदियोंसे अपने मुखकिल्ला—धर्मों—का इमसे महान् अनिष्ट देग सर्वमन्वयकी कोशिश करते आ रहे हैं, किन्तु धर्म आप्तिर तिन स्वार्थोंकी रक्षाके लिये बनाया गया है, वह जब एक ही तरफ न एतताकी बात चल सके। धर्मको मनुष्यका लक्षण माननेवालोंका जवाब देते हुए मार्क्सने कहा था—

“चेतना, धर्म या आप जिससे चाहें, उससे मानन-जातिना पशुओं से भेद कर। लेकिन (मनुष्योंने) स्वयं पशुअग्नि उसी वक्त अपना भेद

करना शुरू किया, जबकि उठाने अपने जीवा-निर्वाहके साधनोंको पैदा करना शुरू किया—अपनी शारीरिक बनामटके कारण उनका यह कदम उठाना आवश्यक था^१ ।

धर्म और अज्ञानके ग्यालको जन्मदात कहनेवाले कृपमंडून ही हो सकते हैं । आत्त मन्थ मानवताका अविभाज्य इश्वरको नहीं मानता ; अत्यंत प्राकृति-अवस्थाम रहनेवाले गुहा मानव भी अपने गुहा चित्रोंमें किसी प्रकार के धर्म चिह्नों नहीं छोड़ गये हैं । धर्मका प्रारम्भ मानवके जीविकात्यादनार्थ समाज बना लेने, तथा भाषाके कुछ विकसित हो जाने पर हुआ, और इसका पूरा विकास तो दासता युग और सामन्त-युगके समय प्रसुवर्गने किया । वस्तुतः धर्मकी सारी कल्पना, उसके देवताओंका निमाण उसी दासता तथा सामन्त-युगके मानव-समाजकी नफल है ।

२. धर्मके नये व्याख्याकार

(१) हिन्दू धर्मकी विशेषता—धर्मकी नई व्याख्या कोई नई बात नहीं है । धमात्माओंने “पचासी बात सर ग्रास पर रखर भी अपना पनाला” वहीं रखा है, तो भी परिवर्तनशील दुनियाके साथ समन्वय करना भा जरूरी था, इसलिये नये व्याख्याकार जरूरी ठहरे, इसी बातका गीताने चालान लेखने इन शब्दोंमें अदा किया है—

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !

अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मा सृजाम्यहम् ।^२

ये सारे नये व्याख्याकार—नई बोतलम पुरानी शराभ भरनेवाले मद्य-बणिक (अथवा अफाम—अहि फेन—व्यवसायी) यही काम करते

^१ German Ideology (by Marx and Engels)

^२ “जब जब धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपनेकी सिर्जता हूँ ।”

हैं, और उचपनमें दी गई मानव-समानकी हथकड़ियों-बेड़ियाओं उमकी यायुके अनुसार उठाते रहना । निरु श्रमी इसपर कुछ ते करनेके पहले चलिये काशीमें निराजनेवाले हिन्दू धर्मके अभिनव व्याखके पास ।— यह मानना पड़ेगा कि उक्त गीता-वाक्यन अनुसार वर्तमान समयमें सयमे जवर्दस्त गोलफेरी—तु वाफेरी—करनेवाले हिन्दू दो ही हैं, भक्ति जगत्में महात्मा मोहनदास कर्मचंद गाँधी (सेठ जमुनालाल बजाज लेन, सेवा ग्राम) और दर्शन-मार्गम सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (सफ्टमोचनके पास, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी) । देखिये सर राधाकृष्णन् क्या पर्मा रहे हैं—

“हर एक जाति अपनी विशेषता, मानसिक भाव, अपनी पास बौद्धिक सम्मान रखती है ।”

मशाल लेकर दूदिये तोपिछले हजार वर्षोंके इतिहासमें दुनियाकी और जातियासे भारतीय जातिमें क्या विशेषता पाइ जाती है—आखिर “वृथा न हाहि देव-ऋषि-वानी”, कृष्णके अवतार हमारे राधा + कृष्ण कोई बात अकल्याणकी नहीं कह सकते । और इस दूढ़नेम आपनों सफल होनेकी जवर्दस्त सभारना हा सक्त हैं, यदि दुनियाकी और जातियोंके जानके बारेम आप बिल्कुल कोरे हों । ‘ विशेषता, मानसिक भाव, बौद्धिक सम्मान’, सावधान, इन शब्दोंका इहा अर्थोंमें मनमें रखियेगा, प्राप्त-पदेश बंदके शब्द सभी रुद्धि-अथवाले होते हैं, उन्हें उन्हा अर्थोंमें लेना चाहिये तिनमें ऋषि महाशय लेते हैं । अथवा कारे इस पेरमें पढ़ने, “सशयात्मा विनश्यति”के डरमें यही समझ लीजिय कि “भारतीय दर्शन” के लेखक नैसा बहुधुत-हाँ, पुस्तक लिखते वक्त तन अमी व्ह सर और बहुदृष्ट नहीं हो पाये थे—लेखक क्यों गलत बालने लगा, जब वह कहता है कि भारतीय दूसरी जातियासे इतना भेद रखते हैं, तितना कि अद्वैत

भोलातापसे उनका नाँदिया, फिर तो उसे सत्य वचन कह गये चटाना ही चाहिये।

और उनकी बहुश्रुततामें आपनों सदेह कैसे हो सक्ता है, भारतकी महिमाम उनमें मुँहसे उद्गार (उदाग) निकला है—

“गौतमकी तुलना है अरस्तूमें, कणादकी धूलसे, जैमिनीकी मुनात से, व्यासकी अफलातूँसे, ऋषिलकी पियागोरसे और पतञ्जलिनी जेनोम।”

धय है भारतमाता, त्रैलोक्यजनी, त्रैलाक्य दमनी, भगवान् राजा कृष्णकी पक्षलौती सुपुत्री, जिसने दाशनिजोंको पैदा करनेमें यूनानकी मात कर दिया। गोलो “भारत माताकी जे”। लेकिन आप लोगोंके चेहरां के देखनेसे दो तरहके भाव प्रकट हो रहे हैं। महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्रकी शिष्य मंडलीकी तो भौंह तनी हुई है, और गुरुजाना ग्याल न हो, तो न जानें वह क्या कर गुजरे। उनका कहना है—इस ब्राह्मण बस-कलकको तनिक भी लज्जा नहीं आइ, जो सोलह कलाभूषण हमारे पदशास्त्री श्रुतिर्षियोंके इन गोमद्वर नीच भ्लेब्ड़ोंके बराबर बना रहा है। किन्तु आर्ट-कालेजके कितने ही छात्र बहुत खुश हैं—(१) पहिले वह हैं जिन्हें पूब या पच्छिमके किसी दाशनिजने कभी पाला नहीं पडा और भगवान्की कृपा उनी रही तो उनकी यह जीवन-नैया अच्छती ही पार निफल जायेगी। (२) दूसरे वह जो माइ बसन्तीके देवफांशी समाजकी मार ग्नाये हुए हैं, उनके लिये महा तामिस्र चाहे पूर्वा हा या पच्छिमफा, सब एक-बराबर है। ये सारे पूर पच्छिमके “महात्मा” (MAHATMA) गण तो हिमालयके उस पारगले तिब्बतके टशील्हुपो मठके पास अस्थित श्वेत परिपद्^२के अपने सदस्य हैं—उसी परिपद्के, जिसने कूटहमी और लालसिंह जैसे महात्मा सदस्यों का जयजयकार आन नातों महाद्वीपों और सातां जातियाम हो रहा है।

(३) तीसरे बह विद्यार्थी जो बेचारे साधियोंके डरके मारे गो-गुरके बगबन चुटिया नहीं रताने पाते । इनके कानम काफी दिनसि मन मन करके मममाया गया है कि चारों वेदानो बिल्कुल कुरानकी तरह ही अल्लामके द्वारा अल्लाह मियाँ—नहीं नहा, थोम् महाराज—ने अपने चार ऋषियाँ—अग्नि, वायु, आदित्य, अगिरा—के पास आजसे १ अरब ६५ करोड़ ५८ लाख ५० हजार ४३ वर्ष ३ मास दिन घटे मिनट सेकंड पहिल भेजा (नाजिल किया) । फिर हमारे वैदिक धर्मके सामने इस्लाम अपुरा कौन होता है ? उसके पास एक कुरान है, हमारे पास चार कुरान (कुरानकी भाँति बेटे मूर्ति-पूजा, और नाना देववादसे मुक्त हैं), उसके पास एक पैगम्बर मुहम्मद, हमारे पास चार पैगम्बर, कुरान १३ सौ वर्षसे दुनियाम आया, हमारे वेद दो अरब वर्ष पुगने—वे उस वक्त आये जब कि शायद पृथिवी भी अभी सूर्यसे बाहर नहीं आई थी । बेचारे ये “वैदिक धर्मकी जय”वाले छान सबसे ज्यादा खुश थे, क्योंकि ऋषि दयानन्दने सारी साइस विद्याओंको वेदसे निकालकर रख दिया था, किन्तु एक साथ उनकी मनके माँह रही—सारे पश्चिमी दार्शनिकोंको यह भारतीय ऋषियोंके चरणोंम नतमस्तरु न कर सके थे । वह काम जिस महापुरुषने कर दियाया, उसे ऋषि-मूर्ति छोड़ दूसरा क्या कहा जा सकता है ? (४) और अन्तम उस छानवर्गकी “विशेषता, मानसिक भाव, अपनी सास बौद्धिक रुझान”की ओर भी एक नजर डालनी है, जो कि सर राधाकृष्णन्को अपना हाट-मांस समझते हैं । वह अपने गुरुके इन स्वरूपी वाक्यामें “गागरम सागर”की उहाउत चरिताथ होते देखते हैं । आज ऋषियोंकी दूर-दर्शिताका उनके ऊपर ज़रूरत सिक्का बैठ रहा है, ऐसा सिक्का जो कमसे कम सृष्टिके सारी दो अरब वर्षों तक तो ब्रह्माके मिटानेसे भी मिटनेवाला नहा है । व्यास (वादरायण)की अपलानूँके समझ बनाना उन्हें भी कुछ खटकता जरूर है, किन्तु वह समझते हैं—गुरुके मुँहसे ये शब्द

सास अभिप्रायसे निकले हैं। साथ ही अपलातूनसी प्रतिमानाल
 व्यास वादरायण (जा सरासर गलत है। वादरायणमें अपलातूनकी
 दार्शनिक प्रतिमाना शताश भी नहीं ग, कहीं मौलिक विचारक
 अपलातून थीर कहीं उपनिषद् कथाधारी वादरायण।) की महिमा वह
 शत्रु समझ सकते हैं, और जब कोई भद्रसूत्रसे निकालकर पढ़ने
 पढ़ने और मुननेवाले सूत्रके जीभ छेदने तथा पिपरो गीने-सालमे नाग
 भरनेकी बात दिग्गलायेगा, तो वह चट कर सकते हैं कि विभ्रात श्रुति
 ने किसी महान् अभिप्रायसे इसे लिखा होगा। और इस तुलनासे कमसे
 कम अठारह पुराणा, अठारह उपपुराणोंका दजा तो अपलातूनके
 "प्रजातन"के परापर हो ही जायेगा। एक बार श्रुति श्रुतियाँको उनके
 परापर "सारित" कर देतेपर अपनी कौसी बात रहती है, जिसे "दिन
 दोपहर" हम सम्य रस्यारके सामने सिद्ध न कर दिखायेंगे। श्रुतियाँ
 श्राद्धका विधान किया—हाँ ठीक, ब्राह्मणोंके पेटमें डाला शत्रु मृतकाने
 पाय जाता है, बैसे ही जैसे तार, जैसे चिड़ी। दुर्गासुन्दरके हनुमाना और
 ज्ञानवापीने नाँदियाँकी पूजा सर्वश्रेष्ठ माननेके लिये जरूरी है क्योंकि
 इष्ट स्वरूप बनानेके लिये इष्टकी उपासना आवश्यक है। यमपुर यात्राम,
 क्या पता है, वैतरणीने अलागा कौंटे (असिपत्र) विद्य पथपर अकंटक
 वृक्षाँकी छाया भी पड़ी मिले। और पुण्याथ गंगा-स्नान तो हमारे ईसा
 तुल्य आन्वाय स्वय करके पयप्रदशन कर रहे हैं। अजी! क्या क्या
 नहीं है, जो हम इस सूत्रसे नहा निकाल सकते—और मह! भारतकी
 "विशेषता" कहकर तो आचार्यने कलमको लिखने लायक न रख छोड़ी।
 राम दुहाइ! इम शब्दमें जबदस्त विशेषता बूट कटकर मरी हुए है।

जानते हैं भारतकी सभसे बड़ी विशेषता—जिसका दुनियाके परंपर
 कहीं पता नहीं लगेगा क्या है?—वर्ण-व्यवस्था, जाति भेद। न
 भारतकी "अपनी सास ग्रीकिक रुमान" है, जिस तक दुनियाके किसी
 दूसरे देशका सभसे बड़ा मस्तिष्क भी आन तक नहीं पहुँचा, और यदि

भगवान्को अपनी अवतार भूमिकी लाज रखनी है, तो इन् सा-अज्ञात वह विशेषता यहाँसे बाहर नहीं जाने पायेगी।

देखिये कैसी मुदर व्याख्या, कैसा नई रीतलम पुरानी शरणाका व्यापार ॥ आज राधाकृष्णन् माकाकी बोललोको आप राजपुताताक राजाओंके महलोंमें गीताकी भाँति पूजी जाते देखने। अजमेरसे अजमेरके निकला सारा राजकुमारवर्ग उसे गलेकी तावीज बनाकर रखना चाहता है। गाँधीने भी एक आप बेकार कर सिर्फ एक आँखमें राजा रकोका देखना चाह था, किन्तु इन अक्लके पुत्राने अपने आदमीना नहीं पहिचाना। वह भड़क गये कि गाँधी हमेशा समाजके कोठ (दरिद्रता) को लोगोंको दिखलाता फिरता है, जो जेठकी दुपहरीम गारूके टेरने नगे करनेसे कम खतरनाक नहा है। हीरा-भोतीकी झालर लटरानेवाली यह सारी गुडियाँ आपिर गुडियाँ ही रह गई। यदि इनके दिमागम जरा भा पीली मज्जा काम करती होती, तो समझ लेते कि समाजमें सरसक और सरसितका भेद “दार्शनिक” तौरसे कायम रखनेवाले गाँधीसे उद्वर उनका हितैषी कोई नहा हो सकता। सेठोंकी मोटी तार्दे चाहे ज्यादा चर्चासे मले ही मरी हों, किन्तु उनके मस्तिष्कमें काफी मात्रामें पीली मज्जा है—उहोंने गाँधीके गुरको समझा। आज वह सादी फड, गुड फड, गाँधी-सेरा-फड, हिंदुस्तानी-फड, हरिजन फड सभी फडोंमें अपने दशाँशकी लुद्ध रूपल्लियोंको पकते राम-राज्य कर रहे हैं।

अजमेरके चहबच्चेके कुमार आज राधाकृष्णन्की व्याख्याको पट्ट कर पूजे नहीं समा रहे हैं। क्या दार्शनिक उडान है। क्या श्रुति जैसी प्रान्तदर्शिता (क्रान्तिदर्शिता नहा, भगवान् उससे बचावे) है ॥ भागत की अपनी “विशेषता”। “विशेषता”। “अपनी अपनी विशेषता ॥” महामहोपाध्याय महिषासुरानंदजी। आप कागे भोरा ही रह गये, “सर्वम साइ भोग करि नाना। समर-भूमि” म कांद काम नहा आवे। इस ब्राह्मणकी अक्लका हम लोहा मानते हैं। आज इसने हमारी जानिने

पुस्तोसे राये तमरुका हक अदा कर दिया। यह भारती की विशेषता ही है, जो कि हम सात सौ छत्रधारी यहाँ निरंकुश शासन कर रहे हैं। दुनिया में क्रांतियों का बाजार गम है, बड़े-बड़े भारी भरकम ताज न्युयार्क की हाट में जाकर बिक गये, खुद हमारा सरतान सिर्फ एक अर्धे छत्रधारी के साथ प्रेम दिखलाने के दंड में दूधकी मक्ली की तरह निजाल बाहर फेंक दिया गया। किन्तु, हम देखिये, भारती छाती पर कादो दल रहे हैं, एक एक चुम्बन पर शीत-शीत लागने के चक काट रहे हैं। किन्तु मजाल है की चूँ करे। अथ समझा, यह सब भारती की "अपनी विशेषता" का प्रताप है। इस विशेषता को हाथसे जागे नहीं देना होगा, जब तक यह विशेषता है, तब तक हम हैं। "जौ लौ गंग जमुन-जल धारा", तब तक इस विशेषता की आयम रचना है। आज यह विशेषता न होती, तो न जाने हम और हमारा रनिनाम कहां होता ? हाँ, रनिनाम की बात का ख्याल कर एक और बात माद आ गई। अनब्यादे अष्टम एडवर्ड एक तिनाम पुदा खीसे शादी करना चाहते थे, जिसपर कन्टरबरी के शकराचार्य-ना आसन इतना गम हुआ, कि बंचारे एडवर्ड का देश छोड़ भागना पड़ा। लेकिन भारती विशेषता देखा—हमारे रनिनाम की चंद्रमुखियों की देखा है—अभी सिर्फ पंद्रहसे ही आकायदा भाँवर फिरी है, इशाअल्लाह, इसका है, प्रति बप एकी संख्या जरूर उढ़ाने की और वे भाँवर ही। मने भी अपने दिवगत नेता के कदमा पर चलना तै कर लिया है—अभी सिर्फ दस ही गाय-दे अल्मोडासे काश्मीर तक की पहाड़ियाम सुररियाओं के हेरने के लिये छोड़ रखे हैं—मैं महसूस करता हूँ, यह संख्या बहुत कम है।—निम्न वही थाल, वही लोटा, वही गिलास, वही शेतल, वही शराब ! छी छी यह आदमी का जीवन है, या पणु का !! "गाव तुण भिबारण्ये प्रार्थयामि नवा नयाम् ।"^१ यह भारती की "अपनी विशेषता"

^१ "जैसे गाय जगल में तिनके की उती तरह में नई-नईया को चाहता हूँ।"

है, जो कुमार-कालेवकी पदार्थ, हरसाल विलासतकी यात्रा, चिकने घड़े पर पानीकी भोंति कोइ असर नटा रखती, और हम निष्कटक अपने रनिवासको मुन्दरियोकी प्रदर्शनी बनाते चले जा रहे । रल दीवान साहेब को कहना होगा कि दो लाखना वैठ सकटमोचन भेज दिया जाये । “अत्रेजी राज जिन्दाबाद” “भारतकी अपनी विशेषता जिन्दाबाद ।”

हाँ, तो यूनानी और भारतीय दार्शनिक-श्रुतियाँकी बात बीचम ही रह गई—सिर्फ दोनोंकी शान्दिक तुलनापर ही जा करतल ध्वनि हुई, उसने मारे हम कहाँसे कहाँ रहक गये । आइये जरा तुलनाके भीतर चलें । इस भूत-भूलैषोम दूर तरु जानेका अवसर नहीं है, इसपर हम दोनों सहमत हैं, और यह खुशीकी बात है । पहिले कालको लीजिये—

भारतीय	काल	यूनानी	काल
गोतम (अक्षपाद)	२५० ई०	अरस्तू	३८४ ३२२ ई० पू०
कण्णद	१५० ई०	थेल	६४० ५५० ई० पू०
जैमिनि	३०० ई०	सुनात	४६६ ३६६ ई० पू०
न्यास (गदरायण)	३०० ई०	अफलातूँ	४२७ ३४७ ई० पू०
कपिल	४०० ई० पू०	पियागोर	५७० ५०० ई० पू०
पतञ्जलि	४०० ई०	जेनो	३३६ २४६ ई० पू०

इस प्रकार कालकी समानतामे कपिल ही पियागोरके नजदीक है, बाकी बेचारे भारतीय दार्शनिक अपने यूनानी तुल्य-बच्चोंके सरनाती भी होने लागरु नहा हैं । मेरे लिये कालके बारेम सदेह हो सकता है, और में भी उसे स्वीकार करता हूँ, कि कमसे कम भारतीय दार्शनिकोंके कालमे सुगमकी गु जाइश है । आप इस विषयमें स्वय कोशिश कर सकते हैं । यदि ऐतिहासिककी तुला लेकर आप वैसा करना चाहेंगे, तो मेरे बतलाये समयके ही पास पहुँचेंगे । किन्तु यदि आप तुले हुये हैं, भारतको सब विषयमें दुनियाका गुरु बनानेके लिये, तब ता आप पाँच

हजार वर्षसे कम पीछे उतरनेवाले हाने, और फिर "अंधेरे सामने रोना श्रमना दीदा रोना" है। मैं इसका आग्रह नहीं करता, कि सर राधा कृष्णन्ने जाना करनेमें फालका विशेष ख्याल किया होगा, आरिस्स मैंने भी धर्मशक्तिकी तुलना वा-ड-डेगेलसे की है, जो कि उनसे १२ सदियों पीछे हुये। अन्धा तो सिद्धान्तकी तुलना कौजिये।

चूनानी	सिद्धान्त	भारतीय	सिद्धान्त
१ थेन (६४० ५२५ ई० पू०)	पानी मूलतत्त्व	कणाद (१५० ई०)	परमाणुवाद सामान्य विशेष समाय
२ पियागोर (५००-५०० ई० पू०)	गणित ब्रह्मवाद आकृतिवाद सख्या-ब्रह्म	कपिल (६०० ई० पू०) ।	अनीश्वरवाद प्रकृतिवाद
३ सुफात (४६६ ६६६ ई० पू०)	रूढिवादविरोधी ज्ञानवाद देव 'विद'निश्चक	जैमिनि (३०० ई०)	घोर रूढिवाद कमवाद वेद-दास
४ अपलातू (४२७-३४७ ई० पू०)	अनेक विज्ञानवाद बुद्धिसे ज्ञान मौलिक विचारक	व्यास (सादरायण ३०० ई०)	एक ब्रह्मवाद अथसे ज्ञान उपनिषत् सम "वय

यूनानी	सिद्धान्त	भारतीय	सिद्धान्त
५. अरस्तू (३८४ ३२२ ई० पू०)	केचन तर्कवाद ईश्वर सृष्टिकारण	श्रीतम अक्षुभद (२५० ई०)	शब्द और समाधि ईश्वर कर्मफल कारण
६ जे नो (स्तोइक) (३३६ २६४ ई०पू०)	जीव एकदेशी तर्क फाटेकी बाह्र जैसा, वस्तुवाद अद्वैत अन्तमा मिवाद अवयव अवयवी वाद	पतञ्जलि (४०० ई०)	सिद्धि-समाधिवाद द्वैतवाद

यदि जे नोसे सर राधाकृष्णनका अभिप्राय इस स्तोइक (सयमवादी) जे नमि नहाना, गल्कि एलियानिक जे नो (४६० ४३० ई० पू०) से है, तो यह अद्वैतवादी था, जब कि पतञ्जलि द्वैतवादी ।

इस प्रकार सर राधाकृष्णनने समकक्षता स्थापित करनेमें दोनों देशोंके दार्शनिकोंके माल और विचारकी पूरी अवहेलना की है । नामोंमें अनुप्रासका ख्याल किया हा, यह भी ग्रात नहीं है । जे नोरो उहोने पतञ्जलिके जूएमें रखा है, हालांकि अनुप्रास मिलानेके लिये ठीक था—
“जे नो जैमिनि जोडी, एक अथा एक कोडी ।”—स्तोइक (सयमी योगी) जे नो को कोडी यह लीजिये और शान विरोधी घोर कर्मवादी जेमिनिको अथा । हाँ, शायद दोनों देशोंके दार्शनिकोंकी शकलम समानता हो सक्ती है, जिसके बारेमें मैं अपने भारी अज्ञानको स्वीकार करता हूँ, मुमकिन है, सबपल्लीके पाम १ दत्तन फोटो अदियारसे पहुँच गये हा ।

(२) धर्म सवोंपरि—सर राधाकृष्णका 'सासो' दुनिया भारतके महा दार्शनिकके तौरपर मान करती है। किन्तु, श्रावणफोर्टमें एक छोटी-मोटी धर्मकी गद्दीपर बैठानेका निश्चय जब बृटिश पूँजीप्राधीने किया, तो कुछ लोगोंकी सचेत दुआ कि दार्शनिकको धर्मकी गद्दी देना अत्याप है— यूरोपम धर्मको दर्शनसे उगी तरह छांटे दूँका समझा जाता है, जिन तरह दर्शानो छाईसते। सर राधाकृष्णनूना नी, हो सकता है, बात सटनी हो। यह भी मुमकिन है अम्रेजी मेलीसाईका भारतम किसी भी दर्शनके होनेका पता ही न हो, या हो सकता है, उनकी सोंपहीन भर गया ही कि भारतीय दिमाग उनकी दी हुई पदवियाँ और दुम्डाके लिये सिर्फ दुम डिलाना जानता है। हम अजसा है, हमारे सेंजूनी इत छोटी काठरीके प्रांगनके ऊपर जितना णसमान गुला हुआ है, उतसे काँकनेगल चेदरमें ज्यादातर ऐसे ही हैं। पूँजीप्राधीने चाहे किसी तरहसे भी हमारे दार्शनिकको धर्म-चचाके लिये बुलाया हो, कि-तु वह है धम चचा करने ही योग्य। इसके लिये हम अमो समूत पश करनेगाले हैं, लेकिन उतसे पहले एक और बात याद आ गइ। जितनी ही लोग—हाँ, भारतके अम्रेजी शिद्धितोमें ही—यह समझोनी नष्ट भारी गलती करते हैं कि सर राधाकृष्णन जगदस्त दार्शनिक है। इस बातमें एक तरफ हिंदा लेसक धुरी तरहसे पँस गया। इन लेसककी कलम और प्रतिभा दोनों की मैं दाद देता हूँ, भाषापर उमरा अधिकार है। वह इतना माधन सम्पन्न है कि भविष्यके लिये हम यदि उनपर ज्यादा आशा नईये, तो अनुचित न होगा। उसने दर्शनके इतिहासपर जो पुस्तक लिखी है, उसमें २३ २४ पृष्ठोंके अनिर्दिष्ट, गायी चार सौ पृष्ठ इतने अच्छे लिखे हैं कि उन्हें पढ़कर उड़ी खुशी हुई—वर्तमानको ही देखकर नहीं, भविष्यका भ्रमाल करके। लेकिन, वह २३ २४ पृष्ठ कैसे लिखे गये हैं, उसके बारेमें मैंने उसी पुस्तक पर नीली पेंसिलसे लिखा—“अथवा कलक”। उन २३ २४ पृष्ठसि गुजरना मेरे लिये उतना ही मुश्किल हो गया, जितना

कि गोपलरूपके जयावामे गंगे पैर आदमीके लिये चलना । और फिर यह भी ख्याल रखिये, पैरसे सिरकी पीड़ा ज्यादा दुस्मह होती है । आप समझते हंगे, मैं उस तक्षण पर जल रहा हूँ । वहीं, मैं तो समझता हूँ, एक दिन उन प्रवर्तना पढ़ने हुए उसे भी वैसी ही पीड़ा होगी—मैं आशा करता हूँ, तक्षणो इस पुस्तकसे अपने दार्शनिक अध्ययनके जीवनका आरम्भ किया है, और यह अपनेका अधिक साधन सम्पन्न बनानेकी कोशिश करता रहेगा । जानते हैं यह पृष्ठ किस दर्शनपर है ? बौद्ध दर्शन पर, और बौद्ध दर्शनके भी उस कालपर जो कि बौद्ध ही नहा, भारतीय दर्शनका भी मुनहला काल है—यानो, नागार्जुन (१७५ इ०) से शान्तरक्षित (७४०-८४० इ०) तकका काल । भारतीय दर्शनमें जो बौद्ध दर्शनके भारी मद्दतको नडा समझता, उसे दशनको दूरसे प्रथाम कर लेना चाहिये । उस दशनको समझनेकी जो कोशिश नहा करता, और भारतीय दर्शनपर पोथे लिखना चाहता है, उसके लिये क्या कहना चाहिये ? मैं यह नहा कहता कि उसे छोड़कर आपको कलम ही नहा उठानी चाहिये, कलम उठाइये, किन्तु सारे भारतीय दर्शनको मत समेटनेकी कोशिश कीजिये । तक्षणो जा गलती की वह अपने दोषमें नहा, यह सबसे आश्चर्यकी बात है । मुझे उम्मीद है, यदि उसने स्वयं जो कुछ सत्कृतके मूल ग्रंथां और उद्धरणमें पढा था, उतनी ही पर इन २४ पृष्ठोंको लिख डाला होना, तो पुस्तकमें यह कलक न आने पाता । किन्तु, ग्रपसोस है, अधा न होते भी उसने अपनी ग्रंथों रद कर लीं और दूसरे अधेकी अगुली पढ़ लीं । आप खुद समझ सकते हैं, ऐसे आदमीकी क्या गति होनी चाहिये ।

सर राधाकृष्णन्के “भारतीय दर्शन” के दोना पोथां पर जगद् जगद् बौद्ध-दशनसे कोरे होनेकी छापीकी भरमार है । साथ ही मालूम होता है, लेखकके दिलसे “दैव राजा” का डर बिलकुल उठ गया था, और उसे ख्याल नही आया कि “कालो ह्यय निरवधिर्निपुला च पृथिवी ।” मुझे

उम्मीद है यदि सर राधाकृष्णन्के दिलम यह ग्याल आया होता, नि उतरी पुस्तक विरु आगकी ही पीढ़ीके सामने नहीं जा रही है, बल्कि आगेवाली पीढ़ियोंके हाथमें भा उरकी फाइ ७ फाई जिल्द पहुँच जायगी; तो फिर यह हम लीना-पनी, इस दर्शनके विवरणके नामपर सत्यता नहीं समझाय और स्वार्थका प्रोपेगैंडा करोगी कोशिश ७ फरो ।

लेकिन, एक बातमें मालूम होता है—हम दोनों एक ही मजके मरीन है । जैसे "टोन-बोटपर बैचराज" बन भो दर्शन पर फनम फेरती चार्ही है, जैसे ही राधाकृष्णन् भी फरम पड़ गये—फर इतना ही है नि मेरी नगी अल्पशता किमीको गढेमें नहीं गिरा सक्ती, और जब तक हिन्दीके अधिकारी लेखन रूप्य इस तरफ ध्या नहा देते, तनतर यह पत्तियाँ पाठनीको कुछ राताके समझनेमें सहायता पहुँचा सकती हैं , किन्तु, सर राधाकृष्णन्की सनशता कितनी एतरनाक है, इजना उदाहरण अभी यह तरण लेखन आपकी आँखसि आंमल नहीं हो पाया है ।

यस्तुत, सेनाग्राम और सक्कटमोचनम इतना भद हम गलतीसे कर रहे थे , आक्सफार्डवालों सही परण की, इसके सबूतके लिये पढ़िये—

“(चारों ओरसे) मार पड़ने पर बुद्धि भक्ति (की गोद)में शरण ले सकती है । उपनिषदोंके श्रुति पवित्र शास्त्री पाठशालाके महान् अध्यापक हैं । यह हमें शरण और आत्मिक जीवनके शानके बारेम बतलाते हैं ।”

दो मोठी-मोटा जिल्दोंको लिखामें उनकी लेखनीने पञ्जूल ही परिश्रम किया , असल तरन तो इस एक पत्तिमें है—“मार पड़ने पर बुद्धि भक्ति^१ म शरण ले सकती है ।” सक्कटमोचनके वागान ही अमलका टीका थोड़े ही ले लिया है ? काशीके दूसरे छोर पर भी एक अनपढ पंडित रहता था, तिसका कहना है—

“पाथी पत्ति-बुद्धि जग मुआ, हुया न पंडित काय ।
दाई अचछर प्रेमका, पढे सो पंडित होय ॥”

^१Indian Philosophy vol II p 19

^२Faith

राधाकृष्णान् यथा नाम तथा गुण भक्तिमार्गीं है । ठीक सकट-मोचन-के पुराने बायाके हम पियाला हम निवाला—गद्दी उसीको मिलती है, जो कि उसके लायक होता है ।

आप गुस्सा होकर कहेंगे—तक पितर्क छोड़िये, आपही मतलाइये, मार पड़ने पर बुद्धि कहाँ शरण लेने जाय ? मैं कहूँगा—शरण लेना शायराना काम है, उसे जूझ मरना चाहिये । बुद्धिपर मार पड़ रही है, आगे बढ़नेके लिये, और जो बुद्धि ज्यादा अग्रसर है उसपर मार पड़ती भी नहीं । सिकरीलसे कितनी ही मार आप एकनेपर गये होंगे । आपही बताइये, मार किनपर पड़ती है ? आप नाम नहीं लेंगे, मैं भी नहा लूँगा, किंतु, यह बात साफ है कि तेज रफ्तार बुद्धि पर कभी मार नहीं पड़ती, और न उसे किसीके पास शरण लेनेकी जरूरत होती है । वैसी बुद्धिके लिये प्रयोगका राजपथ सदा मौजूद है, इसे हम मतला आये हैं । रही, “पवित्र ज्ञान-पाठशाला”के मशान् अध्यापकके ज्ञानकी बात । उसके बारेमें हम दूसरी जगह कह आये हैं^१, जिसे यहाँ फिर दुहराना नहीं चाहते, हाँ, ऋषियोंके बारेमें अनन्त निद्रा मिलीन अपने चिरमगी जायसवालकी एक कथा जरूर याद आती है, जो आपसी मेवामें अर्पित है ।—

सत्यव्रत सामाश्रमी कलकत्ताने सस्कृतके एक अच्छे पंडित थे—सासुकर वेदकी सस्कृत (छन्दस्)में उनकी योग्यता बहुत ऊँची मानी जाती थी । गुरुकुल काँगड़ीमालोंने एक बार अपने जलमेम उन्हें किसी परिपक्वा सभापति बनाकर बुलाया । सामाश्रमीजीने वेदार्थपर स्वामी दयानन्द और ‘निरुक्त’ की प्रशंसा करते हुए एक सारगर्भित भाषण दिया । आय समाजके उस वक्तके टुटपुँ जिये विद्वानापर उसका क्या प्रभाव पड़ा, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु, तीन तरफ सस्कृतज्ञापर उसका इतना असर पड़ा कि वह सामाश्रमीके गिर्द गुडरी मक्खरी बन गये । सामाश्रमी अपनी वेदज्ञताको आर्य-समाजके वातावरणमें निर

^१“दर्शन दिग्दर्शन”

तल तक पहुँचा चुके थे, उससे पीछे उतारना बापे लिये गुरिदल था । तलसे उतारोना समाल तो दूर, वहाँ 'हाँ' 'हाँ' में यह कुछ मीठी श्रौर ऊपर टँग गये । तीनों तम्बोने आम्रदूषक कहा—“गुरुजी हम जानते हैंगाइय ।”

—“पैलागेरी तो मुझे भी अत्यन्त इच्छा है । मैं भी रात्र उत्त चिन्तामें पड़ जाता हूँ, कि वहाँ इतने परिश्रमसे उपार्जित यह वेद विद्या मेरे साथ ही चलती जाय । लेकिन, अग्रिकाये शिष्य मिल तब न !” टीक उपनिषद्दे श्रुतियाके स्वरमें हम यानवो—शब्द नाग, रात ही कटूगा, क्योंकि वहाँ भाषण सारा सख्तमें हो रहा था—मुनवर तीनों शिष्य गद्गद हो गये, श्रौर उहोने मारी परीवारों दे, गुरुजी अपनी सेवासे प्रसन्न कर, भगवती वेद विद्याके प्रहरण करोना पक्का इरादा प्रकट किया । सामाभमोना तीनों नये रँगरुटोंका हो बलकत्ता पहुँच । कुछ दिन-सप्ताह—ता एमे ही रात्र-धीत, सत्सग हीमें चने गये । फिर पनाइ गुरू हुई । श्राव-ममाची शिष्योने समझा था कि गुरुजी ऐसी जुझनी यतलायेंगे, जिमम यदि मारे साइस वेदमें न मन्त्रने लगें, तो कमसे कम जगह जगह जो वेदोंम इतिहास—देशों, नदियां, राजाश्रा, रानियां, श्रुतियां, श्रुतिकाश्राक नाम तथा वृत्त—मिलते हैं, श्रौर जिनकी वजहसे वेदको दो अरर वष पहले हो जाना सम्भव नहीं, इसका तो कोई समाधान निकल आयेगा । सामात्रमीनी शिष्योके अभिप्रायकी समझने पर, दसलिये पहले बचते हुए उहोने पाठ पढ़ना शुरू किया, किन्तु शिष्य काइ दुधमुँहे बच्चे न थे । अतमें उहोने यह कहकर पाठ कुछ दिनोंके लिये बंद रखा कि हम तरहके गहन वेदार्थके लिये गुरुजी भी कुछ साधना करनी पड़ती है । एक दिन गुरुने तोंद रोजे आसनपर पद्मासन मार शिष्योंका आवाहन किया । ‘शिष्य प्रसन्न हो सामने जा मौजूद हुए । वे श्रार्थ गुरू हुआ । एक मन्त्रपर पहुँचे, अर्थ कुछ इस तरहका हुआ, जिससे वेदकी अनित्यताका ही डर नहीं हो गया, उलिक

वैदिक ऋषिके मुँहसे निकली ऊट पटांग रात पकड़ी गई। शिष्याने बहस करते हुए कहा—“ऋषि होकर ऐसी गलत रात क्या कही ?”

सामाभ्रमीजीने चट अपनी तोंदपर हाथ फेरते हुए कहा—“इसोंने लिये, उनके पास भी यह (पेट) मौजूद था।”

तीनों शिष्याके दिलको भारी धक्का लगा, इसमें शक नहा, किंतु सामाभ्रमीजीकी रात सोलहों आना सच थी, इसमें राधाकृष्णको छोड़ किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता। सामाभ्रमीजीमें वह योग्यता थी, जिसमें वह हार्दिकमत गीतम, सत्यनाम जानालकी पक्तिम जा जूटन गिरा सकते थे, जबकि राधाकृष्ण गरीबसे वे अपि अपने जूतेका तस्मा भी नहीं खुलवाते।

३ धर्मसार

(१) आत्मा और दिव्य शक्तिकी कल्पना—धर्मका सार है, किन्ही अलौकिक शक्तिमें विश्वास। यह विश्वास या भक्ति किन्ही ऐसी एक शक्ति (ईश्वर)में भी हो सकती है, और अनेकोंमें भी, वह भक्ति अधिक स्थूल—आरक्षक मानव जैसी—भी हो सकती है, और सर राधाकृष्ण या गाँधीजीकी जैसी सत्य शिव-सुन्दरस अनुप्राणित भी। शक्ति, आत्मा, देवताका यह ख्याल न आत्मानसे टपका, न आत्माकी आवाजसे। इसकी उत्पत्तिका कारण उस समयके समाजका आर्थिक दौंचा था, जिसमें कि वंश-नाशका महापितर (दादा) या महामाता (महामाई) जीवन-सामग्रीके उत्पादन, आत्मरक्षा तथा परलुठनमें वंशका नेतृत्व करते थे। आरम्भिक समाजमें जो श्रम विभाग हुआ था - पत्थर, लकड़ी, हड्डीके हथियारकी सहायता प्राप्त होनेपर वैसा होना जरूरी थी। उस समय इस श्रमके संचालनके लिये जो व्यक्ति सबसे आगे था, वह वही हो सकता था, जो कि उत्पादक श्रम—जानवर, मछलीके शिकार, जाल बुनना, हथियार बनाना आदि—में सिद्धरस्त था, जो शाका, सुद-संचालन कर सकता था, जो परिवारके कामकी योजना आगेसे बना

उसे प्रायः सफल करा सजता था। ऐसे व्यक्ति का समाजमें सबसे ऊँचा स्थान होना जरूरी था, क्योंकि वह उन वस्तुओं का पहले अपने दिमाग-म तैयार कर लिये हाता था, जिन्हें कि दूसरे उसकी देखरेखमें सिर्फ साधारण रूप देते थे।—वह विधाता था, दूसरे उसके आशाकारी अनुचर। वह इच्छा करता था, और दूसरे उसकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले। भ्रमना वह सफल विभाग आदिम मानवोंके मनमें इतना गड़ गया था, कि हर जगह उन्हें यह रूप दिखलाई पड़ता था—आखिर आजकल हिन्दुआके राम-नाम बँकके भी गणियोंने अपने कारखानेके तजपत्रोंसे ही धर्म खातेम दाखिल किया है। और हम उन्हें एक बगके भीतर बहुत सफलतासे चलते भी देखते हैं। आदिम समाजके इस रूपने स्वयं मानव-का आत्मा और शरीर दो भागोंमें बाँटा—आत्मा शरीरका संचालक है, और इसीलिये वह शरीरसे भेद्य तथा उसका सरलक है। इसी रचालको लेकर मॉण्डूक्य उपनिषद् और गीतामें शरीरको रथ तथा आत्माको रथी (चोड़ा)की उपमा दी गई है। अरस्तूने आत्माका स्वामी और शरीरको दासोंसे उपमा दी है—अरस्तूके समय यूनानमें स्त्री पुरुषोंकी चंचलरीद आम थी, और दासोंका काम सिर्फ मालिकनी आज्ञाको पालन करना, उसकी सेवा करना था।

जिस तरह भ्रम विभागके क्षेत्रसे लेकर चलते फिरते काम करते शरीरके संचालनके लिये उससे पृथक् एक आत्माकी कल्पना की गई, उन्ही तरह उन्हें विश्वमें हरएक वस्तुके पीछे आत्मा दिखाई पड़ने लगा, जिसे कि उस वस्तुका आत्मा—अभिमानी देवता—बढ़ा जाने लगा। वेदके देवता इसी प्रकारके अभिमानी देवता हैं, और वह सूर्य, चंद्र, अग्नि, बुध, जल, यल, चन्द्र, अलग अलग अपना आसन जमाये उनका संचालन कर रहे हैं। [यही आदिम-मानवकी कल्पना याज्ञवल्क्य (६०० ई० पू०) के सामने थी, जिसे कि उसने अलग-अलग अभिमानियोंको मिलाकर एक अन्तर्गामी ब्रह्मके रूपमें परिष्कृत कर दिया]

उस समयके मानव अथवा आज भी जो जातियाँ उस अवस्थामें हैं—के
 गीतर कोने-कोनेमें भूत प्रेत देवताका विश्वास जो इतना ज्यादा पाया
 जाता है, उसकी वजह यही थी।—यह है वह कारण-मामूरी जिसने धर्म-
 का पैदा किया। महापितर या महामाताका रयाल इस सपकी जडमें था।
 इसालिये अलौकिक शक्तिकी कल्पना भी इन्हीं दो रूपोंमें की गई।
 मातृसत्ताक समाजके सभसे पुराने होनेसे मातादाइका धर्म ही सबसे पहिले
 अग्नित्वमें आया—जिसके कि प्रमाण सिंधु, नील, टजला पुरातनी
 उपत्यकाआके प्राचीन धर्मोंमें बहुत ज्यादा पाये जाते हैं। हिंदुआकी
 मली-दुगा उसी मातृसत्ताक नमूनेपर बने धर्मके अवशेष हैं, इसाइयोंमें
 माता मरियम्, महायान बौद्ध में तारा, जैनोंमें चन्द्रेश्वरी सभी आद्यामाता
 (मातृसत्ताक परिवारकी सचालिका माता)की प्रतीकें हैं।

मातृ-सत्ताक या पितृसत्ताक समाजमें जीते-जी जो नेतृत्व कर रहे थे,
 मरनेके बाद भूत प्रेत देवतासे भरे जगतमें, विशेषकर रातके अंधेरेमें, इन
 पृत नेताआका “दरशन” होना स्वाभाविक था। फिर उनके लिये चौतरे
 तथा बलिका प्रपञ्च लाजिमी ही था।—आरतिर, जीवनमें जिस तरह वह
 गाढे वस्त्रम काम आते थे, अपनी बुद्धिमत्ता, वत्सलतासे अपने गल
 गुणालोंको वह अब भी उतना ही फायदा पहुँचा सकते तथा पहुँचाना
 चाहते थे, जरूरत इतनी ही थी, कि जीवनमें उनके लिये जो प्रिय
 वस्तुयें थीं, अब भी वह उनके सामने उलिके तौर पर पेश की जायँ।
 महापितर और महामाताकी प्रेतात्मायाँ—दिव्यात्मायाँ—के साथ ही लोग
 उनको सहायता—सेनायाँ—को भूल नहीं सकते थे, आरतिर मरनेके
 बाद भी तो वह दिव्यात्मायें अकेली सोम या मुरा पीनेमें आनन्द अनुभव
 नहीं कर सकती थीं, न अकेली नाच-गा सकती थीं, फिर चाहे सन्तान
 अनुसत्तान न भी पैदा करें, किन्तु सभोगके आनन्दसे तो वह अपनेको
 संचित न कर सकती थीं। इन सपके लिये पृथिवीपर मौजूद मानव-समाज-
 की एक पूरी नकल दिव्यात्मा-समाजके रूपमें तैयार की गई। हम पुराने

मिस्र, बाबुल, यूनान और भारतके प्राचीने पढ़नेसे जानते हैं, कि एक समय था, जब कि मनुष्य-स्तोत्रकी भाँति देव-शोक भी पृथिवी पर ही—परिणत उनके पड़ावमें था, और अस्मर दोनों नापाये स्त्री पुरुष वैन ही आपसमें समाप्त करते थे, जैसे किसी दा रथानामे लाग। यही नहीं हर देशके पुत्रो धीरामें, महापुरुषोंमें, ऐनाही मर्यादा पाते हैं, जो कि देव-कथा या देव पुरुषका उताव था। उस वक्त अभी मानवकी उमर कम थी, प्रथिवीका बहुत अतिरिक्त हिस्सा जगल, गैर आवास्य और अज्ञान था, वहाँ दिव्यात्मायें भी राख कर सकती थी, किन्तु जैसे जैसे मनुष्यकी संख्या और ज्ञान बढ़ता गया, जैसे ही जैसे देवताओंका पृथिवी छाड़नेपर मन्वृर होता था।

(२) थ्योमोस्की और सती-समाज—विद्वाना सदी तक विद्वत दुनियाके सबसे अग्रत देशमें था, इसीनिय देवताओंके वहाँ देवनगर बसाये, श्वेत परिपदों कायम का, दुनियाक लागोंका धैयतिक तीरसे पय प्रदर्शन करनेवाले महात्माओंके लिये प्रोक्त हेड-क्वार्टर या छावनिवा छानाई।—आपका यह सुनकर तत्रन्तुन हागा, अगर कितोही शिकितो ने मुक्त नदी गभीरताके साथ पूछा था, कि इन देव-परिपदों और महात्माओंके बारेमें आपने विद्वतमालामे क्या सुना? जब मन रोपको भीतर ही दमाकर कहा कि वहाँके लोगाना इन देव-परिपदा तथा महात्माओंका कुछ भी पता नहीं है, तो एनापने यहाँ तक कहनेकी धृष्टता की कि तब आप उस इलाकेमें नहीं गये होंगे। उन सगनाना यह विश्वास दिलाना मुश्किल था कि मैं “महात्मा” कृष्ण-हृमी (सोथूमी) और लालसिंहके केन्द्र तथा ‘महाचोहान’के इलाके शि गचें और टशीलदुन्पों में अनेक धार पदा और महीना तक रहा हूँ—यह वही जगह है, जहाँसे उक्त महात्मागणने गिन्नेट और दूसरे थ्योमोफिन्सोंको कितो ही पत्र और संदेश भेजे थे। एक शब्द देवताओंके शब्दके बारेमें भी—वे देवका ही

रूनी पयाय हैं। सोफीको पौफी कहनेवाला आपके मित्रोमें काइ मिल
 गारगा, इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि “साइंस समाहित इस
 नान् धर्मका” यह नया नामकरण नहीं, बल्कि सिर्फ हिन्दीकरण मात्र
 है। मुझ उम्मीद है, ध्योस्तोफिस्ट सज्जन इसका प्रचार कर पुण्यके भागी
 नैंग। मैं उन आदमियोम हूँ, जो कि देवपौफी समाजको धमका चरम
 स्थि मानते हैं। धमने यहाँ आकर अपनी पूर्णता प्राप्त की, धमके
 ये इससे आगे बढ़नेके वास्तु अथ एक सीटी भी नहीं रह गई। वृष्ण
 “शब्दो” मे धर्मक इत गाढे वचन यह स्वय इस समाजके रूपम
 वतीर्ण हुए।” इस समाजने अपने थोडेसे समयके जीवनमे पितने
 मागोरो “जुमराह” होनेमे बचाया, उतना किसीने नहीं किया होगा।
 र पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिणके धार्मिक विचाराना जो गंगा-सागर
 म इसने रचाया, उसे देखकर तो तनीयत अश् अश् करने लग जाती
 । सबसे बडी “सेवा” जो देवपाफी समाजने की है, यह है देवताओं
 । फिरसे मर्त्यलोकमे लाना ही नहा, बल्कि उनका दशन कराना, उनका
 द सुनाना, उनका गध सुनाना, उनका रस चगाना, उनका स्पर्श
 पना।—देवगण विलकुल इन्दियगोचर हैं, इसे उसने सेन्टों देव-
 टो चित्रोसे सावित कर दिया। आज इस समाजके प्रतापसे आप
 वताओं, दिव्यात्माओं, प्रेतात्माओंसे उसी तरह बातचीत कर सकते
 , जैसे मुझसे। और फिर “नदिया एक घाट बहुतेरे” के महामन्त्रो
 जीने वस्तुत पूरी तौरमे कार्य-रूपम परिणत कर दिखाया।

(सखी-समाज)—सखी-समाजमें आप लोगोको नाना भाँतिसे
 गवत्-उपासना करते पायेंगे कोइ पुरुष होते भी अपनेको भगवान्की
 नी समझता है, परिणीता नहीं तो रखेली होने पर भी वह सन्तोष करने-
 लिये तैयार है। हर मास उसे मासिक धर्म होता है, और वह नियम
 कर तीन दिन तक “कपडसि” रहता है। हर रात भगवानको “लेकर”
 पना है, इस लालसासे कि भगवान् अपने जैसी एक मेघश्याम सन्तान

प्रदान करें, किंतु प्रकृति भगवान् तथा भक्तिजीके कामम मारी बाधक है, और दोनों उसका कुछ कर नहीं सकते। इन "तरुणी" तथा "बूढ़ा" "सखिया" के फोटोचित्राको देग्नरर आप अपनी आँसूना तृप्त कर सकते हैं, लेकिन उन नमोना फोटोना नहीं चल चिनोका है, मैं देग्नरर पीकी शाखा, इस सखी समाज—जिसकी सराशा विहारमें काफी है—मे निनस्र प्राथना करूँगा कि समयकी गतिसे उदें, और चल चित्र—खिनेमा—द्वारा अपने ही प्रान्तकी नहा अपने गुरुद्वारों—अयोध्या, वृन्दावन—की बडी वृत्ती "सखिया" तथा उनकी "तरुण परिचारिकाओं" का भी उनक स्वाभाविक पोज—भावभगी—ज्ञान भाव-कटाक्ष—तथा स्नेह भृदुमापणके साथ फिल्म उतरवायें। ऐसे फिल्मसे भारी लोक-कल्याण होगा। नवधा भक्तिना फौज्दारा घर-घरमें फूट निकलेगा, जिसमें डर इतना ही मालूम होता है, कि वास्तविक खियाँ कहां क्यूँ मे दूदकर आत्महत्या न कर डालें।

हाँ, मैं यहाँ इतना जरूर कहूँगा कि सखी-समाज देग्नररोंकी समाज का न अभिनय गग है, न उससे सम्बद्ध है, उसने परीक्षित विश्वत्रिआलयों की भाँति उसे स्वीकृति भर दी है, किन्तु सेकडा सखी-समाजी देग्नररोंफाके सरगम सदस्य तथा नेता हैं, इससे वह इनकार नहां कर सकती।

देग्नररोंकीना विस्तार सारी पृथिवीपर है, इसके विशाल साम्राज्यमें "सूर्य कभी नहीं उगता"की कहानत चरितार्थ होती है। उसके सारे सदस्य "आँसूके अघे गाँठके पूरे" नहीं हैं, और नर्न सभी चतुर शिरोमणि हैं, यह मैं मानता हूँ, किन्तु उसके नटनागराँ और री कलाय दशनीय होती हैं, इसमें सदेह नहीं। लेकिन, आप मुक्तसे आशा न रगिये कि मैं इन कनाविदाँ तथा उनके अड्डोंकी सैरके बिये आपका पथ प्रदर्शक बनने जा रहा हूँ। एन वाक्यमें मैं कहना चाहता हूँ— कि देग्नररोंकीके रूपम भगवान् धर्म अपनी सोलह कलाम अगतीय हुए हैं।

(१३) दुनियामें देव-कल्पना (१) बाबुल—एक जर्मन प्राकसर निरसता है— “(धार्मिक कल्पनायें) सामाजिक राजनीतिक कल्पनाओं तथा संस्थाओंके सिर्फ दर्पण (प्रतिबिम्ब) मात्र हैं । ”^१ प्राचीन बाबुलमें अनु, एनलिल्, एन्ना, सिन्, शम्य (सूर्य) आदि देवता पूजे जाते थे । इन बड़े देवताओंके साथ नितनी ही दिव्य (इहीही) तथा भौम आत्मायें (अनुनाकी) भी थीं, जिस तरह हिन्दुओंमें बड़े देवताओंके साथ लाक्षा देव-परिवार, ग्राम देवता और कुल देवता । बाबुलमें जिस तरहका राजतंत्र उस वक्त प्रचलित था, उसीकी नकलपर देव-समाजमें भी राजतंत्र कायम था । जैसे-जैसे बाबुलके पार्थिव मानव-समाजमें परिवर्तन होता गया, उसी तरह वहाँके देव समाजमें भी परिवर्तन करना पड़ा । सामन्तोंमें जिस तरह बाबुलका महासामन्त या बादशाह प्रधान और सर्वशक्तिमान् माना जाता था, उसी तरह बाबुलका देवता मर्दुक सर्वशक्तिमान् देवतादेव बना । मर्दुक देवतादेव बननेसे पहिले सुमेरीय जातिका जातीय देवता था, जिसे वे लोग बसन्तका अधिष्ठाता मानते थे । हम्मूर-बन्धीके राजमशने अपनी प्रधानताके समय मर्दुककी महा देव बताया । इससे पहिले एनलिल् पृथिवी और आकाश (धारा पृथिवी)का स्वामी था, जिसे कि मर्दुकके लिये अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा । एन्ना सृष्टिकृत्ता (ब्रह्मा) था, उसका अधिकार मर्दुकको सौंपे दिलाया जाय, इसके लिये एक पौराणिक कथा गठी गयी, जिसमें सानित क्रिया गयी कि सुमेरीय मर्दुक बाबुली एन्नाका ज्येष्ठ पुत्र है । राजका पुत्र उत्तराधिकारी होता है । बाबुलकी राज्य-व्यवस्थाके पूर्णतया एक राजाके हाथमें आ जानेपर उसका प्रभाव वहाँकी देव मडलीपर जो पडा, उसे ही हम मर्दुककी सर्वेश्वरता तथा सर्वदेवमयतामें देखते हैं । इसीलिये बाबुली पुराणमें मिलता है—“निनिरू बलका मर्दुक है, नेर्गल युद्ध का मर्दुक,

^१ Professor Achelis (Soziologie in Sammlung Göschen Leipzig 1899 p 85)

एनित् प्रमुताका मनु'क ।" मनु'ककी निम्न स्तुतिकी देखनेसे मालूम हो जायगा कि उसकी कल्पनाम बाबुलके राजाकी कितनी नरल है—

“ईश्वर, देवाओंके शायक ' चावा पृथिवीके अकेले महान् राजा । आपने पृथिवीको सिर्जा, मदिराकी प्रतिष्ठा की, और नामकरण किया । पिता । आप देवा मनुष्याके जनक हैं । महान् नेता । जिसकी रहस्यपूर्ण गहराईका पता किसी देवताको नहीं लगा । पिता ! (आप) सभी सत्त्वोंके स्रष्टा हैं । शासन । आप ही हैं जो कि चावा-पृथिवीके भाग्य के प्रेरक हैं, जिसका शासन अ-लभ्य है, जो सदा रमों प्रदान करता है, प्राणियाँपर राज्य करता है । कौन देवता है आपके जैसा दूसरा ? चु (नक्षत्र) लोकम कौन महान् है ? सिर्फ आप ही । और पृथिवीम कौन महान् है ? (आपही) । जब देवलोकमें आपका शब्द प्रतिध्वनित होता है, तो इहीही (सुरगण) धरती पर पड जाते हैं , जब वह पृथिवीपर प्रतिध्वनित होता है, तो अनुनाकी (भौम देव) धरतीको चूमते हैं । इश्वर ! पृथिवी और देवलोकके तुम्हारे राज्यमें तुम्हारे भाई देवताओंके वाच कोई ऐसा नहीं है, जा कि तुम्हारे समान हो ।” २

(11) यूनान—पुराने यूनानियाँकी सारी शासन तथा समाज-सबधी व्यवस्थायें एव आचार विचार उनके देवताओंम मौजूद थे । जेउस् (सौ) देवताओंका देवपितर था, देमेटेर (द्विमातर ?) कृषिकी देवी, हेमस् व्यापारका देवता, और हेलियोस् (सूर्य) उदार व्यवसायोंका अधिष्ठाता था । इसा पूर्व पाँचवीं सदी अथेन्स (यूनानकी प्रधान नगरी) के वैभवका म'याह काल था, अथेन्स दुनियाके व्यापारकी रानी थी, और वहाका शासन व्यापारियोंके प्रजातंत्रके हाथमें था, जिसमें स्त्री पुरुषोंका मत्र अधिक जानून विहित ही नहीं, उल्लि अथेन्सके वैभवका

१ “प्राचीन प्राचीन इतिहास” (रूसीभाषा,) प्रोफेसर युरायेफ् (विल्ड १ पृष्ठ १२७) २ फारसीका शाह और संस्कृत शास एव ही शब्द है । ३ उही पृष्ठ १६४ ।

बहुत दारमदार दास प्रथा पर था। इस ढाँचेको धारण करनेके लिये धमकी किन्ती जरूरत थी, यह उस समयके कवि सापोकलुकी इस सम्मतिसे मालूम हागा, जिसके अनुसार "सारा जगत् ध्वस्त हो जायगा यदि धर्म उठ गया, क्योंकि सभी आचार और राज्य-सबधी व्यवस्थायें देवताओंकी इच्छापर निर्भर हैं" ^१ उस वक्तके शासनच्युत सामन्तवशज तथा उनके अनुयायी यूनानकी तत्कालीन धम-व्यवस्थाका विरोध करते थे, क्योंकि इस विरोध द्वारा वह शासकवर्गका विरोध कर सकते थे। सुन्नात देवताओंका विरोध करके यही कसूर कर रहा था, जिसके लिये अथेन्सके व्यापारी शासकोंने उसे जहरका प्याला पीनेके लिये मजबूर किया।

(111) प्राचीन स्लाव-रूसी, बुल्गर आदि जातियोंके पूज-प्राचीन स्लाव लोगों-में देवकल्पना उनके अपने ही समाजकी प्रतिच्छायाके तौर पर देखी जाती है। पितृपूजा, जातीय देवतायाँ, यह देवतायाँ, व्यवसाय संबंधी देवतायाँकी पूजा उनके धर्मका स्वरूप था। शोद्धा और व्यापारियोंका इष्ट तथा रिजली (अशनि) का देवता पेरुन वैदिक इन्द्रकी भाँति बहुत ऊँचा स्थान रगता था। उनके देवलोकके सभी ढंगले मृत सामन्तों तथा उनके दरारियोंके लिये रिजर्व थे। वहाँ पृथिवीके सामन्त प्रासादोंकी भाँति साधारण जनताको एक नजर भाँकनेका भी अधिकार न था। हिन्दुआदि पुराणों तथा दूसरे धर्म ग्रंथोंमें भी जो देवलोक मिलता है, उसमें भी इस बातका पूरा ध्यान दिया गया है। पीछे स्लाव लोगोंके पुराने धर्मकी जगहको जब इसाई धमने लिया, तिसके प्रचारमें स्लाव सामन्तोंने बहुत उत्साह दिखाया और तिसके फलस्वरूप वह और उनके वंशजोंने पीछे ज्ञानकी शाहशाहत कायम की। अब रूसी चर्च (धर्म) ने जारके दरार पर ही अपनी देवावलीकी रचना की, जिसमें

^१ Geschichte des altertums (Edward Meyer) IV p 140

जार था ईश्वर, जारिगा थी ईश्वरजी माता मरियम्, सन्त निकोला जैसे सिद्ध पुरुष जारके दबारी और मनी और सत मिखादल (परिस्ता) देव सेनानी जारका कमाडर इन चीफ था। रूसी भाषामें ईश्वरको गॅस्पद कहते हैं, और स्वामी (सर्) को भी गॅस्पदिन् , भगवान्को रॅग (सस्कृत, भग) कहते हैं और ऐश्वर्यको रॅगस्त । सस्कृत तथा हिन्दू देवशास्त्रके जाननेवालाको इसके लिये आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वैदिक आर्योंके सबसे नन्दीके युरोपीय भाई यहा प्राचीन स्लाव थे, जिनके ही वंशज आर्यके रूसी हैं । पाणिनिक वक्त (४०० ई० पू०) ईश्वर शब्द राजाका वाचक था, गुप्तकाल (४०० ई० ६०० ई०) में तो राजाकी उपाधियामें “परमेश्वर” ग्राम तीरसे ताम्रपत्राँ और शिलालेखोंमें उल्कीयँ पाया जाता है। ऐश्वर्य (ईश्वरता) तो आज भी देवलोक और मनुष्य लोकमें उसी अर्थमें विराज रहा है भगको ऐश्वर्यम् अर्थमें हमने धातुपाठमें पढ़ा ही है।

आदिम मानव-समाजके देवता मांस रुधिर गाते, सुर पीते नाचते गाते—सब कुछ मनुष्यकी तरह करते थे। यह ठीक भी है—“यदत्र पुष्पो ह्यग्निं तदन्नं तस्य देवता।”^१ यदि वैदिक कालमें श्राव्य लोग गायको मारकर उसके मांसको आगमें “स्वाहा” “स्वाहा” करते थे, तो वह उस गायको जिलानेके अभिप्रायसे नहीं, बल्कि अपने आहारको देवताओतक पहुँचानेके लिये। अस्तु, देवता खाने-पीने, नाचने गाने ही नहीं, सदाचार दुराचारमें भी मानवकी ही प्रतिकृति थे, और किसी जातिकी देव-गायासे हम उसके तत्कालीन समाजका चित्र बहुत कुछ खींच सकते हैं। भारतमें इन्द्रके द्वारा गौतम ऋषिनी स्त्रीका सतीत्व अपहरण एव प्रसिद्ध बात है, जिसमें जान पड़ता है, अहल्याका भी कुछ हाथ था, नहीं तो ऋषि उसे शाप न देते। इन्द्र हमारे लिये श्राव

^१ “जो भोजन पुरुष खाता है वही उसका देवता भी”।—जातक १०६

निस्मृत-सा देवता है, इसलिये इस दुराचारको वह महत्त्व नहीं दिया जाता, किन्तु हमें स्मरण रहना चाहिये कि जिस समयकी यह बात है, उस समय इन्द्र सर्वोपरि देवता—देवानिदेव—था, विष्णु और शिव ही नहीं, ब्रह्माकी भी उस समय कोई पूछ नहीं थी। हमारे इन्द्रदेवता तो श्रद्धालुके ही जार भर ही बनकर रह गये, किन्तु मूनानियेके देव पितर—जेउस्ने तो राज्य ढाया। वह गनिमेदे नामक एक बालकपर मुग्ध हो, उसके साथ ग्रामाकृतिक व्यभिचार करता था। उस पक्षने मूनानी भद्र समाजमें यन् रोग बहुत बढ़ा हुआ था, जिसके छींटेमे बेचारा जेउस् भी बच नहीं सका। आज भारतमें रामजी-कृष्णजीको भी वैसा बनानेकी चेष्टा, उनी दूषित मनोवृत्तिको पूकट कर रही है।

व्यापारियोंकी प्रधानतामें देवशास्त्रमें एक कल्पनाका और आविष्कार हुआ, और यह है निराकार ईश्वर-कल्पना। इस कल्पनाके स्रोतको दूँते हम सिक्केपर पँचते हैं। सिक्केके रूपमें एक सर्व शक्तिमती सत्ता विराज रही है, जिससे मनोनाद्धित फल प्राप्त किया जा सकता है। इस दया धमने आज राम-नामके मन ही जारी नहीं किये, बल्कि खुद निराकार इश्वरके खालको ढक करनेमें भी इसका समसे उड़ा हाथ है।

(15) भारत—भारतके धर्म तथा देवताओंका खास तौरसे निरूप करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि उनकी कुछ बातें पहिले आगई हैं, सिर्फ देव-कल्पनामें परिवर्तन होनेके दो-एक दृष्टान्त दे देते हैं। बुद्धके वनमें राजतर तथा प्रजातत्र दोनों तरहके शासन मौजूद थे, जिनमें स्वयं प्रजातत्रमें उत्पन्न तथा साम्यवादी जीवनके प्रशासन होनेसे वह प्रजातत्रवादके प्रति ज्यादा पक्षपात रखते थे। यह उस बातसे साफ हो जाती है, जो कि उन्होंने लिच्छविरि प्रजातत्रसे अनेक बार हारे, किन्तु फिरसे आक्रमणकी तैयारी करते मगधराज अजातशत्रुके मनीके प्रश्नके उत्तरमें कही थी। यह वात्तालाप महापरिनिर्वाण धर्ममें मौजूद है। इसमें बुद्धने लिच्छवियोंको अपराधेय कहना चाहा है—हाँ, कुछ शर्तोंके साथ। मान्य

समान और देव-भमात्र एक दूसरेसे कितना सादृश्य रखते थे, यह उद्ग के इस वाक्यसे भी मालूम होता है, जिसे कि "दूसरे ही लिच्छत्रियोंना आते" देखकर उन्होंने कहा था—^१

"अवलोकन करो, भिक्षुओ ! लिच्छत्रियोंकी परिपक्वो । अवलोकन करो, भिक्षुओ ! लिच्छत्रियोंकी परिपक्वो । भिक्षुओ ! लिच्छत्रि-परिपक्वा नायस्त्रिंश (देव)-परिपद् समभो ।"^२

उस वक्त लिच्छत्रि जिस भेष-भूषामें थे, उसका चारोंपट्टा कहा गया है—“सुन्दर चानापर आन्ध नीले=नीलवर्ण नीलवस्त्र नीलअलंकार वाले पीले=पीतवर्ण पीतवस्त्र पीतअलंकारवाले लाल=लोहित वर्ण लोहितवस्त्र लोहितअलंकारवाले श्वेत=श्वेतवर्ण श्वेतवस्त्र श्वेत अलंकारवाले ।”^३

हिन्दुधर्म इन्द्र, वरुण जैसे देवताओंके प्रभाव कम होनेका कारण सबसे बड़ा यह था कि इन देव-परिपक्वोंमें लोकतंत्रता जबरनमे ज्यादा थी, जिसके कारण हिन्दू निरंकुश शासक उसको पसंद नहीं कर सकते थे । पुरानी देवावला तथा पुराने प्रजातंत्रोंके ध्वंसके बाद जब तीसरी-चौथी शताब्दी ईसवीमें भारतिय, गुप्त जैसे नये हिन्दू राजवशाकि समय नये देवशास्त्रा—पुराणों—का निमाण होने लगता है, ता बेचारे श्रुग्वेद तथा कुछ तो उससे भी पहिलेसे चले आते देवता जाति-बहिष्कृत किये जाते हैं, और उनकी तगड़ शिर (भारतियोंके इष्ट) और पिण्ड (गुप्तोंके इष्ट) देव सर्वेसवा बना दिये जाते हैं । इस नई व्यवस्थानी पुष्टिके लिये यहाँ भी वैसी ही कथायें गयी जाती हैं, जिनका कि हम वारुणके महुँके बारेमें कह आये हैं । हिन्दू धर्मना नावम यदि लोगनी साइया

^१ देखो, “दीपनिकाय” (हिन्दी) पृष्ठ २१३ तथा “बुद्धचया” पृष्ठ ५२० ८७ ^२ वहीं पृष्ठ ५३५

सोदर देखें, तो यहाँ हमें बहुतसे देवता फोसीलके रूपमें मिलेंगे। इन देवताओंमें मणिभद्र यक्षकी कल्पना कहाती सुनकर किमके दिलमें चाट न पहुँचेगी। मणिभद्र बुद्धशालीन उत्तरी भारतके अत्यन्त प्रतापी देवताओंमें था। अभी उस समय (५०० ई० पू०) तक शिव और विष्णु किसी गिनतीमें न थे। दक्षिणी युक्त-प्रान्तमें इसा पूव द्वितीय शताब्दीकी एक पाषाण मूर्तिकी आमन मिला है, जिसपर भगवान् मणिभद्रका नाम खुदा है। फिर दण्डी (६०० ई०)ने दशकुमार-चरितमें मणिभद्र यक्षकी कल्पना जिक्र किया है—यक्ष कहनेने नाक भौं न सिनेडिये, पालीमें इन्द्रको भी यक्ष कहा है, और उससे पहिले उपनिषद्में भी यक्ष उसी अर्थमें व्यवहृत होता था। सरसे पीछे मणिभद्र का नाम नया-दसरीं सदीमें कर्जिजरने राजाओंके समयमें लिखे नाटकों में मिलता है। दसरीं सदीके बाद भारतमें तो मणिभद्रका पता नहीं मिलता, हालाँकि ल्हासा (तिब्बत) में भेने साधुनियोंको गृहस्थाकी रक्षाके लिये मणिभद्रकी गुहार करने देना है।^१

(४) पूर्व और पच्छिममें धार्मिक प्रतिक्रिया—कितने ही भारतीय इस गलतीमें हैं कि उनका ही देश एक मान धर्मप्राण है, और यूरोप सारा नास्तिक ही गया है—इस गलत धारणाको निप्लिड् और सर राधाकृष्णन् जैसे लेखक मजबूत करते हैं। सर राधाकृष्णन्का कहना है—^२

“पश्चिमी सभ्यताकी मुख्य प्रवृत्ति है मानव और इश्वरके बीच निरोध—यहाँ मानव ईश्वरकी प्रभुतासे मुक्तानिला करता है, मानवताके लाभके लिये उसी इश्वरसे अग्नि [शक्ति] चुराता है। भारतमें मानव भगवान्की उपज है।”

^१ दीर्गनिहायके “आटानाटिय मुक्त”में ऐसे बहुतसे देवता मिलेंगे, जो बुद्धने समयमें जीवित थे, किन्तु आज मर गये, या निरासित हैं।

मानवकी उपज भगवान् है, यह मुँहसे तब न निकलता, जब कि पूरे वेदान्ता हाते। दो नावापर चढ़ना इसीको कहते हैं। खैर, आगे मुनिय—

“भारतीय सस्कृति तथा सभ्यताकी सफलताका रहस्य है (उसका) अनुदात्मक उद्धारवाद।”^१

भारतीय सभ्यता और सस्कृतिने हिन्दुओंमेंसे एक तिहाइको श्रद्धत बनानेमें जिस तरह सफलता पाई ? किस तरह जाति भेदको ब्रह्मने मुपासे निकली व्यवस्थापर आधारित कर जातीय एकताको कभी बनने नहीं दिया ? जिस तरह “सबश्रेष्ठ मानवको कपिला गाय और वानर इन्मान्” के सामने घुटने टेकनेके लिये तैयार किया ? जिस तरह पाप दूर करने के नामपर गोरर और गोमूत्र पिलाये ? किस तरह पेशाव पाराना तकको भक्ष्य बना सिद्ध बननेका रास्ता साफ किया ? किस तरह अपनी आधी सख्या—स्त्रियाँ—को मनुष्यके प्रारम्भिक अधिभारसे भी बचित कर उन्हें पुरुषोंके पैरामी जूती बनाया ? जिस तरह चौदहसौ वर्षोंतक सतीत्वके नामपर करोड़ों-करोड़ तरुण जाननाका आगम जलाया ? जिस तरह सत्तर वर्षके बूढ़ोंको भी कलकी रूचीसे शार्दी करनेकी खुली इजाजत दे, पाँच वर्षकी विधवाको आन्म वैधव्य पालन करना मनवाके छोड़ा ? जिस तरह उच्च जातिवालाके घर घरमें बीसवा सदीके जुहुत पहलेसे गम मूव तथा सन्तति निग्रहना श्रद्धुत पाठ पढाया ? और किस तरह यह सब कुछ देखते भी मानवना “डुकडुक दादम् दम् न कशीदम्” के मोहन मन्म पैसा रग्या ? जिस तरह जाति—बहुजातिक जाति—की जातिको ऐसे लोपसे लोपा, कि सभी गहरी लोपके देखनेमें भगन हैं, कोई भीतर की धनी कालिमाका देखना नहीं चाहता ? किस तरह उसने सश

^१ The Conservative liberalism—वहाँ p 46

चार दुराचारका इतना "वैज्ञानिक" विभाग किया, कि दोनोंकी सीमायें एक दूसरेसे मिलने नहा पातीं ।

यह सब "अनुदारात्मक उदारवादसे" है और इसलिये कि "भारतमें मानव भगवान्की उपज है" ।

यह हम मानते हैं कि सर राधाकृष्णन् जैसे भक्ता और दार्शनिकाने शताब्दियोंसे भारतकी ऐसी रेड मारी है, कि वह जिन्दासे मुर्दा ज्यादा है । उनके सम-व्यवसायियोंको इस सीमातक पश्चिममें सफलता नहा हुई, जिससे क्रांतियाँ नीच-नीचमें आकर सफल होती रहीं, और आजका यूरोप जहाँ दासता, तथा सामन्तवादसे आगे पूँजीवादमें भी निम्नकर समाजवादमें जा चुका है या जानेकी तैयारी कर रहा है, वहाँ भारतकी सातसौ गुडियाँ खरोटा सजीव आदमियोंपर निरकुश शासन जमाये रखनेका मसूया रीध रही है, और हिन्दू भक्ता तथा दार्शनिक उनका नान्दी पद रहे हैं । इतना होते भी यह समझना गलत होगा कि यूरोप ऐसे मनोसे चाली है ।

(ईश्वर)—ईश्वरके ही विचारको ले लीजिये, इतिहासकी प्रगति जिस तरह गलती करते करते आगे बढ़ती है, उससे साफ है कि विश्वके पीछे काइ अतिमानुष चेतन शक्ति नहा, जो कि एक खास योजनाके अनुसार विश्वको एक खास रास्तेपर ले जाती है । भले इस दूसरे विश्व युद्धके तीसरे वर्षमें धर्माचार्य लोग धर्मके प्रोपेगण्डाका मौवा देखकर जप तर प्रार्थना दिन मुकर्रर करते रहें, किन्तु जिस तरहकी मारकाट आज मची हुई है, वह किसी भी सहृदय सवशक्तिमान् ईश्वरके जीवित रहते नहा हो सकती । युद्धमें जो कुछ बीत रहा है, उसे देखते रहनेवाला ईश्वर या तो नितान्त मूर है, अथवा बेबस, और ऐसे ईश्वरको मानने, उसकी स्तुति करनेसे उसकी ओर मुँह भी न फेरना अच्छा है ।

यस्तुत, जैसा कि पहिले मतला चुके हैं, विश्व विरोधिसमागमसे गुणात्मक परिवर्तन द्वारा पहिलेसे अनिश्चित दिशाकी ओर बढ़ता जा

रहा है। इस परिवर्तनमें मनुष्यका भी भाग है, जो कि अपनी चेतना अपनी क्रिया शक्ति का इस्तेमाल करता विश्व विकासमें सहायक बनता, तथा कितनी ही दूर तक कारण-सामग्री पर नियंत्रण करनेमें सफल होता, उसके अनुसार परिणामकी दिशा तथा प्रायिकताको अपने अनुकूल रखनेमें सफल होता है। भाव एक समय ईश्वरके ख्यालसे इतना प्रभावित हुआ था, कि सन-कुछ ईश्वरके हाथमें सौंप देना ही उसे ज्यादा बुद्धिमत्ताकी बात मालूम होती थी। लेकिन जब तक और बुद्धिपी मार पड़ी, तो भारतकी भाँति मध्यमालीन यूरोप या भारतके ये तार्किक हर एक कार्यके पीछे एक कारणको ढूँढते, और कारणोंकी बे प्रन्त परपराको माननेकी जगह वह परम-कारण—ईश्वर—पर जाकर रुक जाते थे। यदि कोई उसके पीछे भी कारणको पूछता, तो मार्गाको जैसे राजपल्कनयने ऐसे प्रश्न पर सिर गिर जानेकी धमकी देकर रोका, उस तरहना तो नहीं, किन्तु कोई वैसा ही तार्किक गहाना जरूर ढूँढ लेते थे। लेकिन हमने पहिले उतलाया, कि काइ काय सिफ एक कारणसे नहीं होता, बल्कि उसके पीछे कारण-सामग्री (कारण-समुदाय) रहता है, ऐसी अग्रस्थायम काय-कारण नियमसे किसी एक कारण पर नहीं, बल्कि कारण-सामग्री पर पहुँच सकते हैं, फिर ईश्वरके निन्द्य होनेकी वहाँ सम्भावना है।

फरनी कथनीके एक होनेकी बात हम पहिले कह आये हैं। उनियाम ऐसे विद्वान् काफी मिलेंगे जो ज्ञानमें पंडित हैं, किन्तु उनकी करनी—सब नहींतो रितने ही—का ज्ञानसे कोई संध नहीं। मेरे मित्र डा० का० प्र० जायसवाल गडे ही गम्भीरपन्न थे, और इतिहासके तत्त्वदर्शी होनेसे ईश्वर पर उनका विश्वास नहीं रह गया था, किन्तु फलित ज्योतिष पर उनका पूरा विश्वास था, और ज्योतिषियोंका उनके यहाँ बहुत मान था। बात करने पर वह मानते थे कि एक समानतादी समाजमें—जहाँ कि बाल बच्चोंकी शिक्षा या ब्याह तथा अपने या स्त्राको बेमार-बीमार होनेकी खानीय-दशामें नहा पटना है—फलित ज्योतिषकी पूछ जाती रहेगी।

शायसवालजीकी एक और वह तार्किक स्वतंत्र प्रतिभा जिसने कितनी ही विद्वानकी उलकी गुत्थियोंको सुलझाया, वही इस फलित ज्योतिषके बारे-तना कच्चा डिफ्ला, यह देखकर काफी सावधान रहनेकी जरूरत है। तमान शताब्दीके शुरूमें मौजूदा फ्रान्सका प्रसिद्ध गणितज्ञ एमिल लामोरियन भी हस्तरेखा आदि मिथ्याविश्वासोंका शिकार था। और इसके नोबेल पुरस्कार विजेता सर आलिवर लॉज पुत्र प्रियोगसे इतने रेशान हुए कि प्रेत विद्या—मृतात्माओंसे बातचीत करने—के फन्देमें गढ़ाए होनेसे राज नहीं आये। यही हालत पानी-बौद्धधर्मकी प्रसिद्ध पडिता मिसेज रीस्डेविस् की हुई,—पिछले युद्धमें उनका लडका मारा गया, तिसपर वह प्रेत विद्याके पीछे इतना पडीं कि अपने विद्या सम्बन्धी कार्यों और पुरानी पुस्तकाने सम्पादन तन्म प्रेतोंकी सहायता लेनेसे राज नहीं आई।

एक तरफकी पडिताई और दूसरी तरफ चिराग तले अंधेरेके ऐसे उदाहरण सेन्डों नतलाये जा सकते हैं। गुरुत्वाकर्षणका ग्राविष्कारण सर आइजक न्यूटन (१६४२-१७२७ ई०) एक युग प्रवर्तक विद्वान था, इसमें सन्देह नहीं, गणित तथा यत्र शास्त्रकी पडिताइसे वह गुरुत्वा-कर्षण विद्वान्त पर पहुँचा। न्यूटन अपनी विद्यासे एक और निश्चके नियमोंको समझाने मनुष्यको अपना मालिफ बनाना चाहता था, वही न्यूटन दूसरी ओर बाइबलके पैगम्बर दानियलकी भविष्यद्वाणियों पर भारी मत्था-पच्चो कर रहा था कि कब वह भविष्यद्वाणियाँ पूरी होने जा रही हैं।

दुनियामें ऐसे विरोधि-समागमनों देखकर हमें कितना सावधान रहनेकी जरूरत है, इसे आप खुद समझ सकते हैं, राखकर ऐसे ग्राइ-मियमि जो कालेज और प्रयोगशालामें तो होश-दगम-दुरुस्तसे मालूम होते हैं, किन्तु जो शुक्र, रवि या सामके—सोमवार राशी विश्वनाथकी पूजाका दिन है—दौरमें न जाने क्या कर बैठें, इसका ठिकाना नहीं

है। ऐसे लोग एक पैर तो बाणवी गद्दीमें हैं, किन्तु उनका दूसरा पैर बाते युगमें अथ भी अरबों की स्थिर सम्मत्ता है। यह लोग वहीं सम्मत्ता, विपत्तीयुक्त मूढ़ विज्ञानधर्मात्ता सम्मत्ता कर यह उन सम्मत्ता सम्मत्ता कर रहे हैं, जिसका अर्थ अथ भी बहुत बारी परिमाणमें भारतमें है, और उसकी दृष्टि भारतीयों भारी गंभीर शान्ति, परतन्त्रता तथा शांति विद्वत्त्वान् दलदलम वैभव मनुष्यताही अस्तिविद्युत्ता गद्दी रह ग। हार्लैंडके गद्दी धर्मिक एक प्रतिभाशाली प्रावेमरणा कहता है।—

“वैश्वानर विचारके (1) गद्दी [है], जो कि ऐसे वैश्वानर शांति पैदा कर रहे हैं, जिनकी सहायतासे ऐसा शांति वैभव विद्युत्ता सम्मत्ता है, जिनमें अस्तिविद्युत्ता, मानव प्रकृतिसे सम्मत्ताके साथ वैश्विक तरीकमें इस्तेमालकर [बहुत दुनिया बना] गद्दी है—[किन्तु यह ऐसा ग कर उसमें उलटे पक्ष से ले जाके लिये हैं], शांतिसे परिरोधसे युक्त दर्शनके शब्दोंमें यह करके लिये उतारते हैं, कि सभी (जा) भूखी माया है, अ बुद्धिही विद्युत्ता है, प्रकृति मूलाधार अ-वास्तविकता है। शांति जगत्त उनका जो महत्वपूर्ण स्थान है, उनकी सहायतासे हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि जगत् एक गणितानुसार ईश्वरके जगत् अ-बुद्धि तन्त्र [माया] की प्रतीक मान है। हमलोगोंमेंसे जो सामाजिक [कर्मव्यक्ती] चेतता रखनेवाले लोग हैं, और जो मानवकी शांति-संरक्षी सफलताओंके द्वारा दक्षिणकी शान्ति तथा शांति सातनाथों, बेनारी, तथा विश्व व्यापी बुद्धि हीकारीको दूर करके आशा रखते हैं, उनके लिये [बुद्धे शांति-वेत्ताओंकी यह हर्षणें] अस्तिविद्युत्ता , और इस ललकारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।”

सर राधाकृष्णन् जैसे लोग भी भारतमें शोषणके पोषणके लिये बड़ी काम कर रहे हैं, जो कि हार्लैंडमें वहाँके शोषक प्रभुत्वके स्वार्थो-

¹A Philosophy for A Modern Man (by H Levy Gollancz London 1938) p 165

का रक्ताने सर आर्पर एडिग्टन जैसे वैज्ञानिकाना रहा है, और पूर्व-पश्चिम
 दिशाक इस तरहके लागोके सामने यूनानी कवि सोफोक्ल (६० पू०
 पूर्वका सदी) के ये वाक्य मदा रहने चाहिये—“धारा जगत् ध्वस्त
 हो जायेगा, यदि धर्म उठ गया, क्योंकि आचार और राज्य-सन्धी
 नवतथायें देवताओंकी इच्छापर निर्भर हैं।”

(५) जीव अजर अमर—जीव शरीरसे अलग एक अजर अमर
 वस्तु है, इस कल्पनाको भारतमें बहुतसे लोग स्वयम्बिद्ध समझते हैं।
 आर्ययज्ञ पुरुष तथा बौद्धिक विकासमें पिछड़ी जातियाँ जीवको शरीरसे
 भिन्न नहा समझतीं। लिब्यतके सानाबदोशा तथा मध्यप्रदेशके
 गलगुसियाके फोटो लेनेका जिनको तजना है, वह नतलायेंगे कि
 फोटो 'देने' के लिये ये लोग राजी नहीं होते। उनका क्याल है, फोटो
 का त्रिकुल शरीर जैसा होता है, उसमें अपने शरीर (आत्मा) का
 कुछ भाग जरूर चला जाता है, जिससे आयु कम हो जाती है।
 जानके अजर अमर होनेका क्याल सन्से पहिले प्राचीन मिस्रमें दिखलाइ
 पड़ता है, जिसका यह मतलब नहीं कि और जगह दूसरी जातियोंमें
 यह ख्याल भिन्न हीने गया।—वैसी परिस्थितियोंमें दूसरी जगह भी
 वह क्याल पैदा हो सकता है। मिस्रमें भी राजाओंसे इसका आरम्भ
 मालूम होता है। फरा (मिस्री राजा) के शवोंको सुरक्षित रखनेके लिये
 नितना आयोजन मिस्रमें किया गया, उतना कहीं भी नहीं देखा
 जाता। मृत शरीरको सड़नेसे बचानेके लिये मिस्रियाने ऐसे मसाले
 ढूँढ निकाले, जिनकी बन्हमें चार-चार हजार वर्षकी सुरक्षित मम्मियाँ
 (शव) यहाँसे मिली हैं। शवोंके रखनेके लिये उ होने चौपहलू शृंगवाले
 वे विशाल पाषाण पिरामिड बनाये, जो आज भी दुनियाके आश्चर्योंमें
 गिने जाते हैं। इन पिरामिडोंके बनानेके लिये देशकी सम्पत्ति वा
 श्रमका सन्से बड़ा भाग खर्च किया जाता था। इसके लिये दास-दासियों
 तथा सामारण प्रजाको निम्न तरहका जीवन पिताना पड़ता रहा होगा,

हमें आप खुद अनुमान कर सकते हैं। पुगने मिस्त्री श्रमी आत्माको पूरी तौरपर शरीरसे अलग नहीं कर पाये थे, इसलिये उन्हें जहाँ का (जीव), उसकी छाया तथा तामका अन्त अन्तर करारी पित्र थी, वहाँ शरीरको भी सुरक्षित रचना पडता था।

प्राचीन यूरोपीय तथा हिन्दुओंको आत्माके शरीरसे अलग होने पर ज्यादा विश्वास हुआ, इसलिये उन्होंने शरीरको बेकार समझ उसे जला डालोकी प्रथा जारी की, हिन्दु गुरु पुराने जमानेमें इमका आरम्भ भूतकर खानेमें भी हो सकता है। बिना ममातेवाते शयको क्रममें दमानेवाली जानियाँ इस विचारने प्रेरित हुए, कि क्यामतके दिन सब मल गये मुझे भी जिंदा हो उठेंगे।

अपलान्तु आत्माके तीन भाग माता था— (१) नैदिक भाग जिसका प्राक्थ्य बुद्धि है, (२) आध्यात्मिक भाग, जिसका प्राक्थ्य बहादुरी, हिम्मत आदि हैं, तिनसे बुद्धिका सन्ध नहीं, (३) शौदारिक या स्थूल भाग—लोभ, द्वेष आदिका सन्ध इस भागसे है। अपलान्तुने इन तीनों प्रात्म भागोंकी क्रमश मानव, सिंह तथा गृहशीर्ष राजससे उपमा दी हैं।

अपलान्तुके समय (४२७-४७ ई० पू०)के आसपास ही मारडूक्य उपनिषद् लिखते वक्त उनके उक्ताने भी जीवके तीन स्वरूप माने— (१) जाग्रत अवस्थामें स्थूल आहार करनेवाला वैश्वानर, (२) स्वप्न अवस्थामें तेजस, और (३) सुषुप्त (गह्र निद्रा) अवस्थामें आनन्द भोजी प्राण।

भौतके भी अपलान्तुसे प्रभावित हो आत्माके तीन रूप बतलाये हैं—(१) इह अनीदिक वेदोशासा आत्मा, जिसका सम्बन्ध शारीरिक तृष्णा या भोग लिप्तामे है, (२) इगो (अह) या आत्माका पृथक्ता सचेतन अश, जो कि गुरुत बुद्ध बुद्धि-युक्त है, वही शरीर और बाहरी

वगत्से सम्बन्ध करता है, (३) परम इगो (परम अहकार), जा कि बहुत कुछ निश्च (क्रिय) चेतन प्रन्तरतम स्तर है, जिसके भीतर युगाकी अनुभूति और सस्कार निहित हैं ।

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही आत्मा-सम्बन्धी मन हैं, जिनमें कुछ (हिन्दू) आत्माको अनादि अनन्त मानते हैं, कुछ (इस्लाम तथा दूसरे सामीय धर्म) सादि अनन्त मानते हैं, कितने ही प्रत्येक आत्मा (जीव)को न्याय-दर्शनकी भाँति सर्वव्यापी मानते हैं, कितने ही वादरायण, रामानुज और दयानन्दकी भाँति अणु एतद्देशीय, कितने ही जैनोंकी भाँति हाथीके शरीरमें हाथीके बराबर आत्मा और चींटीके शरीरमें चींटीके बराबर उन जानेवाला आत्मा मानते हैं । कुछ सौदर जैसे दार्शनिक आत्माको नहीं मानते तथा अपनेको अनात्मवादी घोषित करते हैं, तो भी एक तरहके जन्मान्तर या परलोकको स्वीकार करते हैं ।

हम अपने दूसरे ग्रन्थ^१ में बतला चुके हैं, कि किस तरह भारतके सामन्त शासकोंने दुनियाम विद्यमान दरिद्रता, विपमता, शोषण शोषितके भेद तथा अपने प्रभुत्वको कायम रखनेके लिये वैदिक परलोकको पयास न समझ शोषित जनताके लिये पुनर्जन्मके पन्देको तैयार किया, और उपनिषद्के ऋषियाँ तथा बादके धमाचार्योंने उसे मजबूत किया । आज तो कितनी ही जगह पर पूर्वजन्मकी याद रखनेवाले बालकोंकी जगदस्त प्रदर्शनियाँ भी की गई हैं—और क्या न हो, पूर्व जन्मकी कमाईके नामसे मुफ्तकी मिली सम्पत्ति और प्रभुताके औचित्यको सिद्ध करनेका इनका उडा हथियार कैसे छोडा जा सकता है ! कितनों हीने तो इसे आमदनी का अच्छा जरिया समझा है । इनके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसी घटनायें भी हो सकती हैं, जिनके वैज्ञानिक निरलेपण न होनेसे भी कुछका अर्थ

लगाया जाने लगता है। मेरे एक दाम्नी स्त्री अपनी एक लड़कीने वारंभ कर रही थी, कि यह पुत्रप्राप्त करनेमें कुछ पहले मर गये भाई की बानें गलाती थी। उनके पंमें लड़कियाँ कद थीं, किन्तु लड़का एक ही पुत्र था, जोकि कुछ वर्षोंग ही होकर मर गया। नन पूजा—पत्नीने गर्भमें रहते वक्त आपरा। स्या यह रचना याद आता था। उन्होंने कहा—याद है मेरी ता बड़ी साध ही थी कि बेगना था। यह नई समस्या है—गमावस्था, गर्भाधानका अस्थानमें प्रोमोमोममें अस्थित जेनम् (जनन बीज) में क्या काइ इस तरहका उत्कार पैदा किया जा सकता है ? आनुवंशिकताके वाहक यही जेनम् है। अपनी इनमें संबंधकी गायदशा विद्यने प्रीस सालोसे दाने लगी है। रैजिनिगो: इा अचेष्टणाम कितानी कठिनाई उठानी पड़ रही है, मानव दीन की प्रौर रच-अटक नाभि-अणुमें अवस्थित प्रोमोमोम तथा जेनम् (जनन बीज) के इस परिमाणसे जान सकते हैं—

	व्यास	भार
प्रोमोमोम	१/६००० इंच	
जनक बीज		४ परमाणु
परमाणु (साधारण)	१/१० करोड़ इंच	१/५ लान्न-लान्न अथवा तोना

यह भी ग्याल रत्ता की बात है, कि पूर्वजमकी स्मृति रखनेवाले लडके सिर्फ उन्ही घराम पैदा होते "पाये जाते" हैं, जिाने यह पुनर्जन्म का विश्वास बहुत जर्दस्त है।

पुनर्जन्मके शारंभ तो बहुतमे मजहन सहमत नहीं हैं, किन्तु नित्य आत्माकी सत्ताको अभिर्नाश ही स्वीकार करते हैं, हाँ आत्माने लिये अपनी परिभाषा एक नहीं है। यह एकता सिर्फ यही बतलाती है, कि सत्ता आधार और उद्देश्य एक हैं, और वह है ठोस साकार दुनिया

और उसके जीवन तथा सामाजिक अन्यायसे लोगोंके ध्यानको हटाना, एव आत्मा और शरीरके उदाहरणसे बगभेदको समाजम कायम रखना। इसलिये साइंस वेत्ता हेल्डनके शब्दोंमें हम सावधान रहना चाहिये।^१—

“जिनको आत्माकी अमरतापर विश्वास है, वह भी स्वीकार करगे, कि इस सिद्धान्तके मरने और जीते रहने पर अत्यन्त शक्तिशाली (बग) स्वार्थीना मरना जीना निभर है, और इस सिद्धान्तका विश्वास ज्यादातर भावुकता तथा सामाजिक दबावका परिणाम है।”

ख आचार-विचार

वैज्ञानिक भौतिकवादियोंपर ‘धमात्मात्रा’ की आरसे आक्षेप होता है कि ये लोग आचारके शत्रु हैं, इसके उत्तरमें लेनिन्ने लिखा है—^२

“आमतौरसे पूँजीपति कहते हैं, कि कम्युनिस्त सभी (तरफके) सदाचारोंको नहा मानते। यह असली बातको ध्वजपचम डाल देनेका उनका तरीका है, जिससे वह मन्दूरों तथा किसानोंकी आँसुओंमें धूल डालना चाहते हैं। किस अर्थमें हम आचार नियमसे इन्कार करते हैं? इसी अर्थमें कि ये आचार नियम भगवान्के विधान हैं।”

१ आचार परिवर्तन शील

वैज्ञानिक भौतिकवादके दार्शनिक विचारसे अनुप्राणित समाजवादी आन्दोलन, आराम-कुर्मीपर बैठकर लेखकर भाड़नेवाले वाक्शूर राज नीतिशाही राजनीति नहीं है, इसमें पडोसालोका आगसे खेलना होता है, फिर वहाँ आचार हीन पुरुषकी टोंग फेंसे ठहर सकती है? वा-सधप

^१The Marxist Philosophy and the Sciences p 130

^२ Lenin On Religion

एक ऐसा मछी है, जिसमें वह श्यादमी टिक नहीं सकता, जिसमें जगदल नैतिक प्रल नहीं है। लाप्रांकी तादादम जा कमूनिस्त हसते-हसते स्न, प्रास, और रूसमें फामिस्तानी गोलियाके शिकार हुये, उन्हें आगरीन रहनेवाले कौन है, जस उनके चेहराको देखिये तो। निर्लज्जताकी शक्ति रह भी कोई है। ये रिजड़े, कायर, लपट, पतित, मर तरहरी इमानदारी से रहित, नीच, स्वार्थी, मानवताके कलर उन कमूनिस्तापर हमला करने चले हैं, जो जगत्म स्वाथ और लोभकी जगद मानवताकी बेलका अपने लूनसे सावर लगा रहे हैं, जिनकी कुबानिया और बगदुराके कारनामासे इतिहासके सभसे मुन्दर पृष्ठ लिखे जा रहे हैं।

कमूनिस्त सचमुच ऐसे सदाचारका मिल्लुल माननेके लिये तैयार नहीं, जिसकी मशा कुछ व्यक्तियोंकी स्वाथ मिद्रि है। उनके सदाचारकी नीस फिसी इश्वरीय विधाग या अल्हाम पर नहा, रन्कि बुद्धके शब्दोंम “बहु जनहिताय बहुजनसुखाय” है। समाजके स्वाथको यह व्यक्तिके स्वार्थके ऊपर मानते हैं। वर चाहते हैं व्यक्ति खुशासे अपने ता मलिक गुण और जीवन तनको भी धर्म-मधर्ष, क्रान्ति तथा नये ससारके निमायके लिये त्याग करे। समाजवादी सदाचार इसी बेहतर दुनियाकी स्थापनाके लिये निरोधियाके मुनासितेमें किये जायेवाले धर्म सभर्षके समय प्रकट होता है, और उसकी पूर्णता समाजवादी समाजकी स्थापना होने पर होती है।

२. प्राचीन भारतमें यौन सदाचार

धमात्मा लाग जिस वक्त सदाचारकी बात करते हैं, उस वक्त उनके ख्यालमें रहता है, कि सदाचार एक ऐसा अचल अटल विधान है, जो कि सभी देश कालमें एकसा बना रहता है, किन्तु यह धारणा मिल्लुल गलत है। उत्तरी भारतम मामा पूषीसी लहरी सगी बहिनके समान मानी जाती हैं, जसकि उडीसा और गुजरातसे ठक्कितन, उन्हें व्याहनेका

हम सभसे पहिले हमरे फुफेरे-भाईको होता है। और प्राचीन भारतके सदाचारको चाहते हैं, तो पुरानी पुस्तकाँको उलटकर देखिये, मंने इनके बारेमें 'अन्यत्र' कापी लिखा है, वहाँ उससे कुछ पकियाँ उद्धृत करता हूँ—

“नदी पार होते-होते पराशरका सत्यवती (मल्लाहपुत्री) के साथ समागम प्रसिद्ध है”^२। यद्यपि यहाँ ग्रथकारने पराशरकी दिव्यशक्तिसे दुहरा पैदा कर लज्जा डाँङनेकी कोशिश की है, किन्तु उत्तप्यपुत्र^३ दीर्घतमा—ऋग्वेदके कितने ही सूक्तनि कर्त्ता तथा पीछे गोतम नामसे प्रसिद्ध गौतम-गोनियोंके प्रथम पूज— ने लोगोंके सामने ही स्त्री समागम किया।

“उस पुराने युगमें ऋतुकालके अवसर पर स्त्री किसी पुरुषसे रतिकी भिक्षा माँग सकती थी। शर्मिष्ठाने दूरी तरह ययातिसे रति भिक्षा माँगी^४ थी। यही नहीं, ऐसी भिक्षाका देना न स्वीकार करनेपर गर्भपातके समान पाप होता है, यह भी वहीं^५ उतलाया गया है। उल्लूपीने भी अर्जुनसे रति भिक्षा माँगते हुए कहा था कि स्त्रीकी प्रार्थना पर एक रात का समागम अधर्म नहीं^६। उक्त कने ऋतुशान्तिके लिये अपनी गुरु स्त्रीके साथ गमन किया, और उसे बुरा नहीं समझा गया^७। चन्द्रमाने अपने गुरु बृहस्पतिकी भाया ताराके साथ रति की, जिससे बुध पुत्र हुआ। गौतमकी पत्नी अहल्याका इन्द्रके साथ सगंध प्रसिद्ध है, किन्तु गौतमने अपनी पत्नीको सदाके लिये त्याज्य (तिलाकके योग्य) नहीं बनाया।

“महाभारत कालमें विवाह-बधन कितना शिथिल था, इसके कितने ही उदाहरण तो कुमारी कयात्राके प्रतिष्ठित पुत्र (कानीन) हैं। पाटनौनी माँ कुती जब कुमारी थी, तभी उससे कर्ण पैदा हुआ था।

^१“मानव समाज” पृष्ठ ६६। ^२महाभारत, आदिपर्व ६३। ^३वहीं १०
^४वहाँ ८२। ^५वहाँ ६३। ^६अनुशासन पर्व १०२। ^७वहीं ३।

कुमारों गंगामें शन्तपुत्रे भी-मको पैदा किया था । पराशरने कुमारी सत्यवती (मत्गाह पुत्री) से व्यासका पैदा किया था, पीछे यही सत्यवती शन्तपुत्री रानी बना । कुन्तीकी सीता माद्रीकी गामभूमि मद्रदेश (संमान स्थालकायक आसपासके जिले) के उन्मुक्त स्त्रीपुरुष संवधकी पत्नी बड़ी फटी आलोचना का है । मद्रदेशमें पिता, पुत्र, माता, माम, समुर, मामा, जमाद, बेटी, भाद, पाहुता, दास, दार्गीका यौग सम्मिश्रण बहुत ज्यादा था । यहाँका स्त्रियाँ मन्वद्धा पूजक पुष्प सद्व्यास करती । अपरिचितके साथ भी प्रेमके गीत गाती । गधारियाँही भाँति मादरियाँ भी शराब पीती, नाचती । यहाँ वैशाखिक मन्ध नियत न था, स्त्रियाँ मनमाता पति करती । एक स्त्रीने बड़ पतिका उदाहरण प्रातःस्मरणीय पत्र काश्यामें एक द्रौपदा हमारे सामने मौजूद है ।

“बहिन, बेटी पोतीके साथके व्याहके भी पितने हा उदाररण हम इन पुराने ग्रंथोंमें मिलते हैं । इन्द्राकुके निवासित कुमाराने अपनी बहिनों से व्याहकर शाक्यवशनी नाँव डाली”—इस तरहका व्याह स्यामके राजवशमें श्रम भी मौजूद है । दशरथ जातके अजुमार सीता रामका बहिन और भाया दोनों थी । ब्रह्मानी अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्ति पुराण प्रसिद्ध है । ब्रह्माके पुत्र दक्षकी कन्याने अपने दादा (ब्रह्मा)से व्याह किया था । बिना व्याहके स्त्रीपुरुषोंमें तिस तरहका उन्मुक्त संवध था, उसे देखते कोई कह नहीं सकता कि यौन सदाचार भारतमें सब देश-कालमें एकना चला आया है । जो बात भारतके बारेमें है, वही दुनिया के दूसरे मुल्कों पर भी लागू है ।

“यौन ही नहीं सभी प्रकारके सदाचार नरानर बदलते रहे हैं । एगेरने इसी बातकी श्रौर ध्यान दिलाते हुए लिखा है—

“यदि सब झूठके सपनेमें हमने गहृत तरकीब नहीं की, तो भलाइ पुराइके बारेमें तो हम और भी पीछे रहे। भलाइ पुराइका ग्याल एक जातिसे दूसरी जाति, एक कालसे दूसरे कालमें इतना बदला है, कि अरुगर वह एक दूसरेमें बिल्कुल उलटा है।”

अधेन्वरा न्याय यही नया था, जो कि आनके इग्लैंड या भारतका है। याशुल्क्यकी भाँति मुजातके श्रोता भी दामताकी अन्याय युक्त नहीं समझते थे। तीसरी सदीके भारतमें कितनी ही रातें न्यायानुमोदित हैं, जिन्हें २२वा सदीका भारत अनाय नहीं समझेगा, और आज भी जिसे सोवियत भूमिमें अन्याय समझा जाता है।

३ हमारा और पूँजीवादी सदाचार

इसीलिये वैज्ञानिक भौतिकवाद “किसी तरहके सदाचार-सम्बन्धी मतवादको नित्य, अन्तिम तथा अटल माननेसे साफ इन्कार करते हैं।” सासकर, जब वह देखते हैं कि हरएक सदाचारके पीछे शोषक-वर्गका स्वार्थ छिपा हुआ है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद किसी अटल नित्य सदाचारके माननसे इन्कार करता है, उसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी प्रकारके सदाचार का नहीं मानता। आज भी वह क्रान्तिकारियोंके सदाचारोंको मान रहा है, तिनके बिना किसी उच्च आदर्शको पूर्ण नहीं किया जा सकता। वह जिन शोषक शोषित वर्गोंसे हीन समाजको नाश करनेमें लगा हुआ है, उसमें वैयक्तिक सम्पत्तिकी कोई गुंजाइश नहीं रहेगी, जिसका आवश्यक परिणाम यह होगा कि वैश्यावृत्ति—एनियानके मरनेसे पुराने धर्मानुमोदित व्यवसाय—का नाम तब सुननेमें नहीं आयेगा। साथ ही तिसे हम आज का परिवार मानते हैं, उसके लिये भी गुंजाइश नहीं रहेगी। साम्यवादी परिवार ग्राम और देशव्यापी होगा, तिसमें हमारापन गहृत निस्तृत क्षेत्रमें लागू होगा। छी आज भाषा = खाना-बपड़ा देकर पोसी जाने

गली सम्झी जाती है, साम्यवाद। समाजम कोइ स्त्री किसी पुरुषकी—
अपने पतिकी भी—कमाइ गानेवाली नहीं मिलेगी। दोनों आधिक तौरसे
भा पूर्ण समान होंगे, इसलिये आज परिवारके नामपर हम जो कुछ
देख रहे हैं, उसमें कितने अशका पता नहीं रहेगा, इसका आप खुद
अनुमान कर सकते हैं।

वैज्ञानिक भौतिकवादी वैयक्तिक सम्पत्तियों नहीं रखना चाहते, किन्तु
इसका अर्थ यह नहीं कि वह चोरीका, वैयक्तिक सम्पत्ति उठानेका
साधन मानते हैं। “अणु कृत्वा घृत पिवेत्”की भावना ता उनमें ही
हो सकती है, जो कि वैयक्तिक सम्पत्तियों कायम रखना चाहते हैं।

और सत्य भाषण। वैयक्तिक सम्पत्तिने चोरीको पैदा किया—बुद्धने
अपने एक उपदेशमें^१ उही सुद्धर रीतिसे बतलाया है कि कैसे वैयक्तिक
सम्पत्ति आइ, और फिर उही मार-काटना कारण उनी। इस बातमें बुद्ध
गर्भीसे बहुत आगे उठे हुए थे, जो कि राजकोटके लाल तपनोंके बाद भी
सरलताके सिद्धान्तको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुये। उसी वैयक्तिक
सम्पत्तिने प्रादमीको भूठ गोलनेके लिये मजबूर किया। सम्यतामें ही आदमी
जितने ज्यादा दीक्षित होते जाते हैं, उतने ही वह भूठ परेमें बढ़ते
जाते हैं, इसे सारित करनेकी जरूरत नहीं। जगली जातियों तथा सीधे
मादे पहाड़ी लोगोंमें आप भूठ बहुत कम पायेंगे। सम्यतासे हमारा
मतलब वैयक्तिक सम्पत्तिके भागसे भरी हुई सम्यतासे है, जिससे ऊपर
उठकर हम ‘मानसता’की अस्थायी पहुँचना चाहते हैं।

फिर पूँजीवादी आचारोंकी सूची पुराने आचारों तक ही समाप्त नहीं
हो जाती है। भोजमें अमुक रंग-ढगकी पोशाक पहनकर जाना चाहिये,
नाचमें अमुक तरकी। दवारमें चूड़ीदार पायजामा हाना चाहिये या

^१ देखो “मानस-समाज” पृष्ठ ५५-५६ तथा “दीप निकाय”
पृष्ठ २४२-४४।

पैले पाँचवा, शेरवानी होनी चाहिये या पारसी फोट—यह सभी वर्तमान पूँजीवादी वर्गद्वारा समाजपर लागू किये आचार हैं। इन आचारोंका यदि सम्यग्ध सिर्फ काट-छोड़ तक ही रहता, तो कोई बुरी बात न थी, किन्तु इनका मतलब है, अपने वर्गको शोषितासे अलग कर वर्ग-संगठन को मजबूत करना। जैसे पूँजीवादी दोष देते हैं साम्यवादिया पर, कि यह वर्गभेद पैलाते हैं, लेकिन आप समाजके भीतर पूँजीवादिया—सामन्तोंको भी ले लीजिये—की रहन सहन तथा बचावको देखें तो पता लगेगा कि अपने खचले खान-पान रहन-सहनसे उठाने अपनेको ऐसा बना लिया है कि साधारण मजदूर किसान उनसे मिल ही नहीं सकते। वर्ग भेद चिनका रनाया और मजबूत किया हुआ है, वही मूटकी ठोकरें भी लगा रहे हैं। साम्यवादियाने इन ठोकरोंके लगानेका परामर्श पूँजीपतियों या सामन्तोंको कभी नहीं दिया। यदि उनका कोई अपराध है, तो वही कि जो बूट तुम्हें ठोकरें लगाते हैं, उन्हें चाटना छोड़ ही न दो, बल्कि “जैसा देवता वैसा प्रच्छन्न” की नीति स्वीकार कर। इसका अर्थ लगाया जाता है वर्ग विद्रोह पैलाना। हिंसा और पशुबलके बल पर शताब्दियासे जिन लोगोंने मनुष्यके शोषण और गुलामीका कायम रखा है, जरा भी साँस लेनेकी कोशिशको, जो अपने उसी बलसे दगाना चाहते हैं, उससे बचनेके लिये जो कुछ भी किया जाय, उसे वह हिंसाका नाम देते हैं—इसे कहते हैं—“उलटा चार कोनवालको दडे।”

४ समाज हित सदाचारकी कसौटी

पैमानिक भीतिवाद जगत्को परिवर्तनशील मानता है, इसीलिये वह ऐसे आचार-विचारका पक्षपाती है, जो ऐसे जगत्की तात्कालिक अवस्थाके अनुकूल हो। जिस तरह “बहुजनहिताय” आचारको पूँजीपतियों—सामन्तोंके आचारसे हीन नहीं, बल्कि श्रेष्ठ कहा जायगा, वैसे ही देश-कालानुसार परिवर्तनशील आचार भी श्रेष्ठ है। “बहु जन हित”

के युगों शब्दको "समाजहित" न बदल दीजिये, और फिर इसी समाजहितका आधारका पगौड़ी बना दीजिये। उम, इसी ढंगीटा पर जो आधार टीका उतरता है, उसे ही सदाचार—आचार—पढ़ना चाहिये।

(समाज)—समाजको न तो इतरको उतरान दिया, और नहीं मनुष्योंके मित्तर तय कर निगा कि आधुनो, हम अपनी स्वतन्त्रताका इतना भाग सब दितने लिये छोड़कर व्यक्तिकी जगह समष्टिम रहने लगे। वास्तविक बात यह है कि आदिम मानवको प्रकृतिने मजबूर किया कि यदि वह जीवित रहना चाहता है, तो सामाजिक जीवन स्वीकार करे। मातृ प्रकृतिके चैलेंचों समाज-बद्ध ही होकर स्वीकार कर सकता था। इस तरह भीतरस नहीं, बल्कि बाहरी परिस्थितिके वैयक्तिक मानवको समाजबद्ध बननेके लिये मजबूर किया। वैयक्तिक स्वतन्त्रताके कुछ हिस्सेको छोड़ देना, यह भी अभिजातमन तथा निरुपार-सी बात है, मानवको समाजका सामूहिक धर्म पर स्थापित किया। यह दासों और स्वामियोंका युग नहीं था, बल्कि स्वतन्त्र जागल मानवका युग था। अभी तक जो हरणक आदमी अलग-अलग अपना नाम करता था, अब उसका धर्मको सामाजिक—सामूहिक या सम्मिलित—बनाया। भाषात लोकर आगेकी सारी उन्नति उसके इसी समाजबद्ध होने—सम्मिलित धर्म करने—का परिणाम था। सामाजिक धर्मने जहाँ अपने उत्पादको अधिक करने दित्ताया, वहाँ अब वह प्रकृति तथा दूसरे (धन्य) शत्रुआसे मुकाबिला करनेमें भी अधिक सक्षम हो सता, और तबसे पशु-मानव, मानव-मानव ही गया। मानवके आगेके विकासके तारेमें हम अ-यन' निरु चुक हैं, इसलिये उसे यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

मातृ पहिले प्रकृतिके सीधे मुकाबिला करनेके लिये मजबूर था, किन्तु अब उसे मानव-समाजका भारी सहारा प्राप्त हुआ। पहिले

मानवके लिये प्रकृति रहस्यमयी और त्रिस्तुल श्रगात थी, किन्तु समाज ने उमकी रहस्यमयताको कम करना शुरू किया, और मानवका पैर हल्लाने साथ धरतीपर पड़ने लगा। यह म्मरण रखना चाहिये कि समाज सिर्फ अपने भीतरके व्यक्तियाका योग मात्र नहीं है। वह मनुष्यों का सक्रिय आपसी सन्ध तथा प्रकृतिके साथ उत्तकी सक्रिय, सामूहिक, प्रयागात्मक क्रिया प्रतिक्रिया है। इस प्रकार समाज सिर्फ मानव + मानव + मानव नहीं, बल्कि मानव × मानव × मानव है।^१ मनुष्योंके साधारण जोडके अतिरिक्त वहाँ उनकी मानसिक तथा व्यापहरिक क्रिया प्रतिक्रियामें एव परिमाणके समागमसे हुआ गुणात्मक परिवर्तन समाजकी कीमतको कहीं ज्यादा बढ़ा देता है। हम समाजके मूल्यको इतने हीसे नहीं आँक सकते, क्योंकि आजका मानव स्वयं समाजकी उपज, तैयार किया माल है। बचपनसे ही उसे समाजकी एक उद्भूत उड़ी देन-भाषाना सहारा नहीं मिलता है, बल्कि उसके रिचारोंके निर्माणमें भी समाजका जबरदस्त हाथ है—समाजकी लोरियसि लेकर कानून, आचार, ज्ञान प्रचार आदि सभी मिलकर मानवका निर्माण करते हैं। उस्तुत कहना चाहिये, आजका मानव उतना प्रकृतिका पुत्र नहीं है, जितना कि समाजका।

१६२० ई० में मेदिनीपुरके जगलम पादरी जे ए एल सिंहने भेडियेकी भाँदसे दो लड़कियोंको निकाला जिनकी रत्तामें उनकी पोषिका माँ मादा भेडियेने अपनी जान गँवाइ। पादरी सिंहने इन उच्चियोंका नाम कमला (८ वर्ष) और अमला रखा। छोटी अमला एक साल बाद मर गई, किन्तु बड़ी ६ वर्षतक जिंदा रह, १७ वर्षकी हो १६२६ ई० में मरी। पादरी सिंहने कमलाके भेडियासे आदमी बननेकी प्रगति को अपनी डायरीमें दर्ज किया है।^२ जिससे पता लगता है कि कमला

^१ Dialectics (by T A Jackson) pp 123 4

^२ Child and Human Child (Methuen London)
Man Calcutta 23 3 1942 p 4

मानव समाजम आनेके दो बरष बाद दूमरेकी सहायताके साथ मरझी होने लगी, तीन बरष बाद बिना सहायताके खुद खड़ी होने लगी । चार बरष रहनेके बाद उगने अपने हाथसे गिलास लेकर पानी पिया । छै बरष रहनेके बाद उसने आदमीकी भाषासे ३० शब्द सीखे , इसी समय उसे समझम आने लगा, कि बिना ता टपि बाहर जाना लज्जानी बात है, प्रारम्भिक बरषोंमें कमला कपड़ा पहिनेपर पाइ डालती थी । मर्रद बरषकी उम्रमें पहुँचोपर कमलाना भेड़ियापन और मानवताका द्वन्द्व रतम हुआ, और यह पन्द्र मंली भाली प्यारी बचोकी तरह रहने लगी ।

भड़ियाकी "बन्धी" कमलाका निष ती बरषका जीवन हमारे सामने गुपरा, और उसे भी निशपञ्चोती देख-रेगमें विकथित नहीं होने दिया गया, नहीं ता और भी कितनी ही बानें मालूम होती , किन्तु कमलाने यह साबित कर दिना कि मिसे हम मानवता कहते हैं, वह व्यक्तिकी नदा समाजकी देन है । समाजने उस सारोकी व्यक्तिमें शक्ति दे, जो कि बन्धनम ज्यादा तेज होती है, और उमरके साथ कम होनी जाती है, कमलाना छै बरषम ३० शब्द सीखे थे, यह उसीकी प्रकट करता है और खड़े होनेमें चार बरष लगना यह भी बतताता है, कि आदमीके शरीरके त्रिषासमें भी समाजका जगदस्त हाथ है । धर्म, ईश्वर-निश्चाम, आचार विचार स्वाभाविक हैं, इय बातका कमला एर दम भूठ साबित करता है ।

वैज्ञानिक भौतिकवादी भलाइ, बुराइ, सदाचार, दुराचारमें मानवता की साकार प्रतीक इसी समाज हितको कसौटी मानते हैं, और ईश्वर, धम जैसी धामेकी ठट्टियास खरदार रहोके लिये भारी शापित, और कमकर जनताको आगाह करते हैं । चूकि समाज परिवतनशील है, इसलिय सदाचार भी यदि उससे पिछड़ना नहीं चाहता, तो उसे भी परिवतन शील होना चाहिये ।

ग. दृष्टिके विकार

दृष्टि या राजपर यदि कोई पदा पढ़ जाय, अथवा उसे प्रकाशने श्रावण—श्रद्धाकार—की सहायता मिले, तो वह बेसार हो जाती है, किन्तु यदि उसे उलटे प्रकाश या चश्मेकी मदद हो तो वह देखेगी तो सही, मगर वास्तविकी जगह कुछ और ही देखेगी—मफ़द रंग उसे पीला मालूम होगा और गोल चीज राम्पी। इसलिये सहायता लेते वक्त हम ख्याल रखना होता है कि हम विकार पैदा करेगाले सहायकोंके फरम न पड़ जायँ। सरकृतके शब्द दर्शन और दृष्टि दोनों एकार्थवाची हैं, इसलिये दृष्टिके विकारसे हमारा अभिप्राय दर्शाके विचारसे है, जिनका कारण कितने श्रावण किये जा सकते हैं, इसका वह उदाहरण हमको अब तक मिल चुके हैं। यद्यपि दर्शाका दिग्दर्शन कराते वक्त हम दर्शनाका विचारोका संकेत श्रावण काफ़ी कर चुके हैं, इसलिये उन सबको यहाँ दुहराया नहीं जा सकता, तो भी दर्शा विचारों—दर्शन मलों—पर हम थोड़ा और लिखना चाहते हैं, ताकि दर्शन-मल प्रचालनमें पाठकोंकी सहायता मिले—किर्ण यहाँ श्रावण दर्शन-मलके बारेम ही नहीं, बल्कि इनके उदाहरणसे सभी प्राचीन-नवीन, पौरस्त्य पाश्चात्य दर्शनाके बारेम भी। यह ध्यानम रखना होगा कि “दृष्टि मयोचन”^२ (=दृष्टि का बचन) सबसे जटिलत बंधन है, जतक ब्रह्मवादी दर्शाकी सहायतासे उसे मुक्त नहीं कर लेते, तबतक अपनी “दर्शन शक्ति” को श्रावण ठीक तीरसे इस्तेमाल नहीं कर सकते।

१ उदयनका ईश्वरवाद

धर्मकी कल्पना वर्ग-स्वार्थके दृढ करनेके लिये हुई और समयके साथ धर्मके रथनके शिथिल न होने देने, अथवा कति सोफोकलने शब्दोंमें—“सारा (प्रभु—शोषक) जगत ध्वस्त हो जायगा यदि धर्म उठ

^१ “दर्शन दिग्दर्शन” ^२ बुद्धका गता शब्द।

गया"—कार्याल कर शोपन-जगत्सो उचाके लिये धमनी नइ व्याख्या
 ना नये नये अवतारांनी जरूरत पडती है। धर्म और ईश्वरकी धारणा
 अक्षुण्ण रखेके लिये भारी प्रयत्न पहिले भी हुये हैं, और आज भी द्दित्कर
 रह रहा है कि अने नाम्निक बोलशरिनोंके न-दान करेके लिये
 तलवार उठाई है, इस प्रकार मेरा युद्ध धर्म-युद्ध है। प्राय हजार वर्ष
 पूर्व उदयनाचार्य (६८४ ई०) ने भी एड़ासे चोटी तकनी ताकत
 ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेके लिये लगाई थी। यद्यपि उदयनके दिये प्राय
 सभी हेतु वाची होगये हैं, और आजके स्वार्थ-सरक्षणने उसके लिये दूसरा
 ही तरीका खोजार किया है, ता भा भारतके लिये वह कुछ ऐतिहासिक
 महत्त्व रखता है—और कुछ दिवाध तो अब भी समझते हैं, कि
 उदयनकी "न्याय कुसुमांजलि" आजके जगत्स भी ईश्वरकी सत्ताको
 सिद्ध कर सकती है। उदयनने ईश्वर होनेके ये हेतु दिये हैं—

(१) हर एक कायना जोइ कारण हाता है, इसलिये जगत्सभी
 नायका कारण चाहिये ।

(२) मूल परमाणुआमो जाडे बिना स्थूल जगत् बन नहीं सकता,
 इसलिये जोड़नेवाला चाहिये ,

(३) धारण बिना जगत् ठहर नहा सकता है, इसलिये धारण करने
 वाला चाहिये

(४) शिल्प या ज्ञान परपरासे प्राप्त होता है, इसलिये जोइ आदि
 गुरु चाहिये ,

(५) वेद जैसे वाक्योंका प्रमाण माना जाता है, ऐसे प्रमाणसे होने-
 का जोइ प्रमाणदाता होना चाहिये

१ "कायायोजन धृत्यादे पदात् प्रत्ययत भ्रुते ।

वाक्यात् सख्याविशेषाच्च सा यो विश्वविद् अयय ॥"

—न्यायकुसुमांजलि ५।९

- (६) वेद (श्रुति) भी इश्वरका होना मतलाता है ,
 (७) वेद-शाकशाका भी रचयिता चाहिये ,
 (८) दो, तीन, चार सख्याकी कल्पनाका भी काइ आदिकत्ता
 चान्पिय , और
 (९) वह सबज्ञ (विश्वविद्) हागा चाहिये ,
 (१०) वह अ-विनाशी (अव्यय) होना चाहिये ।

उदयनो ग्राठ युक्तियासे ईश्वरको सिद्ध करना और दो शब्दांम
 उसने रूपको मतलाना चाहा है । इन युक्तियोंका गडन पहिले ही जगह
 गह हा चुका है , तो भी यदि इकछा फरानेकी जरूरत है, तो हम नह
 मन्ते हैं ^१—

(१) कार्य एक कारणसे नहीं अनेक कारण ("हेतु-सामग्री",
 अनेकहेतु-सगति) से उत्पन्न होता है, इसलिये उमसे एक कारण इश्वर
 सिद्ध नहीं होता ,

(२) भौतिक तत्व—घटना प्रगाह—निरोधि-समागम हैं, इसलिये
 आयोजन, त्रियोजनके स्वाभाविक हेतु वहाँ भीतर मौजूद हैं ,

(३) जगतमे कारण (धृति) स्थिरता और न रगनेवालोंको दीस
 पवती है ,

(४) शिल्प या ज्ञान अविच्छिन्न परपरासे नहा ग्राये हैं, मल्लिक
 गिच्छिन्न परपरा (विच्छिन्न सन्तति) से प्राप्त होते हैं , एक बार वह
 मिल्कुल नये पैदा हाते हैं, फिर उनकी परपरा चल पडती है ।

(५) वेदके प्रामाण्य आदिकी बात, धमनीर्तिके गिनाये ध्वस्त
 प्रशक्ति पाँच चिह्नोम है, तिसना निम्न आज स्वगोष्ठी छोड कोइ

^१ विरोधि हेतु समाग्याऽधृतिर्विच्छिन्नसन्तति । सृष्टि , संख्या ध्रुती
 कल्प्ये, नहि विश्वविन् नाव्यय ।"—न्यायवज्जालि (राहुलस्य)

विद्वन्महलीयों तहाँ उठा करता, वेद मनुष्याधी कल्पना, मनुष्योधी सृष्टि है, इतिहास प्रेरिया तथा आदिम मानव सभ्यताके विद्वानुप्राके निये यह उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं,

(८) दो, तीरा आदि मनुष्याधी रचना मानवों का, और उमर कल्पनासे निरुक्त आनके गणितके सामने उदयनके समयका गणित नगण्य-सा है।

(९) फोड़ विश्वविद् (गर्भश) तहीं, क्याकि सगुण होनेका अर्थ है आन और आनसे करादा क्यों राद भी निकलेसे लेकर मानव-मस्तिष्कमें जो कुछ हो रहा है या होगा यह सब उम विश्ववेनाके ज्ञानमें पहलक जैसा मौजूद है, वैसा ही यह हो रहा है, ऐसे भाष्यवादका गुणात्मक परिचय द्वारा हम पहले सङ्कट कर चुके हैं।

(१०) अ विनाशी किसीका कारण तहीं बन करता, क्याकि कारण बननेके लिये उसे सक्रिय होना चाहिये, जो सक्रिय है यह स्वरूप और स्वभावमें अपरिचित नहीं रह सकता, इस तरह अभिशासी और कारण यह दोनों प्रकाश-अकारकी भाँति एक दूसरेके विरोधी हैं।

उदयाने, वस्तुतः ईश्वरका सिद्ध करनेके लिये जो युक्तिर्मा दी है, उनका जबरदस्त सङ्कट उनसे पीने चारखी वर्ष पहले धर्मकीर्ति (६०० ई०) कर चुके थे^१ और तिससे उदयान पूर्णतया परिचित थे, किन्तु फिर फिर दुहराता प्रोपगंडाजी करते हैं, इससे भी यह पूर्णतया परिचित थे इसलिये पुनरुक्तिका दूषण नहीं भूषण बना यह अपना काम करते गये।

२ प्रयोजनवाद

जब हम एक घरका देवते हैं, तो समझ जाते हैं, कि इसे एक आदमीने बनाया, और उसने इसे एक विशेष प्रयोजनके लिये एक

^१ देखिये "दशन दिग्दशन" म धर्मकीर्तिके दशन।

विशेष योजनाके अनुसार बनाया है। इसलिये “यदि प्रकृति एक केरुडे, एक तूफान या बाघकी पीली काली धारियाँ बनाती है” तो इसका कोइ प्रयोजन है।—यह है यूरोप के तीसवा सदीके हाइटडेड जैसे कुछ दार्शनिकोंका महान् दर्शन। हम जानते हैं, देवपोंकी (थ्योसोफी) के अभिनव धमकी भाँति यह महान् दर्शन भी काफी पुराना है, और तीसवीं सदीके प्रयोजनवादी दार्शनिकोंके पुराने सूत्रको ही फिरसे उज्जीवित करनेकी कोशिश की है, जिसका अर्थ यही है, कि सोफोकल्की आत्मा हाइटडेडके रूपमें अवतार लेनेकी जबर्दस्त जरूरत समझती है।

विद्याका काम है, अज्ञातकी व्याख्या ज्ञातसे करके उसे समझने लायक बनाये, किन्तु प्रयोगवादी दार्शनिक अपनी दार्शनिकताका जबर्दस्त अपन्यय कर रहे हैं, जब कि वह श्रेय विश्वकी व्याख्या अज्ञातकी सहायतासे करनेका प्रयत्न करते हैं, जिस तरह प्रयोगवादी बाघकी काली पीली धारीके भीतर सास प्रयोजन बतला रहे हैं, उसी तरह कहा जा सकता है, कि समूरी लोमड़ी शिकारके प्रयोजनसे पैदा हुई, और जैसे गाय भैंस खानेके प्रयोजनसे पैदा की गई, उसी तरह हिन्दुस्तानी तथा दूसरी जाली जातियाँ गुलाम बननेके लिये, एव मफद जर्मन आर्य-जाति दुनियापर शासन करके प्रयोजनसे पैदा हुई। और हिन्दुओंकी गीता तो गला पाड़ पाड़ कर कह ही रही है—कि “भगवान (मैं)ने चारों तरफोंको गुण-कर्मसे अलग कर करके बनाया”,^१ जिसमें शत्रुओंका काम तीनों ऊँचे त्योंकी सिद्धमत करना भर है। तीसवीं सदीका प्रयोगवाद भी हमें वृद्धके उनी “ज्ञानभंडार” तक पहुँचा देता है, जिसमें “भगवान् की मर्जीके बिना पत्ताफा भी न हिलना” सबसे बड़ा ज्ञान है, और जो शोषका, काम चोरके प्रयोजनका सबसे बड़ा हथियार है।

हमको यह मालूम है, कि जब तक दार्शनिकोंका प्रयोजनवाद मानव बुद्धिको बाँधे हुये था, और हरएक अज्ञात वस्तुको अज्ञेयसे व्याख्या कर

^१“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।”

डालनेकी प्रवृत्ति थी, तब तब साइस आगे नहीं बढ़ सका, और चैने नी मुक्ति प्रयोजनवादके यांत्रिक यथनमें मुक्त हुई, जैसे ही उसने प्रयोगके द्वारा साइसका रास्ता साफ किया। प्रयोजनवाद साइसका जबरदस्त दुश्मन है, वह ठीक उनमें उलटा रास्ता लेनेको कहता है। गाधकी पीली जमीन पर काली धारीका ही ले लीजिये, प्रयोगवादी मुल्ले रहगे, प्रकृति— (इश्परको वह इस नामके भीतर टिपाना चाहते हैं, क्याकि जट प्रकृतिके साथ उनकी इतनी छोड़ नहीं हो गई है कि उसे प्रयोजन चेतना रखनेवाली मान लें) ने गाधको काली पीली धारी इसलिये प्रदान की है, कि वह अपनेको टिपाकर दुश्मनमें रचा सके। साइसकेता इन धाराको लेकर प्राकृतिक निर्वाचन और जाति-परिवर्तन के मन्त्र सिद्धान्तका आधिपत्य करनेमें सफल हुये जो कि प्रयोजनवादसे मिलकर उलटते हैं।—

“जो रसु (घटना प्रवाद) रास विशेषताय रखती है, वह विरस्थायी होती है। कुछ व्यक्ति नये परिवर्तन द्वारा अपनेमें नई विशेषतायें लाते हैं। अपने आहार विहारके लिये, अपने शत्रुशक्ति बचनेके लिये, जो विशेषतायें उपयोगी सिद्ध होंगी, उन विशेषताओंका धनी बच रहेगा, और जो अनुपयोगी या हानिकारक सिद्ध होंगी, उनके धनीका विनाश अवश्यभासी है। सरसातम रंग पीडे पैदा होते हैं, जिनमेंसे कुछ रंग रूपमें हरे पत्तसि मिलते हैं, कुछका रंग मिथी वृत्ती छाल जैसा होता है, और कुछका वर्णकी मिट्टी जैसा। इन रंगों पर यदि हम गौर करें, तो मालूम होगा, कि ये रंग दुश्मानी नजरसे छिपनेमें नही मदद देते हैं, गाया यह वर्ण उनके रक्षा-वचक है। एक कोड़ा सूखा काली जगहमें पीठियसि रहता था। समय बदला, अब वह जमीन हरी भरी हो गई। अब नीला हरी पत्तियां और हरे पौधाम रहता है। उसकी सन्तानामें अधिकश कीड़े चमकीले, लाल और नाने रंगके हैं, और दो-चार जाति-परिवर्तनके

कारण हरे रगके । कीड़नि गानेके लिये कितने ही पत्ती, कितने ही दूसरे कीड़े भी मुँह बाधे हुये हैं । जो कीड़ा अपने आसपासकी जमान, तरी घाससे विलुल अलग रग रखता है, और इसके कारण दूरमे ही शनुफी नगर उत्तर गड़ जाती है, ऐसे कीड़ेका जल्दी सहार होना निश्चिन है । 'उपरोक्त कीड़ोंमे अपने रगके कारण बचे हुए ये हरे काँच नशनों आगे ले जायेंगे, गोया प्रकृतिने हरे कीड़ोंको जीनेके लिये चुन लिया है । इसे ही प्राकृतिक निर्वाचन कहते हैं ।'

प्रयोजनवादका असल मतलब है आप जगत्को बदलनेका इरादा न करें, समाज जैसे चल रहा है, उसे वैसे ही चलने दें । प्रयोजनवादका उद्देश्य है, पाठकसे निकाल बाहर किये इशरको फिरमे पिडकीके राते ला सिंहासनपर बैठाना ।—यह हम यूरोपके प्रयोजनवादियांभी बात कर रहे हैं, जो कि अपने इस उद्देश्यको बहुत दिपाकर रखना चाहते हैं ।

३ विज्ञानवाद

विज्ञानवादका जिक्र पहिले हो चुका है, किंतु आँसमें धूल भागों का काम जितना इस दशनसे लिया जाता है, उतना दूसरे दशनसे नहीं । सर राधाकृष्णन् शरराचार्यके हिमायती होनेके नाते विज्ञानवाद का समर्थन करना अपना पज समझेंगे । किन्तु राधाकृष्णन् टूटी नास हैं, जो उनपर भरोसा करेगा, वह भँकधारमे गिरेगा । हम बतला चुके हैं, वैसे उन्होंने बुद्धिको शरकरके शानपथसे निचलित कर भक्तिनी शरण लेने का परामश दिया था । गौद्ध दशनपर पोचारा पोतते हुए एरु जगह यह विज्ञानवाद—भूत भौतिक जगत् अस्त, चेतनामय ब्रह्म (मन या विज्ञान) ही सही—के प्रति अपने उद्गारको इस प्रकार निकालते हैं—

“विश्व विलुल ही व्यर्थ, एकरुदम अचास्तपिन होता, यदि यह किसी प्रकारसे वास्तविक [ब्रह्म ?] का प्रकाश न मिलता । जम और

मरवाकी दुनिया अमर [ब्रह्म ?] का प्राकृत्य है । परम (चरम) उन्तविषयता सर्वसत्त्व, वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओं का आत्मा है ।”

“सर्वसत्त्व” अंग्रेजीकी पुस्तक भी यह ससृत शब्द लिखा गया है । धरती माता ! पाठो, हम समायें ॥ “एका लिंगा परित्यग्य शैलाङ्ग विजयी भवेत् ।” और सर्व-सत्त्व का अर्थ—“वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओं का आत्मा” । अद्वैत धर्मानन्द कौशाम्बी ! आपने गौड शास्त्रोंके पढ़ने-गानेमें नहीं, धूपमें अपने बाल सपेद किया है, यदि इस सत्त्वको तहाँ समझा । और भदन्त आनन्द कौशलरायण ! अब भी कारीफे द्वारे छोर पर थाप अपना दंठ-कमंडल रखा चाहते हैं ? यदि हाँ, तो टीक अथ लगाइये—

“सन्वे सत्ता मनतु मुणिततचा” (सर्वे सत्ता भवन्तु मुणिततात्मान)

= “वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओं का आत्मा मुग्धी हो ।” छद्म (वेद) के नियमके अनुसार गहनचनको एतवचन कर देनेसे यहाँ अर्थ ठाक आयेगा ।

और बिहारके राजा मदनपालदेव (११३४-५३ इ०) के सप्तदशे गल्प सधत्तम लिखी पुस्तकके अन्तमें जो “माता पितृ-सूर्यङ्ग गमं कृत्वा सजल-सत्त्वराशेनुत्तरज्ञानाधातये”^१ लिखा हुआ है, उसमें “सकल सत्त्व-राश” का अर्थ करना होगा—सभी वस्तुओंके आत्माओंकी राशिका । अथ मालूम हुआ न, बुद्ध और वीजाके दर्शन पर कलम चलानेके लिये किन्तनी दिम्मत चाहिये । हम आशा हैं भविष्यके भारतीय दर्शन पर कलम उठानेवाले सारे लेखक सर राधाकृष्णन्की इस “सर्वसत्त्व” की गान्धी गून्के लिये कृतज्ञता प्रकट करनेसे कभी राज न आवेंगे ।

^१ देखिये Journal of the Bihar and Orissa Research Society Vol XXI pt I p 23

राधाकृष्णन्के सर्वसत्त्व (=सारे प्राणी, सारे जलचर, नभचर, पशु, मनुष्य) ने हमारी जानका ही ले छोड़ा था। लेकिन बुद्धने अपने दर्शन-की इतनी नाकाबन्दी की है, खासकर अनात्मवाद और क्षणिकवादके द्वारा, कि सर राधाकृष्णन् जितना ही “वास्तविक”, “अमर” या खुद बुद्धके अपने मुँहसे निकले वचन “सर्वसत्त्व” का चोगा पहिनाकर ब्रह्म-वादको यहाँ घुसाना चाह, बेचारा शङ्करका प्यारा ब्रह्म क्षणिकवादके एक ही प्रहारमें थाप-थाप करता फिर उधर नजर उठाकर देखौकी भी हिम्मत न करेगा। हमें सर राधाकृष्णन्की इस हिम्मतकी दाद देनी चाहिये, जोकि ऐसी निराशाजनक परिस्थितिमें भी उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। इससे एक बात तो साफ है कि वह “जन्म-मरणकी दुनिया” के पीछे “अमर” तत्त्वको सिद्ध करनेपर तुले हुए हैं। आइये हम उनकी मदद करें।

इग्लैंडका महान् दार्शनिक बर्कले^१ (१६८५-१७५३ इ०)—लार्ड ब्लाइवका समकालीन—विज्ञानवादका जबरदस्त समर्थक था। उसका कहना था—“स्वयं और धरतीके सभी सामान, सत्त्वयम सभी पिंड मनको छोड़ और किसी द्रव्यके नहीं (बा) हैं। जब तक मेरे द्वारा वह उपलब्ध (ज्ञात) नहीं होते अथवा मेरे या दूसरे उत्पादित जीवके मनमें अस्तित्व नहीं रहता, तब तक वह या तो अस्तित्व ही नहीं रहते अथवा किसी नित्य आत्मामें अवस्थित हैं।”

बर्कले दार्शनिक होते भी लाट-पादरी था, और आजकलकी दुनिया पादरियोंसे भडकती गहुत है, इसलिये आइये एक प्रसिद्ध साइस वेत्ता, सर जेम्स जीन्सके पास चलें, यद्यपि “सर” होनेसे आपका जरूर कुछ शका हो उठेगी, क्योंकि आप जानते हैं पूँजीवाद शिरोमणि सरकार वैसोंको इस पदवीका पात्र समझती है, ता भी यह भाद रखना

^१ विशेषके लिये देखिये “दर्शन दिग्दर्शन”

चाहिये कि जीन्स एक अन्धे शक्तिमत् अन्धे ज्योतिषी—फलितगले नहीं गति व्याप्तिप्रवाले—रहे हैं। सुनिये, यह क्या कहते हैं—

“मुझे मालूम होता है, आधुनिक साइंस हमें एक बिल्कुल दूगरे रास्तेसे (वस्तुतः मतक) बिल्कुल असमान परिणाम पर नहीं पहुँचा रहा है।

“इससे नरि अन्तर नहीं पड़ता, चाहे पदार्थ ‘भरे मनम वा रिधी दूगरे उत्पादित जीवनके मनम अस्तित्व रखते हैं’ या नहीं, उनका विषय (गोचर) होना तभी हावा है, जन कि वह किसी नित्य आत्माक मनम अस्तित्व रखते हैं।

“यदि यह सच है कि ‘पदार्थोंका वास्तविक सार’ [फाटका वस्तु अपने भातर या वस्तु-सार] हमारे ज्ञानसे परे है, तो वस्तुवाद और विज्ञानवादकी सीमा विधायक रेखा सचमुच अत्यन्त अस्पष्ट हो जाती है, विषयान्तर वास्तविकता अस्तित्व रखती है, क्योंकि कुछ वस्तुएँ मेरी और आपकी चेतनाको एक समान प्रभावित करती हैं किन्तु [ऐसा करके] हम एक ऐसी किसी चीजका मात ले रहे हैं, जिसके मान लोका हम हक नहीं है, यदि हम उसे वास्तविक [वस्तु] या विज्ञानीय [विज्ञान रूप, मन-रूप] नाम देते हैं। ठीक नाम रखने पर उसे ‘गणितिय’ कहना चाहिये ।”

सर जेम्स जान्स जिस वक्त विश्व परिलेने साथ आसमानमें उड़ते जा रहे थे, उम वक्त उन्हें डाक्टर जासनका बात याद आ गई। डाक्टर जान्सनने बकतेने दशनकी बात सुनकर विज्ञानसे पृथक् भौतिक तत्त्वकी सत्ताका मानित करनेके लिये पश्चपर परे पटनकर कहा था—“नहीं, साहेब ! मैं इस तरह [जैसे धरतीकी सत्ताको सिद्ध कर] उसे [विज्ञान-वादको] गलत मानित करता हूँ ।”

¹The Mysterious Universe (by Sir James Jeans Pelican Series April 1940) pp 172-75.

सर जेम्स जींस डाक्टर जान्सनके खडनका उत्तर अपनी मुस्कराहट-से देना काफी समझने हैं, क्योंकि डाक्टर जान्सन अपने समयम जो काम कर गये, उसे ही अब उह नई परिस्थितिमें अंजाम देना है। यदि डाक्टर जान्सन जानते कि धरतीपर लात पटककर वह भौतिकवादका सिद्ध कर रहे हैं, जो कि शोषण प्रमुखवर्ग तथा उसकी संस्कृति, सभ्यता, धर्मका जानी दुश्मन है, ता वह कभी वैसी गलती न करते। सर जेम्स जीन्स जानते हैं कि वह जो महान् सेवा कर रहे हैं, उसे उपरुत वर्ग भुला नहीं सकता, इसीलिये आगे बढ़ते हुए कहते हैं—^१

“आज ज्ञानकी धारा एक अयायिक वास्तविकताकी ओर बढ़ रही है, विश्व एक बड़े मनकी प्रपेक्षा एक प्रति निचार [कल्पना]सा जान पड़ता है। मन अब भौतिक जगत्में आकस्मिक भटक आया [उठोही] जैसा नहीं मालूम पड़ता, हमें मान होने लगा है कि [पहिली धारणाका हटाकर] हमें भौतिक जगत्के स्रष्टा और शासकके तौरपर उस [मन]का स्वागत करना चाहिये—हाँ, अपने वैयक्तिक मनको नहा, बल्कि उन मनको, जिनमें कि परमाणु निचार [कल्पना]के तौरपर सत्ता रखते हैं। * भौतिक तत्त्व स्वयं मनकी सृष्टि और प्राकट्य हैं। हमें जाहिर होता है कि विश्व हमारे मनो जैसे एक मनका पता दे रहा है, जो कि (उसकी) योजना बनाता तथा नियंत्रण करता है।”

देखा, सर जेम्स जीन्स कैसे चुपके-से प्रयोगवादी हाइडेटके पास पहुँच गये, और इन बूढ़ोंकी मडलीम हमारे सर राधाकृष्णन् जो शोभा दे रहे हैं! आप इनकी बातोंको आदर्शवाक्य बना अपने बैठकसाने—
डाइग्लूम—में लगा लीजिये, यदि धरती लक्ष्मीको भुखमरोने घर जाने नहीं देना चाहते—

विश्वके पीछे वास्तविक अमर “सर्वसत्त्व” है—सर राधाकृष्णन्
विश्वके पीछे रास प्रयोजन काम कर रहा है—हाइडेट्

“एक मन जो कि [विश्ववी] योजना बताता तथा नियन्त्रण करता है।”—सर जेम्स जीन्स ।

श्रीर जर्मन मजदूर डोट्ज्गेन—ये दार्शनिक कहलानेवाले लोग “जनताको अज्ञानमें रखनेके लिये अपने भूठे विज्ञानवादको इस्तेमाल कर रहे हैं।”^१

इसके उत्तरमें प्रोफेसर लेवीने जली-कटी मुत्ता इन बूढ़े शोषणके समर्थकोंको जो उत्तर दिया है, उसे हम पहिले उद्धृत कर चुके हैं। नर पीपीसा दूसरा दार्शनिक जान लेविस् कहता है^२—

“बिना एक कल्पना (विज्ञान)के चूँकि हम किसी वस्तुको नहीं जान सकते, इसका यह अर्थ हर्गिज नहीं कि हम सिर्फ कल्पनाका ही जानते हैं। ज्ञानका अस्तित्व ही साबित करता है, कि ज्ञाता और ज्ञेय भी अस्तित्व रखते हैं। चूँकि बिना उसकी कल्पना लिये हम बाह्य (भौतिक) जगत्का चिन्तन नहीं कर सकते, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम जो कुछ अनुभव करते हो, वह सिर्फ अपनी कल्पनाका ही करते हो। हम अपने प्रथम (इन्द्रिय) प्रत्यक्ष म खुद प्रकृति (भौतिकत्व)की ही जानते हैं। (यह ठीक है) हम उसे पूर्णतया नहीं जानते, और न उसके बारे-म सब कुछ जानते हैं, किन्तु हम यह जानते हैं, कि वह है।”

यदि आप विज्ञानवादकी गवज दूँदें, तो मालूम होगा—उसका आग कल सबसे बड़ा काम है साइससे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके प्रति सदेह पैदा करना—सापेक्ष बतलाना नहीं, क्योंकि सापेक्षताको तो साइस स्वयं स्वीकार करता है। दूसरा काम है प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे धर्मको हस्तावलम्ब देना, इस सर जेम्स जीन्सके “मन” में हम अभी देख चुके हैं।

॥ समाप्त ॥

^१ Lenin Materialism में उद्धृत ।

^२ Introduction to Philosophy (Golancz 1937) pp 50 51

पारिभाषिक शब्द-सूची

Absolute—परम, परमार्थ, परमतत्त्व	Character—स्वरूप, स्वभाव, लक्षण
Abstract—निराकार, कल्पनामय	Communism—साम्यवाद
Analysis—विश्लेषण	Communist — साम्यवादी, कमूनिस्त
Anti-thesis प्रति वाद	Contemplation—चिंतन
Atheism नास्तिकवाद, अनीश्वर- वाद	Content—सार
Atom—परमाणु	Conservative—अनुदार
Atomism परमाणुवाद	Continuity प्रवाह, सतति, सतान
Automachine—स्वयंबह यन, स्वचालितयन	Continuity, Disconti- uous—विच्छेद-युक्त प्रवाह, विच्छिन्न प्रवाह
Bacteria—बैक्टीरिया	Co operative — सम्मिलित, सभी
Capitalism—पूजीवाद	Determinism—नियतिवाद, भाग्यवाद
Capitalist—पूजीवादी, पूजीपति	Dialectical Materialism —द्वद्वात्मक भौतिकवाद, दृष्टिक भौतिकवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद
Causality—कार्य कारण-संबंध, हेतुवाद, हेतुता	Dialectics—द्वद्वावाद, द्वद्वात्म- कवाद
Cause—हेतु, कारण	Effect—कार्य
Cave man—गुफा मानव	
Cell—सेल, जीव-कोष	
Change—परिवर्तन	
Changeability— परिवर्तनशीलता	
Changeable—परिवर्तनशील	

Electron एक्लेट्रॉन, Negotron	Matter—भूत, भौतिक तत्व
Element—तत्त्व, मूल तत्व	Mechanical materialism
Ethics—आचार, शास्त्र	—यांत्रिक भौतिकवाद
Events—घटना	Metaphysician—अति
Form—आकृति	भौतिक शास्त्री, अतिभौतिकवादी,
Genus जनक, जनक बीज, जेनस्	अध्यात्मवादी
Group marriage—सूय विराह	Mind—मन, विज्ञान
Heredity—प्रातुपशक्ता	Morality—आचार विचार,
Humankind—मानवता	सदाचार
Hydrogen—हाइड्रोजन	Motion—गति
Idealism—विज्ञानवाद, चेतना	Mutation—जातिपरिवर्तन
वाद, मनोवाद	Natural law—प्राकृतिक नियम
Individual—व्यक्ति, वैयक्तिक	Natural selection—
Individualism—व्यक्तिवाद	प्राकृतिक निर्वाचन
Interpenetration of	Nature—प्रकृति
opposites—विरोधि-अन्तर्व्यापन	Negation—प्रतिषेध
Liberalism—उदारवाद	Negation of negation—
Life—जीवन	प्रतिषेधका प्रतिषेध
Logic—तर्कशास्त्र	Negative—ऋण
Materialism—भौतिकवाद	Negotron—नेगोट्रॉन = एलेक्ट्रॉन
„ „ Dialectical—द्विधात्मक	का नया नाम, ऋणात्मक
(वैज्ञानिक) भौतिकवाद	विजली (परमाणुके गर्भमें)
„ „ Mechanical—यांत्रिक	Neutron—न्यूट्रॉन (परमाणुके
भौतिकवाद	गर्भमें)
Materialism, Scientific—	Objective—साकार, माह,
वैज्ञानिक भौतिकवाद	विषयाकार

Pantheism—शारीरिक ब्रह्मवाद	Reflex—भ्रूलक, प्रतिबिम्ब
Perception—प्रत्यक्ष, उपलब्धि	Relative—सापेक्ष
Phenomena—प्रतीयमान जगत् प्राकृतिक जगत्, बाह्य जगत्	Relativity—सापेक्षता
Philosophy—दर्शन, दृष्टि	Religions—धर्म, मजहब
Polyandry—बहुपति विवाह	Scholastic—मठवादीय
Polygamy—बहुपत्न विवाह	Science—शास्त्र, विज्ञान
Positive—धन	Scientific law—वैज्ञानिक नियम
Positron—पोजिट्रॉन (परमाणु के गर्म में)	Scientific materialism— वैज्ञानिक भौतिकवाद
Practice—प्रयोग	Secular—समसारी
Pragmatism—प्रभाववाद, मनुष्य मापवाद	Sensation—वेदना
Probability—प्रायिकता	Slogan—नाग, घोष
Process—घटना-प्रवाह	Socialism—समाजवाद
Proton—प्रोटॉन (परमाणु के गर्म में)	Soul—आत्मा
Qualitative change— गुणात्मक परिवर्तन	Sovereign—मूषाभिषिक्त, अ-परतंत्र
Quality—गुण	Spirit—आत्मा
Quantity—परिमाणु, मात्रा	Struggle—संघर्ष
Reaction—प्रतिबिम्ब, प्रति- भावितता	Synthesis—संघटन, संश्लेषण
Realism—पक्षवाद	Technique—तंत्रशास्त्री
Reality—वास्तविकता	Teleology—प्रयत्नशास्त्र
Reflection—मानस प्रतिबिम्ब	Temperature—तापमान
	Theology—देवशास्त्र, धर्मशास्त्र
	Theory—सिद्धांतवाद
	Thesis—वाच

Truth—सत्य	Veridity of knowledge—
Unity of opposites— विरोधि समागम, विरोध समागम	प्रामाण्य, ज्ञानकी प्रामाणिकता Virus—विरसु
Universal—जाति, सामान्य	White lodge—श्वेत-परिसद
Universe—विश्व, जगत्	(श्यासोफी)
Utilitarianism उपयोगितावाद	Whole—अवयवी, सम्पूर्ण

ग्रन्थ-सूची

Karl Marx	Thesis on Feuerbach, Capital, On Hegel's philosophy of Law
Fredrich Engels	Anti-Duhring (Ludwig Feuerbach), Socialism Scientific and Utopian
Marx and Engels	German Ideology Holy Family
Lenin	Materialism and Empireo- criticism
Hegel	Science of Logic
Ludwig Feurebach	Atheism Essence of Christianity
Voltaire	Philosophical Dictionary
H Levy	Philosophy for a Modern Man
John Lewis	Introduction to Philosophy
Devid Guest	Dialectical Materialism
T A Jackson	Dialectics (1938)
J B S Haldane	Marxist Philosophy and Sciences (1938)
Sir James Jeans	Mysterious Universe

Dr S Radhakrishnan	Indian philosophy, 2
धर्मकीर्ति	प्रमाणार्थिक
शान्तिदेव	बोधिसत्त्वानुसार
ओहर्ष	संन्यासद्वारा
अल्वरुनी	अल् हिन्द
बुद्ध	दीप निष्पाय (हिन्दी)
	मज्झिम निकाय (हिन्दी)
	नियम पिटक (हिन्दी)
राहुन साहित्यायन	बुद्धचर्या
	विश्वकी रूपरेखा
	मानव-समाज
	दर्शन दिग्दर्शन
भगवद्गीता	
महाभारत	



